तुलसीदासोत्तर हिन्दी राम-साहित्य

सन् १९७२ तक के राम-साहित्य के नवीन संदर्भो सहित डॉ० माताप्रसाद गुप्त के निर्देशन में प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध।

प्रथम संस्करण : कार्तिक पूर्णिमा १६७२
मूल्य २२.०० रुपये

श्री रामेश्वरप्रसाद मेहरोत्रा, द्वारा अभिनव भारती ४२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-३ से प्रकाशित एवं देश सेवा प्रेस, में मुद्रित।

प्राक्कथन

●

रामकथा वाल्मीकि से पहले ही गाथाओं के रूप में प्रचलित हो गयी थी, किन्तु भारत के आदि कवि की प्रतिभा ने उसे अपनी रचना में जो रूप दिया है, उसमें कला तथा आदर्श का इतना अपूर्व समन्वय था कि वह परवर्ती कवियों को शताब्दियों तक मोहित करती रही और इस प्रकार एक ऐसे विशाल राम-विषयक साहित्य की सृष्टि हुई कि समस्त भारतीय संस्कृति राममय बन गयी है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध इसका साक्षी है कि भारतीय साहित्य की इस सर्वसामान्य विशेषता की दृष्टि से हिन्दी साहित्य कोई अपवाद प्रस्तुत नहीं करता।

यद्यपि तुलसीदास का रामचरितमानस एक प्रकार से पूर्णिमा की वह चाँदनी प्रमाणित हुई, जिसने सम्पूर्ण मध्यकाल की रामकथा विषयक अन्य रचनाओं को 'खद्योत सम इत तित करत प्रकाश' की श्रेणी में रख दिया, फिर भी राम साहित्य की धारा कभी 'अन्तः सलिला' नहीं हुई। इस शोध प्रबन्ध में उस मध्यकालीन साहित्य को कम महत्व दिया गया है—दास्यभक्ति-प्रधान साहित्य को पचास पृष्ठ (१७-६५) और मधुरा भक्ति प्रधान रामकाव्य को पचीस पृष्ठ (६६-९१) मिले। यह उचित भी है, क्योंकि कोई भी रचना लोकप्रिय नहीं हो पायी और मधुरा-भक्ति विषयक अधिकांश सामग्री न केवल अप्रकाशित है, किन्तु वह जान-बूझ कर गुप्त ही रखी गयी। कारण यह है कि जैसा कि इस सम्प्रदाय के कोशल खण्ड के अन्त में लिखा है—लीलेयं नहि लोकसंग्रह परा गुप्तेति। इस सिलसिले में यहाँ इसका उल्लेख करना अनुचित ही नहीं, आवश्यक भी है कि लेखक का यह अनुमान निराधार है कि मुझे "राम साहित्य विषयक इस विस्तृत आन्दोलन का पता हो नहीं था।" (पृ०४)। मैंने रामभक्ति के उद्भव और विकास के सर्वेक्षण में रसिक-सम्प्रदाय की चरचा की

और उस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के फलस्वरूप कथानक में जो मुख्य परिवर्तन किये गये, उनका निर्देश किया। (दे० रामकथा, दूसरा अथवा तीसरा संस्करण अनु० १५०) हिन्दी राम-साहित्य के सिंहावलोकन में मैंने अग्रदास और नाभादास की रचनाओं के अतिरिक्त कृपानिवासकृत विस्तृत प्रबन्ध काव्य रामरसामृत सिन्धु का भी उल्लेख किया (दे० रामकथा अनु० २९९-३००)।

इस शोध-प्रबन्ध की अधिकांश सामग्री आधुनिक युग के राम-साहित्य से सम्बन्ध रखती है। पाठक उस सामग्री से आधुनिक युग के विकास का प्रतिबिम्ब देख सकता है। साहित्यकारों ने युग के नवीन सामाजिक, राजनीतिक और मानवतावादी आदर्शों के अनुसार रामकथा को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में मैथिलीशरण गुप्त (साकेत), निराला (राम की शक्ति पूजा), बालकृष्ण शर्मा नवीन (उर्मिला), सुमित्रानन्दन पन्त (स्वर्ण किरण के अन्तर्गत अशोक वन) और केदारनाथ मिश्र प्रभात (कैकेयी) की रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं और लेखक के तत्सम्बन्धी विचार द्रष्टव्य हैं।

बीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध के हिन्दी साहित्य में मनोविश्लेषण तथा परम्परा विरोधी सामग्री की कमी नहीं है। लेखक ने मनोविश्लेषण-प्रधान तीन रचनाओं की समालोचना प्रस्तुत की है—रामवृक्ष बेनीपुरी कृत 'सीता की माँ' जयशंकर त्रिपाठी का "आंजनेय" तथा नरेश मेहता कृत 'संशय की एक रात'। इसी वर्ष डॉ० रामकुमार वर्मा का 'उत्तरायण' प्रकाशित हुआ, जिसमें सीता निर्वासन सम्बन्धी तुलसी के अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर समाधान किया गया है।

डा० रामलखन पाण्डेय ने 'रामचरित की प्रतिस्पर्द्धी रचनाएँ' नामक अध्याय में (पृष्ठ २०४-२१६) कुछ रचनाओं का विश्लेषण किया है। जिनका मुख्य उद्देश्य है रावण के चरित्र का उद्धार। इन रचनाओं में श्रीकृष्ण हसरत कृत रावण-राज्य तथा हरदयालु सिंह 'हरिनाथ' का 'रावण महाकाव्य' प्रमुख हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध एक दर्पण है। जिसमें पाठक निरन्तर प्रवाहित रामकथा-विषयक हिन्दी काव्य-धारा के दर्शन कर सकता है।

रांची
७-१०-७२

कामिल बुल्के

अपनी बात

●

संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में तथा इनके अनन्तर हिन्दी तथा समकालीन भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं में एवं जन बोलियों तक में राम की कहानी मनोरम रूप में निबद्ध होती रही है और आगे भी निबद्ध होती जायगी। कई शताब्दियों से भारतीय हिन्दू समाज की संस्कृति का समस्त पक्ष राम और कृष्णमय हो गया है। तुलसीदास का कथन केवल भावातिरेक से नहीं सही आकलन मे प्रस्फुट वाणी है—

सियाराम मय सब जग जानी,
करउं प्रणाम जोरि जुग पानी।

मैंने जब एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करली, तब पिताजी ने प्रेरणा दी कि तुम अब राम साहित्य का अध्ययन करो और इसे शोध का विषय बनाओ। यह मेरा सौभाग्य और सुयोग था कि उस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय में डॉ० माताप्रसाद गुप्त मौजूद थे जो तुलसी साहित्य के अधिकारी विद्वान थे उनकी कृपा से मुझे शोध कार्य करने की आज्ञा विश्वविद्यालय से मिल गयी। उनकी आज्ञानुसार ही मैंने तुलसीदासोत्तर हिन्दी के अद्यतन राम साहित्य को अपने अनुसंधान का विषय चुना। और सन् १९५४ ई० से इस पर कार्य करना आरम्भ कर दिया। डॉ० गुप्त का निर्देशन मेरे लिए बड़ा सहारा रहा।

अनुसंधान का यह कार्य बहुत लम्बा और जटिल था। सच बात तो यह है कि राम साहित्य का इतना विस्तार है कि इसके विश्लेषण और समीक्षण का संकल्प करना समुद्र में अवहन देना है। मेरे सामने राम साहित्य पर तीन शोध प्रबन्ध विद्यमान थे, उनमे मैंने सहायता ली है। उनके नाम हैं—राम कथा (डॉ० फादर कामिल बुल्के), राम भक्ति मे रसिक सम्प्रदाय (डॉ० भगवती प्रसाद सिंह), राम भक्ति साहित्य मे मधुर उपासना (डॉ० भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव') मैंने समस्त सामग्री का अध्यन करते हुए यह देखा कि हिन्दी का राम साहित्य वैसा ही अगम्य और विलक्षण हो गया है जैसी कल्पना सहस्रशीर्षा विराट पुरुष के बारे में की जाती है। मैं समझता हूँ कि कोई भी प्रवर समीक्षक हिन्दी राम साहित्य का इतमित्थंम् नीर क्षीर विवेक कर सकता है, यह संभव

नहीं है। रामकथा साहित्य की धारा अनेक स्रोतों में बँटती चली जा रही है। मैंने साहित्य के समुद्र में उस रेखा को निर्धारित करने की प्रबल चेष्टा की है जिसके द्वारा यह जाना जा सके कितने उद्गमों से किन-किन स्रोतों ने आकर इस समुद्र को अथाह बनाया है। मेरे इस शोध प्रबन्ध को इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने १९६५ ई० में डी० फिल्० उपाधि के लिए स्वीकार किया। किंचित् संशोधन के साथ अब वह इस रूप में प्रकाशित हो रहा है। राम साहित्य का अनुसंधान कार्य की एक कड़ी भी यदि यह मेरा श्रम बन जाता है तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा।

हिन्दी साहित्य और राम कथा के विद्वान डॉ० फादर कामिल बुल्के ने इस ग्रन्थ का प्राक्कथन लिखने की कृपा की है। अपने अत्यन्त व्यस्त समय में भी जो उन्होंने इस कार्य को सम्पन्न बनाया उसके लिए मैं बहुत अनुगृहीत होता हूँ दुर्भाग्य है कि डॉ० माताप्रसाद गुप्त आज नहीं हैं नहीं तो वे इस शोध ग्रन्थ को प्रकाशित रूप में देखकर बहुत ही सन्तुष्ट होते। मैं जब अपना यह शोध कार्य कर रहा था उस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रवक्ता, हिन्दी में पाठालोचन के विद्वान डॉ० पारसनाथ तिवारी के अमूल्य सुझाव भी हमें प्राप्त होते रहे हैं। उनका यह उपकार मैं नहीं भूल सकता। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर डॉ० रामकुमार वर्मा का भी मैं उपकृत हूँ जिनकी कृपा से मेरे अनुसंधान कार्य की बाधाएँ दूर होती रही हैं।

अन्त में इस ग्रन्थ के प्रकाशन में रुचि लेने वाले श्री रामेश्वरप्रसाद मेहरोत्रा व्यवस्थापक, अभिनव भारती का भी मैं बहुत आभारी हूँ। यह ग्रन्थ अनुसंधान एवं साहित्य के प्रेमियों के हाथों में प्रस्तुत है। मैंने शोध कार्य के समय राम साहित्य के दुर्लभ ग्रन्थों का अपने कई मित्रों के सहयोग से काशी, अयोध्या, सतना, रीवाँ, जोधपुर, जयपुर आदि स्थानों से प्राप्त किया है। मैं अपने उन मित्रों के प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित करता हूँ।

—रामलखन पाण्डेय

राज्य शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश,

इलाहाबाद

जिनकी रामभक्ति की प्रेरणा से
राम साहित्य का यह अध्ययन सम्पन्न हो सका
पूज्य पिता
पंडित रामप्रताप पाण्डेय जी को
श्रद्धा समेत अर्पित

—रामलखन

अनुक्रम

अनुक्रम

(३) दास्य-भक्ति प्रमुख : तुलसीदासोत्तर राम काव्य का मध्य युग (संवत् १६५८-२०१८) १७-६५

(क) तुलसीदास के नाम पर अज्ञात कवियों द्वारा रचित ग्रंथ, राम चरित मानस का परिबृंहण-क्षेपकों की रचना, क्षेपकों की सूची, उत्तरकाण्ड के अन्त में क्षेपक के रूप में सम्मिलित लव-कुश काण्ड, (ख) प्रबन्ध काव्यों की रचना, मुख्य प्रवृत्तियां। कवि और काव्य-केशवदास-रामचंद्रिका, सरजूराम पण्डित-जैमिनि पुराण, मधुसूदन दास-रामाश्वमेध, पद्माकर-राम रसायन, गणेश-वाल्मीकि रामायण श्लोकार्थ प्रकाश, नवलसिंह कायस्थ-आल्हारामायण, सीता स्वयंवर, जन्म खण्ड, रामविवाह खण्ड, विलास खण्ड, पूर्वश्रृंगार खण्ड, मिथिला खण्ड, रूपकरामायण, रामायण सुमिरिनी, राम रहस्य कलेवा। रुद्रप्रताप सिंह-सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड, गोकुलनाथ-सीताराम गुणार्णव, रघुराजसिंह-राम स्वयंवर, चन्द्रोदीत दीक्षित-विजय राघवखण्ड, रघुनाथ दास रामसनेही-विश्रामसागर, रामनाथ "ज्योतिषी"-राम चंद्रोदय। बिहारी लाल शर्मा कौतुक-कोशलेन्द्र कौतुक। (ग) अभिनेय काव्य-प्राणचंद चौहान-हनुमन्नाटक, हृदयराम-हनुमन्नाटक, विश्वनाथ सिंह-आनंद रघुनंदन नाटक। (घ) वर्णनात्मक काव्य (राम की दैनंदिनी चर्चाओं के वर्णनपूर्ण काव्य। नाभादास-अष्टयाम सुमान-अष्टयाम, विश्वनाथ सिंह-रामचन्द्र की सवारी, जनक-राज किशोरी शरण-जानकी शरण मणि, ललकदास-सत्योपाख्यान, रघुराजसिंह-रामाष्टयाम, सरदार-रामलीला प्रकाश। (ङ) रामकथा के अंगभूत चरितों पर लिखे गये काव्य-प्रवृत्ति की दिशा। कवि और काव्य—भगवंत राम खीची-हनुमत पचीसी, गणेशप्रसाद-हनुमत पचीसी, सुमान-हनुमान नख शिख, हनुमान पंचक, हनुमान पचीसी, लक्षण शतक, हरितालिका प्रसाद त्रिवेदी-हनुमान स्तुति, लक्ष्मीनारायण सिंह "ईश"-लंका दहन, ब्रह्माश्रम-हनुमान हृदय। केवल चर्चित-रामलला पांडे-हनुमच्चरित्र, राम-हनुमान नाटक, सरदार-हनुमत भूषण। (च) रामचरित पर स्फुट काव्य-

सेनापति-कवित्त रामाकर। (घ) खड़ी बोली के आरंभिक गद्य में राम-साहित्य की रचनाएं। राम प्रसाद निरंजनी-भाषा योग वाशिष्ठ। दौलतराम-पद्मपुराण, सदल मिश्र-रामचरित।

स्फुट पद। ज्ञान अलि सहचरी जी-सियावर वेलि पदावली। सियालाल शरण 'प्रेमलता'-वृहद् उपासना रहस्य, प्रेमलता पदावली। रामनारायन दास-भजन रत्नावली। युगलमंजरी श्री-भावनामृतकादम्बिनी। रामवल्लभाशरण-'प्रेमनिधि' वृहत्कोशल खण्ड और शिव संहिता की टीका, स्फुट पद। रामवल्लभाशरण 'युगल विहारिणी'-युगल विहार पदावली। सीताराम शरण भगवान प्रसाद रूपकला-रामायण रसबिन्दु, मानस अष्टयाम दुमगम तरग, स्फुट पद। सीताशरण शुभशीला—युगलोत्कंठ प्रकाशिका। रामाजी-स्फुट पद। गीतों और पदों के चुने हुए उदाहरण।

(५) राम काव्य का आधुनिक युग : रामचरित पर-नवीन दृष्टि (संवत् १९७७ से २०२० तक) ९२-१८८

खड़ी बोली में साहित्य, रचना का आरम्भ। देश की आजादी की लड़ाई। राम चरित पर नवीन दृष्टि की आवश्यकता। (क) पूर्वाग्रही नवजागृत-राम काव्य-परंपरा-कवि और काव्य-रामचरित उपाध्याय-रामचरित चिन्तामणि, राधेश्याम कथावाचक-राधेश्याम रामायण। श्यामनारायण पांडे-तुमुल, जय हनुमान। शिवरत्न शुक्ल "सिरस"-श्री राम तिलकोत्सव, श्री रामावतार। गया प्रसाद द्विवेदी "प्रसाद"-नंदिग्राम काव्य। गोकुल चन्द्र शर्मा-अशोक वन। राजाराम श्रीवास्तव-लक्ष्मण शक्ति।

(ख) नवोन्मेषशालिनी राम काव्य परंपरा-रामचरित पर नवीन दृष्टि। सामाजिक तथा राजनीतिक नेता के रूप में, राम के अवतारवाद का रूपान्तर, रामकथा के कुछ पात्रों का नवीन रूप, भूले हुए पात्रों का स्मरण, नारी आन्दोलन तथा अछूतोद्धार की भावना। रामकथा पर नवीन दृष्टि का सूत्रपात।

१-प्रबन्ध काव्य और कविताएं—मैथिलीशरण गुप्त-साकेत, पंचवटी, प्रदक्षिणा। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'-राम की शक्ति पूजा, पंचवटी प्रसंग। जयशंकर 'प्रसाद'-चित्रकूट। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'-वैदेही वनवास। सुमित्रानंदन पंत-

१
पीठिका

हिन्दी साहित्य के इतिहास का आलोचनात्मक अध्ययन प्रारम्भ होने के साथ ही तुलसीदास की कृतियाँ अध्ययन का विषय बनकर आलोचकों के सामने आने लगी। आलोचकों ने तुलसी-साहित्य में जितनी ही गहरी पैठ की, उससे उन्हें इस बात का अनुभव हुआ कि तुलसीदास के साहित्य ने भारतीय लोक-मानस की नाड़ी की पहचान की है। कई एक शोध ग्रन्थ तुलसी साहित्य पर लिखे गये। साहित्य का ही नहीं, तुलसीदास के ऐतिहासिक पक्ष का भी महत्व बढ़ गया। उनके जन्म, जीवन, जन्मभूमि आदि की बातें साहित्य की आलोचना का प्रमुख अङ्ग बन गयी। अनेक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ इस दिशा में लिखे गये। डॉ० माता-प्रसाद गुप्त का **तुलसीदास** शोध-ग्रन्थ इस तरह के अध्ययनों मे सबसे पहले आता है। तुलसी साहित्य के इतने लम्बे अनुशीलनों के बाद एक नये अभाव का आभास आलोचकों के सामने उपस्थित हुआ अर्थात् उस सम्पूर्ण राम साहित्य का अनुशीलन किया जाना आवश्यक ज्ञात हुआ, जिस साहित्य का अंश तुलसीदास का कृतित्व है।

तुलसीदास के परवर्ती हिन्दी साहित्य में राम साहित्य का एक प्रमुख स्थान है। हमारे हिन्दी के साहित्य पर जो इतिहास लिखे गये हैं, कुछ न कुछ सभी इतिहासों में इस विषय की चर्चा है। इस अध्याय मे यह बताने का प्रयत्न किया जायगा कि इस विषय का आलोचनात्मक अध्ययन कब, कितना और किस प्रकार का हुआ तथा इस आलोचनात्मक अध्ययन मे किन-किन प्रमुख विचारों का सृजन किया गया है और अब आगे इस अध्ययन को किस धरातल पर और किन धाराओं में अग्रसर करना चाहिए।

पूर्ववर्ती अध्ययन

तुलसीदास एवं उनके साहित्य की तथा उसके साथ ही उनके प्रवर्तित मार्ग में लिखे गये राम-साहित्य की ओर आलोचनात्मक संकेत पहली बार

गार्सां द तासी के ग्रन्थ इस्त्वार द ला लितरेत्यूर ऐंदुई ए हिन्दुस्तानी में किया गया। इस ग्रन्थ का प्रकाशन संवत् १८९६ वि० में प्रथम बार हुआ था। सौभाग्य से इसका अनुवाद डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने प्रस्तुत कर दिया है। राम-काव्य लिखनेवाले कुछ प्रमुख कवियों के किंचित् आलोचनात्मक दृष्टिकोण का उल्लेख पहली बार गार्सां द तासी ने अपने इतिहास में किया। वे कवि हैं—तुलसी, केशव, नाभादास, अग्रदास, रामानन्द, रामसिंह और सेनापति। इनमें तुलसीदास के विषय में वे विशेष विस्तार से लिखते हैं।

दूसरा ग्रन्थ जिसमें तुलसीदास के राम साहित्य के कर्ता कवियों का परिचय हमें मिल सकता है, वह है शिवसिंह सेंगर का लिखा हुआ शिवसिंह सरोज। इस ग्रन्थ का प्रकाशन संवत् १९३४ में हुआ। इसमें कोई व्यवस्थित सामग्री नहीं है और न आलोचनात्मक ढंग पर कोई विवेचन ही; केवल कवियों के वृत्त और उनके कृतित्व की चर्चा भर है। लेकिन कई प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध राम साहित्य के कवियों की पहली सूची इस ग्रन्थ में आयी है। यह सूची राम-साहित्य या राम भक्ति शाखा के नाम से उल्लिखित नहीं है। ग्रन्थ को खोजपूर्वक पढ़ने के साथ हम उसमें से राम-काव्य के कर्ता कवियों को अलग कर सकते हैं।

हमारे प्रस्तुत शोध-विषय का सहायक तीसरा ग्रन्थ है यशस्वी विद्वान डा० सर जार्ज ग्रियर्सन का माडर्न वर्नक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान। ग्रियर्सन साहब ने विशेष रूप से तुलसीदास और उनके रामचरित मानस के सम्बन्ध में आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है और वह यथेष्ट विद्वत्तापूर्ण है। तुलसीदास के परवर्ती रामकाव्य रचयिता कवियों के सम्बन्ध में यद्यपि प्रभूत सामग्री इस ग्रन्थ में नहीं मिलती है; तो भी राम-साहित्य की प्रवृत्तियों, मान्यताओं एवं सीमाओं का एक ठोस आकलन हमें इस ग्रन्थ से प्राप्त होता है।

मिश्रबन्धु महाशयों का मिश्रबन्धु-विनोद हिन्दी साहित्य के इतिहास का एक कोश-ग्रन्थ है। यह चार भागों में विभाजित है। राम साहित्य के रचयिताओं के सम्बन्ध में पहली बार विस्तृत इतिवृत्ति का चयन इस ग्रन्थ में किया गया है। तुलसीदास और उनके राम-साहित्य की धारा का उल्लेख ग्रन्थकार ने किया है। उनकी उस धारा में आने वाले कवियों की परिगणना भी वह करता है। लेकिन परिशिष्ट सूची के रूप में ही कवियों की गिनती इस ग्रन्थ में की गयी है। यद्यपि समस्त सामग्री व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत नहीं की

जा सकी, फिर भी इतने विस्तार से पहली बार प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के सम्बन्ध में सामग्री इसी ग्रन्थ में मिलती है।

रामचन्द्र शुक्ल का प्रसिद्ध ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य का इतिहास रामभक्ति शाखा की हिन्दी काव्य धारा का व्यवस्थित परिचय प्रस्तुत करता है। इस ग्रन्थ मे मध्यकालीन रामभक्ति शाखा काव्यों का परिचय देकर कालक्रमानुसार स्फुट प्रवृत्तियों के अन्तर्गत उन कवियों का परिचय भी आ गया है, जिन्होंने रामभक्ति शाखा की प्रवर्तित परम्परा के बाद भी उस परम्परा में रचना की है। राम-भक्ति साहित्य की सीमा, स्वरूप, आधार एव लोकदृष्टि पर रामचन्द्र शुक्ल ने रामभक्ति शाखा के अन्तर्गत एवं इतिहास के दूसरे स्थलो पर भी विवेचनात्मक प्रकाश डाला है। कवियो के इतिवृत्ति और उनके कृतित्व के सम्बन्ध मे भी आलोचनात्मक विश्लेषण रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। तुलसीदास को सीमा को लेकर रामसाहित्य पर भारतीय दृष्टि से यह विवेचन हिन्दी की अभिनव देन थी। शुक्ल जी ने ही अपने इतिहास में पहली बार रामभक्ति के शाखा के रसिक सम्प्रदाय के साहित्य पर खरी टीका-टिप्पणी की है। उसके साथ ही राम साहित्य की प्रेरणाओ एव उसके आदर्शो पर अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है और उसे एक लोक-सम्मत साहित्य बताया है। शुक्ल जी का यह ग्रन्थ राम साहित्य के सम्बन्ध में बहुत दिनों तक मापदण्ड बना हुआ या और बना है। इस ग्रन्थ मे ही हिन्दी के आधुनिक काल में लिखे गए राम-साहित्य के ग्रन्थो पर आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया और उसका एक प्रभाव भी राम-साहित्य की होनेवाली रचनाओं पर पड़ा। समवेत रूप मे यह ग्रन्थ प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के आधार ग्रन्थो मे विभिन्न दृष्टियो से मूल्यवान् दृष्टि देनेवाला सिद्ध हुआ है। रामचन्द्र शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' संवत् १९८५ मे पहली बार प्रकाशित हुआ और उसका संशोधित परिवर्द्धित संस्करण संवत् १९९७ मे निकला।

राम-कथा-वाङ्मय के अनुशीलन में डा० कामिल बुल्के का एक बड़ा प्रबन्ध रामकथा नाम से सन् १९५० मे प्रकाशित हुआ, जिसमें विश्व की सभी भाषाओं में लिखे गये रामकथा विषयक साहित्य की चर्चा विश्लेषणात्मक दृष्टि से की गयी। इसमें हिन्दी साहित्य में लिखे गये राम-साहित्य पर विद्वान लेखक ने गंभीर विश्लेषण उपस्थित किया है। इस विश्लेषण मे एक विशिष्ट बात यह है कि हिन्दी में लिखे गये सम्पूर्ण राम-साहित्य की चर्चा करके लेखक रसिक सम्प्रदाय के राम-साहित्य के विषय में कोई उल्लेख नही करता; यद्यपि

आसने च शुभाकारे पुष्पप्रकर भूषिते
कुशास्तरण संस्तीर्णे रामः सन्निषसाद ह।
सीतामादाय हस्तेन मधु मैरे यकं शुभि
पाययया मास काकुत्स्थः शचीमिव पुरन्दरः।
वा० रा० उत्तर काड अ० ४२।

स पौरकार्याणि समीक्ष्य काले
रेमे विदेहाधिपतेर्दुहित्रा।
उपस्थितश्चारु वपुस्तदीयं
कृत्वोप भोगोत्सुकमेव लक्ष्म्या।
रघुवंश—१४।२४।

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्ति योगान्
अविरलित कपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिल परिरम्भ व्यापृतैकैकदोष्णो—
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥
उत्तर रामचरित—१-२७।

स्वेदबिन्दुनिचितार्घनासिका,
पूत हस्ततलतिका ससीत्कृतिः।
सोढमन्मथरसा नृपात्मजा तृप्तये
राघवस्य न बभूव ॥
जानकीहरणम्—८।२८।[१]

संस्कृत कवियों की इन उक्तियों में राम-भक्ति की रसिक-परम्परा का ही उन्मेष देखा गया है। शृङ्गार के इन वर्णनों में रसिक-संप्रदाय की शृङ्गार-साधना का प्रतिबिंब यदि स्वीकार किया जायगा तो जहाँ शृङ्गार-वर्णन राम-काव्य में प्राप्त होंगे, समस्त राम-साहित्य राम-रसिक-संप्रदाय का ही साहित्य हो जायगा।

शृङ्गार-वर्णन में भी आश्रय भाव-प्रकार आदि से प्रकार-भेद हो सकता है। भक्ति का साधना-परक शृङ्गार रसिक-भक्तों का शृङ्गार-रस है और उपर्युक्त कवियों की उक्तियों में जो शृङ्गार का वर्णन किया गया है, वह लोक-जीवन के आनन्द का उन्मुक्त शृङ्गार है। भक्त और भगवान के बीच उस शृङ्गार का वर्णन

१-देखिए, राम-भक्ति में रसिक-संप्रदाय।

नही हुआ है, सम्राट राम और राजरानी सीता जिस शृंगार के आलम्बन और आश्रय हैं और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जिन काव्यों में राम-सीता के इस लोक शृङ्गार का वर्णन आया है; उन्हीं काव्यों में राम के वीर चरित का दुर्धर्ष रूप भी कवियों ने उपस्थित किया है और वहाँ इस प्रकार राम काव्य के धीरोदात्त नायक हैं, रसिक-संप्रदाय के साकेतवासी युगल सरकार नहीं हैं, वहाँ उन काव्यो मे राम ने रावण का मानमर्दन किया है। राम का लोकोत्तर वीर-चरित उन काव्यों मे है जिनमे वीरता, शृङ्गार और शान्तभाव सभी आ सकते हैं। उन काव्यों के शृङ्गार को देखकर उनमे रसिक-संप्रदाय की महिमा की छाप या उसका उन्मेष देखना भ्रममात्र या पक्षपात है।

स्पष्ट है कि ऊपर के वर्णनो मे, जिन्हे डा० भगवतीप्रसाद सिंह ने 'राम-भक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' में रसिक सम्प्रदाय के शृङ्गारी-साहित्य के निदर्शन मे उद्धृत किया है, शृङ्गार भाव की अभिव्यक्ति अवश्य है; पर वह लोक-जीवन की अभिव्यक्ति है, साधना परक रसिक संप्रदाय की सिद्धान्त भूत शृङ्गार की अभिव्यक्ति उसे कभी नही कह सकते। वाल्मीकि रामायण के उद्धरण में कवि स्पष्ट ही सीता और राम की तुलना शची और पुरन्दर से करके उन्हे राजपुरुष की कोटि मे रख देता है। वहाँ वे लीला-ब्रह्म-पुरुष नही हैं। रघुवंश के श्लोक मे राम ने सीता के साथ रमण किया है, कब? जब उन्हे नगर की रक्षा तथा अन्य कार्यों को देख-भाल लेने के बाद अवकाश मिला है, तब। यहाँ भी राजा रामचन्द्र का उनकी रानी के साथ शृङ्गार वर्णन है। उत्तर राम-चरित के श्लोक मे पति-पत्नी के अनुराग में रात्रि के ही बीत जाने का उल्लेख है, यह चित्रण लोक-सामान्य-रतिभाव की अभिव्यक्ति है; जहाँ प्रेम की बातो में रात ही समाप्त हो जाती है। यहाँ भी लीला-पुरुष राम की रात नही बीती है। लीला-पुरुष राम की रात यदि होती तो रसिक सम्प्रदाय के वर्णनो के अनुसार चन्द्रमा और तारे ही अचल हो जाते और रात बीतती ही नही। इसी प्रकार जानकी-हरण के श्लोक में भी लोकसामान्य शृङ्गार का ही चित्रण है; उस अलौकिक शृङ्गार का नही, जिसके लिए रसिक-सम्प्रदाय के भक्त तरसा करते हैं।

डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' ने भी ऐसे ही विचार राम साहित्य मे रसिक परम्परा की खोज करते समय प्रकट किये हैं :—

> 'प्रसन्न राघव' महामहोपाध्याय पक्षधर मिश्र उपनाम जयदेव कवि-विरचित यह नाटक सात अङ्कों में पूरा हुआ है। अनुमानतः इसकी

> रचना १२वीं या १३वी शताब्दी में हुई होगी। इसके दूसरे अङ्क मे राम और सीता का चण्डिकायतन में मिलन तथा पूर्वानुराग का चित्रण बहुत ही मनोहारी शैली में हुआ है।...पूरा का पूरा दूसरा अङ्क राम-सीता के परस्पर आकर्षण, उत्कंठा, प्रीति एव सम्भोगेच्छा के भाव से परिपूर्ण है। इस प्रकार भवभूति के 'उत्तर रामचरित' में राम का सीता के विरह मे तडपना तथा 'महावीर चरित' में सीताराम का पूर्वानुराग इस सम्बन्ध मे लक्ष्य करने की वस्तु है[१]।'

ऐसे निदर्शनों के प्रस्तुत करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि संस्कृत साहित्य में शृङ्गार रस को रसराज माना गया है। प्रत्येक नाटक या काव्य मे नायक और नायिका की योजना तथा उनके आश्रय आलंबन से शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति संस्कृत-कवियों की एक परिपाटी रही है। प्रसन्न-राघव, 'उत्तर रामचरित' अथवा 'महावीर-चरित' में भी राम कवियों के लिए धीरोदात्त नायक के रूप में ही अभीष्ट हैं और सीता का वर्णन उनकी नायिका के रूप में ही उन कवियों ने किया है। लोक-सामान्य-शृङ्गार के अतिरिक्त उसे और कुछ नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार तो रामकथा के साहित्य मे जहाँ-जहाँ शृङ्गार हो, वहाँ-वहाँ रसिक-सम्प्रदाय के साहित्य की बुनियाद खोजना हास्यास्पद है।

हाँ, एक बात अवश्य बहुत कुछ ठीक जंचती है—वह है, 'हनुमन्नाटक' का राम रसिकोपासकों का परमप्रिय ग्रन्थ होना; जैसा पं० भुवनेश्वर मिश्र माधव ने अपने उपर्युक्त ग्रन्थ मे दिखाया है।[२] 'हनुमन्नाटक' का रचयिता हनुमान् कवि को बताया जाता है। किंवदंती के अनुसार महावीर हनुमानजी ही इसके रचयिता हैं। वैसे मूल ग्रन्थ के दो संस्करण उपलब्ध हैं और रचयिता के विषय मे ठीक कुछ कहा नहीं जा सकता है। पर हाँ, यह अवश्य है कि इसमें राम-सीता के उद्दाम शृङ्गार का वर्णन हुआ है और उस वर्णन शैली तथा भाव मे राम-रसिक-सम्प्रदाय की कुछ छाप अवश्य है। हो सकता है इस अस्त-व्यस्त नाटक प्रस्तर का उद्धार करते समय किसी राम-रसिक भक्त कवि ने अपनी रचना कर उसका परिवृंहण किया हो और उसमें इस प्रकार का शृङ्गार वर्णन प्रस्तुत कर दिया हो।

१-रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ० १६८-१६९।

२-वही, पृ० १६६-१६७।

पर इन वर्णनो तथा इन ग्रन्थो का निदर्शन प्रस्तुत करके राम रसिक-सम्प्रदाय के साहित्य को इतना पीछे नही खीचा जा सकता। उसकी यथार्थ रचना १९वीं-२०वी विक्रम शताब्दी से ही आरम्भ हुई इसमे दो मत नही होने चाहिए।

इन ग्रन्थो के अतिरिक्त 'कल्याण' मासिक पत्रिका (भक्त चरिताक और १९७२ में ही प्रकाशित 'श्रीरामाङ्क'); आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'हिन्दी साहित्य,' पं० रामबहोरी शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास,' डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिए सामग्री प्रदान करते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन

तुलसीदासोत्तर काल मे लिखे गये राम साहित्य का अध्ययन, उसकी प्रवृत्तियो का परिचय एवं उसकी महिमा का मूल्यांकन हमारे इस शोध-प्रबन्ध का विषय है। तुलसीदास के समकालीन महाकवि केशवदास से लेकर २०वी शताब्दी के हरिदयालु सिंह 'हरिनाथ' के 'रावण महाकाव्य' तक एवं अग्रदास की 'ध्यानमंजरी' से लेकर रामवृक्ष 'बेनीपुरी' की 'सीता की माँ' तक हमारे इस शोध प्रबन्ध का विषय अभिव्याप्त है। इस प्रबन्ध को मुद्रण के लिए प्रेस को देते समय इसमे १९७२ तक के प्रकाशित अद्यतन राम-साहित्य का भी विवेचन करके इसे अब तुलसीदासोत्तर राम साहित्य का प्रामाणिकतम संदर्भ ग्रन्थ बना दिया गया है। हिन्दी राम-काव्य के साहित्य पर इतना विस्तृत विश्लेषण जो अपनी सीमा मे हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिककाल को आत्मसात करता है, पहली बार किया जा रहा है।

मेरा यह प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम पांच अध्यायो मे भक्तिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रस्तुत किये गये रामसाहित्य की रचनाओं का अध्ययन है। छठे अध्याय मे रामचरित के प्रतिनायकों के प्रति सहानुभूति की नूतन प्रवृत्ति के उदय पर दृष्टिपात किया गया है। सातवें अध्याय में तुलसीदास के परवर्ती राम साहित्य में राम भक्ति का और आठवें अध्याय मे तुलसीदास के परवर्ती राम साहित्य मे कला का निदर्शन प्रस्तुत किया गया है। उपसंहार के रूप मे राम साहित्य के भविष्य का आकलन है। इतनी अवधि के भीतर ब्रजभाषा, अवधी और खडी बोली हिन्दी मे जो राम साहित्य लिखा गया है, उन्ही रचनाओं की चर्चा इस प्रबन्ध में आयी है। आज की लोक भाषाओं-

मैथिली, भोजपुरी, बैसवाड़ी और अवधी आदि में जो राम-साहित्य लिखा गया है, उसकी चर्चा इस प्रबन्ध में नहीं की गयी है।

रामकथा इस राष्ट्र के विशेषतः उत्तर भारत के लोकजीवन का एक अङ्ग है। हिन्दी जिस क्षेत्र की भाषा है, वहाँ के जीवन में राम का चरित्र इतना रम गया है कि बिना राम को अपनी वाणी पर उतारे इस लोक जीवन का कवि गा नहीं सकता। यही कारण है कि आज के अछूतोद्धार, नारी आन्दोलन, युद्ध और शान्ति की समस्याओं का समावेश भी आधुनिक काल के राम कथा-साहित्य में हो गया है। इन सब विषयों पर पहली बार इस प्रबन्ध में विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भविष्य में रामचरित्र के सम्बन्ध में कवियों की कल्पना नितान्त अकल्पित मोड़ लेगी। यह साहित्य-दृष्टि सर्वाधिक आधुनिक काल में है। इसीलिए आधुनिक काल के राम-साहित्य पर विस्तार से विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

२

तुलसी-पूर्व का राम-साहित्य और तुलसीदास

संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं तक रामकथा के इतने रूप पाये जाते हैं कि निश्चय ही नहीं हो पाता कि वास्तव में रामकथा का मूल या प्राचीन रूप क्या है ? वाल्मीकि के आदि-काव्य के आदि सर्ग में रामकथा की जो संक्षिप्त कहानी दी हुई है, वह उसकी ऐतिहासिकता की ओर असंदिग्ध संकेत करती है; जो इतिहास पीछे से जन-श्रुति बन गया है—

> बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः ।
> मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयते नरः ॥
> इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
> नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी ॥[1]

अतएव यह लगता है कि राम एक ऐतिहासिक पुरुष थे और उनके लोक दुर्लभ गुणों ने तथा उनके विराट व्यक्तित्व ने लोक को इतना आकर्षित किया कि राम की कथा में स्थान-भेद तथा युग-भेद से अन्तर पड़ रहा है। वैसे कवियों की कल्पना ने तो उसमें पर्याप्त परिवर्तन अपनी सुविधा के अनुसार किया ही होगा। बौद्ध तथा जैन पुराण ग्रन्थों तथा विदेशी साहित्यों में रामकथा में जो अवान्तर भेद हैं; उनमें राम की ऐतिहासिकता के कारण ही एक मूलभूत समानता है, वह मौलिक समानता सीताहरण और रावण-वध की है । राम की ऐतिहासिकता स्वीकार करते हुए डा० कामिल बुल्के अपनी राम कथा में लिखते हैं—

> "अतः रामकथा के दो अथवा तीन स्वतन्त्र भागों की कल्पना का कहीं भी समीचीन आधार नहीं मिलता । इस तरह रामकथा-विषयक आख्यान काव्य का एक ही मूल-स्रोत रह जाता है अर्थात् एक ऐतिहासिक

१-वाल्मीकीय रामायणम्, बालकाण्ड १ । ७-८ ।

घटना। उस प्राचीन आख्यान काव्य के आधार पर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की है।"[१]

आदिकाव्य के प्रथम सर्ग से, जिसे मूल रामायण भी कहते हैं, यह सिद्ध है कि वाल्मीकि द्वारा आदि काव्य रामायण लिखे जाने के पूर्व रामकथा पर कोई छोटा-मोटा लोक-काव्य अवश्य प्रचलित था, वही लोक काव्य वाल्मीकि के रामायण का आधार बना।

कालिदास ने रघुवंश में जो भूमिका प्रस्तुत की है, उससे पता लगता है कि वाल्मीकि और कालिदास के बीच में अनेक कवियों ने राम की कहानी को लेकर रचनाएँ की होंगी; यद्यपि उन सब का पता आज नहीं है और कालिदास ने उन्हीं रचनाओं को 'रघुवंश' का आधार बनाया है—

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशे स्मिन्पूर्वसूरिभि: ।
मणौ वज्र समुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गति: ॥
रघुवंश १-४ ।

कालिदास के युग तक राम भगवान के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हुए थे; यद्यपि इसकी कल्पना चल चुकी थी और समाज के विराट मानव के रूप में वे कवियों को बार-बार मोह रहे थे।

कालिदास के पहले भास ने रामकथा पर दो नाटक लिखे हैं : (१) प्रतिमा नाटक और (२) अभिषेक नाटक। पहले नाटक में राम के वनवास से लेकर रावण पर राम की विजय तथा जन-स्थान के आश्रम में भरत से भेंट और वहीं राम के राज्याभिषेक का वर्णन है, फिर बाद में राम पुष्पक विमान से अयोध्या लौटते हैं। नाटक में कुल सात अङ्क हैं। दूसरे नाटक में बालि-वध से लेकर कथा राम-अभिषेक तक वर्णन की गयी है। इस नाटक में ६ अङ्क हैं। आदि कवि की रामायण को आलोचक समय-समय पर परिवर्द्धित कृति मानते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से कालिदास और भास रामकथा के कृतिकार के रूप में संस्कृत साहित्य में हमारे सामने आते हैं। कालिदास का समय गुप्त साम्राज्य का स्वर्ण-युग ४०० ई० के आस-पास है। भास का समय कालिदास के पूर्व है। कालिदास ने अपने 'मालविकाग्निमित्र' में स्वयं इसका उल्लेख किया है।

भास का समय तीसरी शताब्दी आलोचकों को स्वीकार है।

१-देखिए डॉ० कामिल बुल्के की रामकथा।

ऐसा मालूम पडता है लोक-रुचि में रामचरित की प्रियता बढ़ रही थी। शिवभक्ति के स्थान पर राम-भक्ति का उदय हो रहा था। भक्ति विषय के चरित कवियों के काव्य के विषय थे। संक्षिप्त में शिवचरित को लेकर लिखे गये काव्यों के साथ रामचरित के काव्यो पर भी रचना हुई। कालिदास ने शिवचरित और रामचरित पर दोनों में काव्य लिखकर लोक की द्विधा रुचि का संकेत किया है।

कालिदास के बाद संस्कृत में रामचरित को लेकर कई महाकाव्यो की रचना हुई। उनके नाम ये हैं—

१–भट्टि काव्य अथवा रावण वध—समय-५००-६५० ई० के बीच, इसमे २३ सर्ग हैं। वाल्मीकि रामायण के पहले छः काण्डो की कथाओ का वर्णन इसमें है।

२–जानकीहरणम्—८०० ई० के लगभग। इसके प्रणेता कुमारदास हैं। इसमें कुल २५ सर्ग हैं। यह कालिदास के 'रघुवंश' के टक्कर की रचना है। वाल्मीकि रामायण के पहले छः काण्ड की कथा का वर्णन है।

३–रामचरित—नवीं शताब्दी ई०। इसके लेखक अभिनन्द हैं। ये गौड राज्य के पाल वंश के राजा के आश्रित थे। इस कथा का आरंभ किष्किंधा-कांड की कथा से होता है और अन्त लंका-कांड की कथा से। इसमें कुल ३६ सर्ग हैं।

४–और ५–रामायण मंजरी और दशावतार चरित—इसके लेखक कश्मीर निवासी महाकवि क्षेमेन्द्र हैं। क्षेमेन्द्र का समय ११वी शती ईसवी है। उन्होंने 'वाल्मीकि रामायण' को ५,३८६ श्लोकों में संक्षेप कर 'रामायण मंजरी' नाम से एक नया ग्रन्थ लिखा। इनका दूसरा ग्रन्थ 'दशावतार चरित' है। इस ग्रन्थ में २६४ छन्दों मे रामकथा का वर्णन है और उस कथा को कवि अपने मौलिक ढङ्ग से वर्णन करता है। कथा का आरम्भ राम के पक्ष में न होकर रावण के पक्ष से होता है। रावण के अत्याचार और सीताहरण के साथ राम का प्रसङ्ग कवि उपस्थित करता है।

६–उदार-राघव—१४वी शती ई०। इसके लेखक साकल्यमल्ल हैं। यह केवल ६ सर्ग तक ही प्राप्त है। इसमें शूर्पणखा के विरूपीकरण तक की ही कथा आयी है।

तुलसीदास के पूर्व संस्कृत मे लिखे ये ही महत्वपूर्ण काव्य हैं। इनके अतिरिक्त १५वी शताब्दी में वामन भट्टवाण का लिखा हुआ रघुनाथ चरित

तथा तुलसीदास के समकालीन चन्द्र-कवि का लिखा हुआ जानकी परिणय और अद्वैत कवि का लिखा हुआ रामलिंगामृत भी उल्लेखनीय हैं।

भास के बाद रामकथा पर कई उत्कृष्ट नाटकों की रचना हुई, जिनमें रामकथा की कथावस्तु को कवियों ने बहुत-कुछ नाटक के अनुरूप तोड़ा-मरोड़ा है। रामकथा के सबसे प्रसिद्ध नाटककार भवभूति ८वीं शती ई० के पूर्वार्ध में हुए। ये कन्नौज दरबार के आश्रित थे। उन्होंने दो नाटक लिखे—महावीर चरित और उत्तर रामचरित। दोनों में सात-सात अङ्क हैं। महावीर चरित में राम सीता के विवाह से लेकर रावण वध और रामाभिषेक तक की कथा का वर्णन है। उत्तर-रामचरित में लोकापवाद के कारण सीता का त्याग और वाल्मीकि-आश्रम में उनका पोषण तथा वाल्मीकि द्वारा सीता सम्बन्धी नाटक का अभिनय। उसमें रामाश्वमेध के प्रसङ्ग में लवकुश से अपनी हारी हुई सेना का राम द्वारा वाल्मीकि आश्रम में जाकर घटनास्थिति का परिचय पाने का प्रसङ्ग है। इसमें सीता की कष्ट-अवस्था का अभिनय देखकर राम मूर्छित होते हैं और वाल्मीकि द्वारा जीवित सीता को पाकर अपने को धन्य मानते हैं।

८वीं शती ईस्वी में अनंग हर्ष मायुराज ने उदात्त राघव नाटक की रचना की। इसमें ६ अङ्क हैं। राम के वनवास से लेकर रावण वध तक की कथा का वर्णन है। उदात्त राघव के बाद रामकथा में दिङ्नाग का कुन्दमाला नाटक और मुरारि कवि का अनर्घराघव नाटक प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'कुन्दमाला' की कथा वही है जो भवभूति के उत्तर रामचरित की कथावस्तु है। प्रसन्न राघव की कथावस्तु 'महावीर-चरित' की भाँति है।

रामकथा पर १० अङ्कों का बाल-रामायण नाटक की रचना कवि और आचार्य राजशेखर ने किया। राजशेखर का भी समय ९वीं शती ई० है और ये कन्नौज के राजदरबार में थे। नाटक की कथा सीता-स्वयंवर से आरम्भ होती है और रावण-विजय पर समाप्त होती है।

महा नाटक अथवा हनुमन्नाटक की रचना १०वीं शताब्दी ईस्वी में हुई और १५वीं ईस्वी शती तक इसमें क्षेपक मिलाये जाते रहे। इसके दो अलग-अलग सम्पादक अथवा पाठ-कर्ता हैं—दामोदर मिश्र और मधुसूदन। दामोदर मिश्र के 'हनुमन्नाटक' में १४ अङ्क हैं। कथा का आरम्भ सीता-स्वयंवर से लेकर रावण वध पर समाप्त होता है। इस नाटक में राम और सीता के शृङ्गार का भी वर्णन है। कथा में बहुत परिवर्तन हुआ है।

दक्षिण भारत के शक्ति भद्र ने आश्चर्य चूडामणि नाटक लिखा। इसका समय निश्चित नही। इसमें सात अङ्क हैं। कथा का आरम्भ शूर्पणखा के प्रसङ्ग से होता है और अन्त सीता की अग्नि परीक्षा से।

प्राकृत में रामकथा सम्बन्धी प्रसिद्ध रचना रावण वह अथवा सेतुबंध है। इसकी रचना ६ठी ईस्वी के उत्तरार्द्ध में हुई। यह महाराष्ट्री-प्राकृत मे लिखी गयी है। इसका लेखक राजा प्रवरसेन को कहा जाता है। यह एक उत्कृष्ट काव्य है। इसके वर्णन का अनुकरण संस्कृत के अनेक रामकथा काव्यकारो ने किया है।

अपभ्रंश मे रामकथा सम्बन्धी प्रसिद्ध रचना स्वयंभू कवि का पउमचरिउ है।

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य मे उक्त रचनाएँ प्रमाणिक हैं और ललित साहित्य की सीमा मे हैं। इनके अतिरिक्त पुराण शैली, कथा शैली, धार्मिक-त्रेधा, संधिता-शैली मे अनेक रामकथा सम्बन्धी रचनाएँ तुलसीदास के पूर्व हुई थी; जिनमे महाभारत, स्कन्द-पुराण के अतिरिक्त अध्यात्म रामायण, योगवशिष्ठ, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण आदि अनेक विस्तृत रचनाएँ हैं। तुलसीदास ने 'नाना पुराण निगमागम' कह कर इस ओर संकेत किया है, लेकिन वे काव्य की सीमा मे नही हैं, न इनके समय और रचयिता का कोई समय है। तुलसीदास ने राम की भक्ति का जो निरूपण अपने काव्य मे किया है, उनकी चर्चा संस्कृत के इन ललित-साहित्य की रचनाओ मे नही है। उसका बीज पौराणिक एवं इतर रामायणों से उन्होंने लिया है और अवतारवाद की प्रतिष्ठा की है। रामचरितमानस की कथावस्तु मे अनेक प्रसङ्गो के लिए तुलसीदास संस्कृत की उक्त रचनाओ के आभारी हैं।

इस प्रकार राम के जीवन ने एक व्यापकता ग्रहण की। आरम्भ मे सामाजिक, पारिवारिक और राजनीतिक परिवेश में बँधी कहानी क्रमशः भक्ति भावना से अनुप्रेरित होकर अवतारवाद मे परिणत हो गई, जिसका पूर्ण परिपाक तुलसीदास के 'रामचरित मानस' में हुआ और उसके बाद धीरे-धीरे यह कथा दार्शनिक सिद्धान्तो का आधार बनती गई, जिसके फलस्वरूप रामानन्दी एवं रसिक संप्रदायो की उपासना का आविर्भाव हुआ।

तुलसीदास के पहले हिन्दी साहित्य में राम की कथा मौलिक और आंशिक रूप में कुछ कवियों ने लिखी है। अपभ्रंश के स्वयंभू कवि के 'पउमचरिउ' का उल्लेख ऊपर किया गया है। १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ईश्वरदास ने

अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु का भरत-मिलाप नाम से दोहा-चौपाइयों में वर्णन किया है। इसमें भरत की दास्य भक्ति का आदर्श चित्रित किया गया है। राम जन्म तथा अंगद-पैंज भी उनकी रचनाएँ हैं।[१] सूरसागर में भी राम-कथा पर पदों की रचना सूरदास ने की है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित और श्री नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा संपादित सूरसागर के प्रथम खण्ड के नवम-स्कन्ध में रामकथा पर १६७ पदों का संग्रह है।

सम्भवत: और रचनाएँ भी तुलसीदास के पूर्ववर्ती कवियों ने रामचरित पर की होंगी, लेकिन तुलसीदास के 'रामचरित मानस' के आविर्भाव ने उन सब रचनाओं को जहां का तहां रहने दिया। 'रामचरित मानस' के सम्मुख वे लोक में प्रसार न पा सकीं। आदि कवि वाल्मीकि के रामायण काल के बाद दूसरी बार राम की कहानी की विराट् प्राणप्रतिष्ठा लोक जीवन में तुलसी की वाणी के माध्यम से 'रामचरित मानस' में ही हुई। तुलसीदास की इस कृति का जितना प्रचार-प्रसार और आदर अनुगमन भारतीय लोक जीवन में हुआ, उतना अब तक 'वाल्मीकि रामायण', 'श्रीमद्भागवत', 'भगवद्गीता' और 'दुर्गा सप्तशती' का ही हुआ था। 'रामचरित मानस' दूसरे शब्दों में राम का वाणी-अवतार है। तुलसीदास के युग में भारतीय-समाज और लोक-जीवन संकटापन्न था, उसकी तुलना में 'रामचरित मानस' का पारायण उनके लिए साक्षात् राम के रूप में रक्षक बन गया। इस विराट् काव्य ने भारतीय लोक जीवन को अपने धर्म से, अपने राष्ट्र से, अपने आदर्श और अपनी मूलभूत सत्ताओं से डिगने न दिया। लोक की शक्ति का आधार यही 'रामचरित मानस' था।

१-नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६१, सं० २०१३, अंक १।

३

दास्य-भक्ति-प्रमुख :
तुलसीदासोत्तर राम-काव्य का मध्ययुग

रामचरित मानस की लोकप्रियता ने राम-साहित्य की रचना का आन्दोलन सा खड़ा कर दिया। लेकिन इस लोकप्रियता और इस आन्दोलन के आविर्भाव मे रामचरित मानस की रचना के अनन्तर १ शताब्दी का समय लगा। मानस की रचना का आरम्भ संवत् १६३१ वि० में हुआ और संभवत: १८वी 'विक्रम शताब्दी के उत्तरार्द्ध' मे इस आन्दोलन ने जोर पकड़ा। आन्दोलन मे जैसा कि होता है, प्रचार-प्रसार की ओर जितना ध्यान रहता है उतना कर्तव्य और कर्ता को महत्व नही दिया जाता। अत: इस अवधि के बाद ऐसी रचनाएं रामकथा के सम्बन्ध में हुई हैं, जिनमें कर्ताओं के नाम अज्ञात हैं। इसके पूर्व और तुलसीदास के ठीक बाद कवियो ने जिनमे प्रसिद्ध आचार्य केशवदास भी है, रामकथा को लेकर प्राजल-साहित्य लिखने का स्तुत्य प्रयास किया है। किन्तु एक शताब्दी के अनन्तर अज्ञातनामा रचनाकारो ने राम साहित्य के आन्दोलन का रूप खड़ा किया। इस आन्दोलन के मुख्य दो रूप थे :

१—रामचरित मानस के बीच-बीच मे रामकथा संबंधी ऐसे प्रसंगों को, जो मानस मे नहीं हैं, दोहा-चौपाई में लिखकर क्षेपक के रूप में मिलाना। अथवा बिना क्षेपक का उल्लेख किये ही 'रामचरित मानस' में ऐसी रचनाओ को सम्मिलित कर देना। 'रामचरित मानस' का यह परिबृंहण बड़ी सतर्कता के साथ हुआ।

संभवत: आन्दोलन के इस रूप ने पहले जन्म लिया। उसके बाद आन्दोलन का दूसरा रूप शुरू हुआ।

२–तुलसीदास के नाम पर अथवा अज्ञात रूप में ही रचनाएँ लिखकर उनकी प्रसिद्धि करना और इस प्रकार भगवद्-भक्ति का पुण्य अर्जित करना। दोनों आन्दोलन का आन्तरिक रूप एक ही है–तुलसीदास के नाम पर रचना और उसकी प्रसिद्धि का प्रयास करना और रामभक्ति के पुण्य का भागी बनना। रामभक्ति के पुण्य के अर्जन-अर्थ ही कोई रचनाकार अपना नाम रचना के साथ प्रकट नहीं करता, राम कथा के जिन प्रसंगों की रचना दोहा-चौपाई में हुई, उन्हें तो सीधे 'रामचरित मानस' में मिला दिया गया और ऐसी रचनाएं, जो किसी विशेष कथा-प्रसंग पर नहीं की गयी, सामान्यतः राम का गुणगान थी। उनमें अलग-अलग छंदों का प्रयोग किया गया और ऐसी रचनाएं तुलसीदास के नाम पर प्रसिद्ध की गयी। इन सभी रचनाओं में जो प्रकाशित की गयी वही आज हमारे सामने है, अनेक रचनाएं जो अप्रकाशित ही रह गयी, उनसे हम अपरिचित हैं और अनेक खोज विवरणों में उल्लिखित हैं, किन्तु उनमें कर्ता का नाम अज्ञात है। जो खोज-रिपोर्टों में उल्लिखित नहीं हुई हैं धीरे-धीरे दीमकों की भेंट हो जायगी, वे केवल आन्दोलन के लिए ही कृतकर्म होकर समाप्त हो गयी, ऐसा हमें समझ लेना चाहिए।—

तुलसीदास के नाम पर रचित ग्रंथ

'रामचरित मानस' के क्षेपकों की तुलना में ऐसी रचनाओं की संख्या कम है। सुविधा की दृष्टि से पहले इन्हीं पर विचार किया जाता है। तुलसीदास के नाम पर निम्नलिखित रचनाए प्रसिद्ध तथा प्रकाशित हैं—

१–जानकी विजय तथा स्वर्गारोहण—वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई से प्रकाशित।

२–मुक्तावली रामायण—मुरादाबाद से प्रकाशित।

३–रामायण छन्दावली—नवल किशोर प्रेस लखनऊ में प्रकाशित।

४–सगुन प्रबन्ध— —

५–कुंडलिया रामायण—नवल किशोर प्रेस, लखनऊ में प्रकाशित।[1]

६–छप्पय रामायण—इस पुस्तक के कई संस्करण उपलब्ध हैं—

सरस्वती प्रकाशन, बनारस से प्रकाशित (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित)—सौधि पुस्तकालय गोरखपुर में प्रकाशित।

१–कुन्डलिया रामायण का एक सटीक संस्करण, इंडियन प्रेस (प०) प्रा० लि० प्रयाग से भी प्रकाशित।

जानकी विजय—मे लंका विजय के बाद श्वेत-द्वीप निवासी एक दूसरे हजार मुख वाले रावण के वध की तथा रामचन्द्र के स्वर्गारोहण की कथा है। जिस प्रकार दुर्गा सप्तशती मे देवी द्वारा असुरों का वध किया गया है, उसी कथा का अनुकरण प्रस्तुत काव्य में है। शाक्तो के क्षेत्र में रामकथा और रामचरित के प्रवेश का यह प्रयास रामभक्ति के आन्दोलन का ठेठ रूप है। इस पुस्तक की भाषा इसे बिल्कुल ही तुलसीदास से अलग करती है। नीचे के उदाहरण से ग्रंथ के उद्देश्य और शैली का पता चलेगा—

कह तब सिया जोर युगपानी
नाथ मुनिन जो विनय बखानी ॥
किये विरोधन खल रजनीशा।
हना प्रबल रावण दश शीशा ॥
भाखल रहित सकल संसारा।
मिट्यो महा महिभार अपारा ॥
अर्बाह न प्रभु कछु कारज कीन्हा।
बधि दश शीश कौन यश लीन्हा ॥
सहस शीश कर दूसर रावण।
प्रबल महाभट भूरि भयावन ॥
कीन्ह ताहि समर संहारा।
तो प्रभु कौन हरा महि भारा[१]॥

राम के प्रति सीता की यह उक्ति है। उस रावण का वध करने के लिए सीता के साथ राम सेना सजा कर श्वेत द्वीप पहुँचते हैं। घनघोर युद्ध प्रारंभ होता है पर राम-विजय नही पाते और सीता की ओर कातर होकर देखते हैं—

भयउ समर संकेत अति बलहु न कछू बिसाय।
जनक सुता दिशि देखि प्रभु कहत भये रघुराय ॥
परम शक्ति अतुलित बल माया।
तव प्रभाव निगमागम गाया ॥
सहजैं तुम निज भृकुटि बिलासा।
त्रिभुवन साजि पोषि पुनि नाशा ॥

१-जानकी विजय (खेमराज श्रीकृष्ण दास बंबई से प्रकाशित), पृ० १०, सं० १६८८।

धरि यह सौम्य स्वरूप सुहावा ॥
यहि विधि भय यह काल यम मारा।
कीजै अब ताको संहारा[1] ॥

अंत में सीता की शक्ति सेना प्रकट होती है, जैसा कि दुर्गा सप्तशती में रक्तबीज के युद्ध में दुर्गा के अनेक रूप देवी की शक्ति के रूप में आविर्भूत हुए थे। रावन मारा जाता है और सीता की स्तुति होती है। दोहा, चौपाई, हरिगीतिका छंद का प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत कथानक में सीधे-सीधे रामकथा को शाक्त मान्यता की सीमा में घसीटने का प्रयास है। इसी के साथ स्वर्गारोहण काण्ड है, जिसकी कथा वाल्मीकि रामायण के उत्तर-काण्ड में ली गयी है। राम के स्वर्ग प्रयाण की कथा 'जानकी विजय' शैली में ही कही गयी है। दोनों ग्रन्थों के अंत में तुलसीदास का नाम आता है—

तुलसिदास सीता-विजय, पढ़ै जो कोइ चितलाय।
पावहि परम विश्राम सिय रघुवीर कीरति अति नई।
यह जानि तुलसीदास आस विहाय मन संशय गई।

कृतियों के अन्त में तुलसीदास का नाम देने का अभिप्राय इनके प्रचार को लाभ ही है।

मुक्तावली रामायण—किसी संत संप्रदाय वाले की रचना है। इसमें योग की चर्चा है और निर्गुण ब्रह्म की महिमा गायी गयी है। निर्गुण ब्रह्म को ही राम के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

रामायण छंदावली—इसमें सात काण्ड के क्रम से संक्षेप में राम की कथा गायी गयी है। इसमें दोहा, चामर, सुन्दरी, हरिगीतिका आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। इसमें कहीं-कहीं कवि ने तुलसीदास की पदावली रखकर तुलसीदास के कृतित्व से अभिन्न करने का प्रयत्न किया है। लेकिन ऐसे कुछ प्रमाण इस ग्रन्थ में मिल जाते हैं जिससे हम इसे तुलसीदास की कृति न मानने के लिए ही बाध्य होते हैं। तुलसीदास ने परशुराम और लक्ष्मण का संवाद जनकपुर की धनुषयज्ञ की सभा में ही करवाया है। यह बहुत ही प्रसिद्ध बात है। वाल्मीकि रामायण में इसके विपरीत परशुराम राम के विवाह कर चुकने के बाद माता आदि के साथ अयोध्या लौटते समय रास्ते में मिलते हैं। इस छंदावली

1—जानकी विजय, खेमराज श्रीकृष्णदास बंबई से प्रकाशित, पृ० २६-२७ सं० १९८८।

में भी वाल्मीकि रामायण की भांति ही परशुराम के आगमन का वर्णन है। कवि कहता है :—

ब्याहि चले नृप चारि सहोदर,
मारग बीच मिले फरसाधर ।
चापहि सौंपि भये तपसीवर,
राउ विवाहि आइ अपने घर ।

तुलसीदास इस प्रकार छंदावली में 'रामचरित मानस' के विपरीत कथा प्रसंग का वर्णन न करते । 'छंदावली' में एक और उद्धरण है—

दसकंधर घटकर्ण अघमार घर दुख होइ ।
गयौ गगन जो देह धरि कहि सुरपति सों बोइ ।

मुझे 'रामचरित मानस' तथा तुलसीदास की दूसरी कृतियों मे कुंभकर्ण के लिए 'घटकर्ण' का प्रयोग कहीं नहीं मिला है। 'घटकर्ण' शब्द का यह प्रयोग रीवा नरेश विश्वनाथ सिंह के 'आनंद रघुनंदन नाटक' में है। यह छंदावली किसी कवि के द्वारा आनंद रघुनंदन नाटक के समकाल या बाद में लिखी गयी; ऐसा प्रतीत होता है।

सगुन प्रबन्ध—इसमें सात सर्ग और ४६ सप्तकों मे दोहों में राम की कथा कही गयी है। इन दोहों द्वारा प्रश्न की रीति से कार्य की सिद्धि आदि का सगुन विचार करने की पद्धति का विवरण भी है। इसे राम-कथा के आधार पर ज्योतिष तथा तांत्रिक विषय की रचना माना जा सकता है। इसकी रचना की मूल प्रेरणा तुलसीदास के रामशलाका प्रश्न से ली गयी है।

कुंडलिया रामायण और छप्पय रामायण—बहुत कुछ तुलसीदास की कृतियों के साथ घुल-मिल गये हैं। कई इतिहास लेखकों ने तुलसीदास की प्रसिद्ध १२ कृतियों के साथ इनका भी उल्लेख किया है। तुलसीदास की कृतियों के प्रसिद्ध टीकाकार बैजनाथ कुर्मी प्रसिद्ध रामभक्त और रसिक-संप्रदाय के साधक थे। ये बाराबंकी के रहने वाले थे और संवत् १६३५ वि० में विद्यमान थे। तुलसीदास की कृति के रूप मे उन्होंने छप्पय रामायण की टीका भी की है जो नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित है। रचना इस ढंग की है कि तुलसीदास के विचारों और भावों से मेल खा जाती है। फिर भी तुलसीदास की 'कवितावली' में आये छप्पयों तथा 'छप्पय रामायण' के छप्पयों की शैली में पर्याप्त भेद है। इसकी अन्य प्रतियों में ३१ छप्पय हैं, किन्तु बैजनाथ कुर्मी की टीका की प्रति में ४६ छप्पय हैं। प्रत्येक छप्पय के अंत मे यह टेर है—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग मे जो पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं उनमें भी अज्ञात कवियों की रामसाहित्य की रचनाएं हैं। 'पाण्डुलिपिया' नाम से उनकी सूची प्रकाशित हो गयी है। इनमें से दो पुस्तकें राम-साहित्य की रचना हैं जिनके लेखक अज्ञात हैं —

१. रामचरित्र[१]
२. रामरत्नावली[२]

इसमें पहली पुस्तक 'रामचरित्र' किसी जैन कवि की रचना है। इसकी रचना (ढाल) पदो में हुई है। कुल पुस्तक पत्राकार है और १३७ पन्ने हैं। भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है। पुस्तक के आरम्भ में ही 'श्री जिनाय नम :' लिखा है, जैन धर्म मे रामकथा को मान्यता रही है उसी के अनुसार राम को तीर्थंकर मानकर इस काव्य की रचना चार अधिकारों में हुई है। ग्रन्थ के आरम्भ और अंत में राम और उनके पार्षदों की प्रशंसा हुई है। ग्रन्थकार किसी केशराज मुनि की आज्ञा से इस काव्य की रचना करता है। केशराज मुनि के समय का पता नहीं है। न तो ग्रन्थ मे कहीं रचनाकाल का उल्लेख है। वैसे यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। अन्यत्र इतिहास ग्रन्थों में इसकी चर्चा भी नहीं आती। समय के निर्धारण के अभाव में यह निश्चय न होने पर कि यह काव्य तुलसीदास की परवर्ती रचना है या पूर्ववर्ती, इसे इस शोध निबंध को आलोचना का विषय नहीं बनाया जा रहा है।

राम-रत्नावली

इस ग्रन्थ का प्रारम्भ इस दोहे से होता है—

> गिरिजा पति हंस-हंस कहे नरितत दे दे ताल।
> पाये परमानंद मय नाय रकार मकार॥

तुलसीदास की 'राम-सतसई' की भांति राम को संबोधित करके भक्ति, दीनता एवं वैराग्य की वाणी दोहों मे व्यक्त की गयी है। ग्रन्थ बीच में खण्डित मालूम होता है। दोहो का जो क्रम दिया गया है, उसके अनुसार कुल १०० दोहे होने चाहिए; लेकिन दोहों की यथार्थ संख्या जो ग्रन्थ में है वह ४० है। १०० की संख्या देने के बाद रामचरित मानस बालकाण्ड

१-पाण्डुलिपियां—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ४१४।
२-वही, पृ० ४१६।

का छंद 'भये प्रकट कृपाला दीन दयाला······' उद्धृत किया गया है और उसके नीचे यह दोहा है —

सुनो राम स्वामी बचन चल न चातुरी मोर।
प्रभु अजहूँ मैं पातकी अंतकाल गति तोर॥

मूल ग्रंथ में भक्ति और दीनता की वाणी देखिये—

हंसनि के संपति नहीं, नहीं वनज व्यापार।
अन्नवे है मोती चुने, देन हार करतार॥

'राम-रत्नावली' के नाम से इन दोहों की रचना किसी अज्ञात कवि ने की है।

रामचरित मानस में क्षेपकों की रचना

अज्ञात लेखको द्वारा राम साहित्य की सबसे बड़ी रचना 'रामचरित मानस' क्षेपको की है। भिन्न-भिन्न संस्करणों के क्षेपकों के अलग-अलग लेखक हैं, उनके नाम का पता नही है। राम कथा को सर्वांगपूर्ण रखने के लिए उन्होने क्षेपको की रचना की है और अपने विचार से 'रामचरित-मानस' की उपयोगिता में वृद्धि की है, क्योंकि उनकी दृष्टि में 'रामचरित मानस' भगवान के अवतार की एक कथा है। कथा की कोई कड़ी कही अधूरी न रहे, उन्हें इसलिए क्षेपकों की रचना करनी पड़ी है। उन्हें तुलसीदास के कथा-शिल्प और काव्य-स्वरूप की कसौटी का कोई भान नहीं था।

बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक क्षेपकों की संख्या कम अधिक होती रही है, किन्तु लवकुशकाण्ड जो पूरा का पूरा क्षेपक ही है, सभी ऐसे संस्करणो में समान रूप से दिया गया है। इस लवकुशकाण्ड की कथा बाल्मीकि रामायण और पद्मपुराण दोनो से ली गयी है। प्रायः सभी क्षेपक बाल्मीकि-रामायण, पद्मपुराण, अध्यात्म-रामायण, अद्भुत रामायण तथा शिव-पुराण की कथाओ के आधार पर हैं।

सबसे अधिक क्षेपक खेमराज श्री कृष्णदास वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई से प्रकाशित रामचरितमानस (रामायण) के संस्करण मे हैं, जिसके टीकाकार तथा सम्पादक पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र हैं।

लवकुशकाण्ड का आरम्भ करते समय रामचरित मानस के उत्तरकाण्ड में प्रस्तुत गरुड़-भुशुण्डि संवाद से ही पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र उसका सम्बन्ध जोड़ते हैं और तुलसीदास की कथावस्तु मे उसे मिलाने का प्रयत्न करते हैं :—

३५–जानकी का विलाप।
३६–जानकी की व्यवस्था का वर्णन।
३७–रावण की सभा मे विचार।

लंकाकाण्ड

३८–गोवर्धन की कथा।
३९–शुक-सारण का रावण के आगे वानरों की संख्या का वर्णन करना।
४०–रावण द्वारा जानकी को माया रचित शिर दिखाना।
४१–लक्ष्मण का मूर्छा से उठना, धूम्राक्ष आदि का मरण।
४२–मेघनाद का माया की सीता का वध करना।
४३–मेघनाद की शक्ति और सुलोचना मिलने की कथा।
४४–सुलोचना के सती होने की कथा।
४५–अहिरावण की कथा।
४६–अहिरावण के जन्म की कथा।
४७–अहिरावण का राम-लक्ष्मण को हर ले जाना।
४८–अहिरावण वध।
४९–नारान्तक की कथा, उसका युद्ध और वध।
५०–नारान्तक की स्त्री विन्दुमती का सती होना।

उत्तरकाण्ड

५१–विभीषण का रत्नमाला लेकर जानकी के गले में डालना।

लवकुशकाण्ड

५२–(रामाश्वमेध कथा)।

अन्य प्रक्षिप्त संस्करणो के क्षेपको की संख्या प्रायः इसकी आधी है। पं० ज्वालाप्रसाद जी ने अपने संपादित संस्करण को सर्वांगपूर्ण करने के लिये नये-नये क्षेपकों की खोज की है।

लवकुशकाण्ड प्रायः उत्तरकाण्ड के बाद ही रखा गया है। पर किसी किसी संस्करण में उत्तरकाण्ड के बीच ही उसे भी क्षेपक रूप में डाल दिया गया है, इस तरह से रखने मे रचनाकार का दृष्टिकोण तुलसीदास के 'रामचरित मानस' की सीमा का उल्लंघन न करने का है। गुल्लूप्रसाद केदारनाथ बुक्सेलर, कचौड़ी गली, बनारस के यहां से प्रकाशित 'रामचरित मानस' (रामायण) मे लवकुश काण्ड को अलग न मानकर उत्तर काण्ड के भीतर ही क्षेपक के रूप में डाल दिया है। लवकुश काण्ड और रामाश्वमेध की कथा समाप्त होने के बाद

तक तुलसीदास के गरुड़ और भुशुण्डि का संवाद शुरू होता है। लवकुशकाण्ड के क्षेपक का भी मनमाना विस्तार रचनाकारों ने किया है। कोई केवल रामाश्वमेध को ही लेता है, कोई सीता परित्याग, लवकुश-जन्म, लवकुश का जनेऊ, शास्त्रविद्या की शिक्षा आदि के साथ सांगोपांग कथा की पद्धति दुहराता है।

इन यथाकथित लेखकों द्वारा लिखित क्षेपकों का कोई साहित्यिक मूल्यांकन नहीं है, तुलसीदास की शैली और शब्दावली तक का उन्होंने अनुकरण किया है। सभी क्षेपक दोहे और चौपाई में ही लिखे गये हैं, कहीं-कहीं उनमें अन्य छन्दों का प्रयोग भी हुआ है, जिनमें प्रमुखता हरिगीतिका की है। अलंकार, भावव्यंजना और रस का इनमें कहीं दर्शन नहीं हो सकता। इनकी विशेषता इतनी अवश्य है कि वे अपने को तुलसीदास की शैली में इस कदर मिलाते हैं कि 'रामचरित मानस' मूल तथा क्षेपक की रचनाओं में साधारण पाठकों को अंतर नहीं मालूम होता। लवकुश-काण्ड (बम्बई संस्करण) की एक चौपाई है–

हरि इच्छा भावी बलवाना। तुम कहँ तात सदा कल्याना॥

(लवकुशकाण्ड, पृ० १३४४)

इस चौपाई की रचना में रामचरित मानस की इस चौपाई की स्पष्ट अनुकरण और छाया है—

हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदय विचारत संभु सुजाना।

प्रायः 'रामचरित मानस' के पद, भाषा और भावों के सहारे ही क्षेपकों की कथा प्रस्तुत की गयी है।

इस प्रकार साहित्यिक दृष्टि से इन क्षेपकों का कोई महत्त्व न होने पर भी ये हमारे अध्ययन का विषय बनते हैं, क्योंकि इन्होंने सामान्य लोकदृष्टि में अपने को 'रामचरित मानस' का समान-धर्मा बना लिया है, दूसरे प्रसिद्ध कवियों की रामकथा सम्बन्धी रचनाओं की तुलना में क्षेपक 'रामचरित मानस' के साथ रहकर अधिकाधिक पाठकों द्वारा पढ़े गये हैं, समझे गये हैं, उन्होंने रामकथा का प्रचार किया है, रामभक्ति के आन्दोलन में सहयोग दिया है। पुराणों तथा बाल्मीकि रामायण एवं इतर संस्कृत ग्रन्थों की रामकथा को हिन्दी में प्रस्तुत करने का बहुत बड़ा श्रेय इन क्षेपकों को है। क्षेपकों की अनेक कथाएं ऐसी हैं जो हिन्दी के दूसरे कवियों द्वारा नहीं लिखी गयी है और क्षेपकों में ऐसा राम-साहित्य है जो पहली बार हिन्दी में प्रस्तुत हुआ है, भले ही वह संस्कृत के किसी पुराण अथवा काव्य से छायानुवाद ही हो।

रामकथा परक प्रबन्ध, अभिनय एवं स्फुट काव्य

(संवत् १६५८ से १६७० तक)

रामभक्ति का आन्दोलन 'रामचरित मानस' में साकार हो उठा और इतने विराट रूप मे साकार हुआ कि फिर राम के जीवन पर ऐसी प्रशस्त रचना दूसरे कवि द्वारा संभव न हुई। उसका प्रभाव यह पड़ा कि जिन दूसरे कवियों ने राम के जीवन पर कृतियां लिखी, उन्होंने 'रामचरित मानस' से अपने प्रबन्ध काव्यो में शैली, शिल्प में कुछ भिन्नता दिखाकर अपनी विशिष्टता प्रकट करने की कोशिश की है—

(१) प्रबन्ध काव्य में रीति-पद्धति का समावेश।

(२) रामचरित मानस के अवशिष्ट कथा-प्रसंग पर कथा काव्य।

(३) पुराण-शैली।

(४) आल्हा शैली।

(५) भक्ति की अतिरंजित शैली।

किन्तु इन शैलियो मे हुई रचनायें, किसी प्रकार भी 'रामचरित मानस' की समता मे जनता को आकर्षित न कर सकी। साथ ही कृष्ण-भक्ति के प्रभाव मे आकर रामभक्ति के उपासकों ने तुलसीदास से रामभक्ति के स्वरूप और विषयवस्तु मे ही आमूल परिवर्तन कर दिया और उन्होंने रसिक-संप्रदाय की परम्परा राम की उपासना में चलायी, जिस परम्परा में बहुत बड़ा साहित्य लिखा गया। उस पर एक अलग अध्याय मे विचार किया जायगा। उपर्युक्त पांच शैलियो मे तुलसी के अनन्तर आधुनिक खड़ी बोली के युग तक कवियों ने अपनी कृतिया प्रस्तुत की हैं।

प्रबन्ध काव्यो के अतिरिक्त रामकथा पर दूसरी प्रकार की कृतिया अभिनेय काव्य थे और जिनकी परम्परा तुलसीदास के बाद से आधुनिक काल में राधेश्याम कथावाचक की राधेश्याम रामायण तक है। वास्तव में इन रचनाओं का ध्येय केवल अभिनय था जिनका उपयोग रामलीला मंडलिया किया करती थी। इनमें अभिनेय तत्त्वो और नाटक के शिल्प का कोई ध्यान नही था, केवल आकर्षक संवाद-स्थलो की उद्भावना की ओर कवियो का ध्यान रहा है।

तीसरी प्रकार की रचनाएं जो राम कथा पर हुई, वह हैं उसके अंगभूत-चरितों का गान करते हुए प्रबन्ध काव्य के रूप मे प्रस्तुत की गई हैं। इन अंगभूत चरितो में हनुमान और लक्ष्मण ही प्रधान हैं।

चौथे प्रकार की रचनाएं हैं :—स्फुट साहित्य। तुलसीदास की 'कविता वली' और 'दोहावली' की शैली का ही अनुकरण इन रचनाओ मे हुआ है।

पाचवें प्रकार की रचनाए हैं, वर्णनात्मक काव्य। जो प्रबन्ध-काव्य की सीमा में ही आते हैं पर जिनके विषय और शैली मे पर्याप्त अन्तर है। भक्ति काल से रीतिकाल तक इनकी पद्धति चलती रही है। पीछे से इस शैली की रचनाएं रसिक संप्रदाय के अधिक निकट हो गयी। नाभादास का 'अष्टयाम' इस शैली की कदाचित् पहली रचना थी।

आगे क्रमशः विभिन्न प्रकार की रचनाओ का विश्लेषण उपस्थित किया जा रहा है।

प्रबन्ध काव्य

प्रबन्ध काव्य में रीति-पद्धति का समावेश सबसे पहले आचार्य केशवदास ने किया है। रामचरित के अवशिष्ट कथा प्रसंग—विशेषकर रामाश्वमेध अथवा लवकुश चरित को काव्य का विषय अनेक कवियो ने बनाया पर उनकी रचनाए 'रामचरितमानस' के आठवें काड अथवा क्षेपक के रूप मे हुई हैं। स्वतंत्र काव्य के रूप में मधुसुदन दास का 'रामाश्वमेध' प्रशस्त रचना है। भक्ति की अतिरंजित शैली मे 'विश्राम–सागर' आधुनिक काल में लिखा गया, उस पर कुछ दूरागत राम रसिक सम्प्रदाय का भी प्रभाव पड़ा है, भक्ति की अतिरंजना उसी का प्रभाव है।

आल्हा शैली की रचना भी आधुनिक काव्य की प्रवृत्ति है, किन्तु उसके मूल मे राम भक्ति का आन्दोलन ही प्रमुख है। रामचर्चा आल्हा शैली में भी हो जाय तो आल्हा की तरह वर्षा काल मे ढोलक की तान पर उसका भी गायन किया जाय, यह है इसकी रचना की मूल-प्रेरणा।

प्रायः आधुनिक काल तक इस तरह की रचनाएं राम भक्ति के आन्दोलन के रूप मे होती रही हैं।

केशवदास

(समय संवत् १६१२-१६७४)

केशवदास हिन्दी काव्य-शास्त्र के प्रथम आचार्य माने जाते है। विस्तार से और व्यवस्थित रूप मे पहली बार काव्य-शास्त्र की चर्चा केशवदास ने की है। उन्होने केवल काव्य-शास्त्र में ही अपना पाडित्य नही दिखाया है, बल्कि छन्दः शास्त्र मे भी अपनी कुशलता दिखायी है। सही बात तो यह है कि काव्य

शास्त्र की अपेक्षा वे छन्द: शास्त्र में अधिक प्रमुख हैं। उनकी 'रामचंद्रिका' मे रामकथा-गायन, अलंकारों का प्रयोग तथा छन्द:-रचना का निदर्शन-तीनों एक साथ हैं। इसकी रचना सं० १६५८ वि० में हुई। 'रामचरितमानस' के बाद प्रबन्ध रूप मे रामकथा की यह प्रथम प्रमुख रचना है।

'रामचंद्रिका' में जो प्रस्ताव केशवदास ने दिया है उसमे तत्कालीन रामभक्ति के आन्दोलन की पुष्टि होती है। वाल्मीकि ने केशवदास से स्वप्न में मिलकर कहा है —

> सुखकंद हैं। रघुनंद जू ॥
> जग यों कहै। जगवंद जू ॥१३॥
> मुनी एक रूपी, सुनी बेद गावैं।
> महादेव जाको, सदा चित्त लावैं ॥१४॥
>
> × × ×
>
> न राम देव गाइहै। न देव लोक पाइहै ॥१६॥
> (रामचंद्रिका पू०-पृ०-६-७)

इसी प्रकार 'रामचंद्रिका' के अन्य प्रसगो के देखने से यह प्रतीत होता है कि कवि केशवदास रामभक्ति को अपनी वाणी का विलास बनाए हुए हैं। वस्तुत: इस काव्य में कवि के रामभक्ति रस से सिक्त हृदय के दर्शन नही होते। प्रतिभा मंडित-पंडित बुद्धि का चमत्कार ही इस काव्य मे अधिक है। इसीलिए यह काव्य रीति परम्परा का जितना प्रतिनिधित्व करता है उतना भक्ति परम्परा अथवा रस निर्भर कवि वाणी का नही। यह अवश्य है कि केशवदास ने राम भक्ति के आन्दोलन से प्रभावित होकर इस ओर रचना करने की ठानी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है —

> 'केशवदास को कवि हृदय नही मिला था। उनमे वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि मे होनी चाहिए, वे सस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने पांडित्य और रचना कौशल की धाक जमाना चाहते थे। पर इस कार्य मे सफलता प्राप्त करने के लिए भाषा पर जैसा अधिकार चाहिए वैसा उन्हे प्राप्त न थे। उनकी 'रामचंद्रिका' अलग-अलग लिखे हुए प्रसंगों और वर्णनों का संग्रह सी जान पडती है। ··· ··· ··· रामायण की कथा का केशव के हृदय पर विशेष प्रभाव रहा हो, यह बात नहीं पाई जाती। उन्हें एक बडा

प्रबन्ध-काव्य लिखने की इच्छा हुई और उन्होंने उसके लिए राम की कथा ले ली [१]।'

केशवदास ने प्रथम प्रकाश मे भूमिका में लिखा है 'वाल्मीकि से उन्हें रामकाव्य लिखने की प्रेरणा मिली और इसीलिए उन्होने प्रमुख रूप से वाल्मीकि रामायण को ही अपनी 'रामचंद्रिका' का आधार बनाया है। किन्तु 'प्रसन्न राघव' आदि नाटकों की भी सहायता उन्होंने ली है। तुलसीदास की भांति 'नाना पुराण निगमागम' का अनुशीलन उनके पास न था और न तो 'रामचंद्रिका' के माध्यम से सामाजिक दर्शन और राजनीतिक गति-विधि की दिशा ही कवि केशवदास को निर्धारित करनी थी। उन्हें तो इष्ट था केवल अपनी प्रतिभा का पांडित्य प्रदर्शन। और वह प्रदर्शन उन्हे रामकथा की पृष्ट-भूमि पर करना पड़ा, क्योकि तत्कालीन जनता रामकथा की रसिक बन चुकी थी।

ऐसा ज्ञात होता है कि केशवदास के समय में ही रामभक्तों ने राम-लीलाएँ करना प्रारम्भ कर दिया था, और ऐसे संवादो की उपादेयता बढ़ गयी थी जो अभिनय मे काम आ सकें। तुलसीदास के बाद प्राणचंद चौहान के 'रामायण महानाटक' और हृदय राम के 'हनुमन्नाटक' की रचनायें भी इस प्रकार का संकेत करती हैं, ये रचनाएँ संभवतः तुलसीदास के जीवन काल में और 'रामचरित मानस' की रचना के ३५-४५ वर्षों के अनन्तर ही लिखी गयी। रामकथा के अभिनय की ओर जनता का सम्मान देखकर ही ऐसा किया गया होगा। हिन्दी नाट्य-कला का कोई समुचित विकास उस समय तक हुआ नहीं था। केशवदास ने कदाचित् उस समय की प्रवृत्ति देखते हुए ही 'राम चंद्रिका' में अभिनय के उपयोग के लिए भी संवादों का सन्निवेश किया। केशवदास के ये संवाद बहुत अच्छे बन पड़े हैं, इनमें उनकी सूझ-बूझ, पांडित्य तथा उक्ति वैचित्र्य सब कुछ है। और स्पष्ट है कि 'रामचंद्रिका' के इन संवादो की रचना मे तत्कालीन रुचि का ही प्रभाव है। 'रामचंद्रिका' के ये संवादो 'रामचरित मानस' के उन प्रसंगों मे आकर्षक हैं, जिन पर ये लिखे गये हैं। इनमे पाच संवाद तो काफी लम्बे हैं —

१–सुमति विमति संवाद।
२–रावण-बाणासुर संवाद।
३–राम-परशुराम संवाद।

१-हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ०, २३३-२३५।

४–रावण-अंगद संवाद ।
५–लवकुश नरतादि संवाद ।

'रामचंद्रिका' में कुल ३६ प्रकाश हैं। कथा रामजन्म से लेकर लवकुश चरित तक है। पर कथा प्रसंगों का नियमित विस्तार और सन्निवेश काव्य में नहीं पाया जाता है। दार्शनिक, धार्मिक तथा मार्मिक प्रसंगों की सच्ची अवतारणा काव्य मे है ही नहीं, सर्वत्र कवि का उक्ति वैचित्र्य और पांडित्य रामकथा की पृष्ठभूमि मे नट की भाँति अपना प्रदर्शन करता दीख पड़ता है। एक अक्षर से लेकर ३५ अक्षर तक के छंद इस काव्य मे हैं। प्रत्येक प्रकाश मे विभिन्न छदों का प्रयोग हुआ है। कितने ही ऐसे छदो की योजना कवि केशवदास ने की है, जो हिन्दी साहित्य मे अन्य कवियों द्वारा प्रयुक्त नहीं हुए हैं।

इतना सब होने पर भी केशवदास और उनकी 'रामचन्द्रिका' का राम-साहित्य में महत्व यथेष्ट है। तुलसीदास के 'रामचरित मानस' के बाद यह प्रथम प्रबन्ध काव्य राम कथा पर है। आज भी रामलीला के संवादों में केशवदास की 'राम-चन्द्रिका' के छन्दों का उपयोग किया जाता है। महत्व की बात यह है कि छन्द, शैली और कथा सभी मे केशवदास ने अपना स्वतन्त्र मार्ग अपनाया है, जबकि पीछे के कवियों ने कुछ न कुछ तुलसीदास का अनुकरण किया है।

अलंकारों और उक्तियो का ऐसा प्रयोग 'रामचन्द्रिका' में हुआ कि शास्त्रज्ञ विद्वानो का ध्यान सहज ही उसकी ओर आकर्षित होने लगा। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' सामान्य लोक और राम भक्तो के कंठ का हार हुआ परन्तु 'रामचन्द्रिका' सामान्य जनों मे प्रचारित न होकर विद्वानों के अनुशीलन का विषय बन गयी। ऐसा अनुमान है कि शास्त्रज्ञो का ध्यान पहले-पहल रामचन्द्रिका ने आकर्षित किया और 'रामचरित मानस' ने बाद मे। जानकीदास ने 'रामचन्द्रिका' पर अपनी पांडित्यपूर्ण टीका संवत् १८७२ में उसे बोधगम्य बनाने के लिए ही लिखी।

धनुष भग के प्रसङ्ग मे परशुराम के क्रोध का वर्णन करने मे केशवदास अच्छा उक्ति चमत्कार दिखलाते हैं। परशुराम ने जब पूछा कि धनुष किसने तोड़ा, बन्दी उत्तर देना चाहता था कि 'राम ने', पर जब तक उसके मुँह से केवल 'रा' निकला परशुराम ने समझा अच्छा, रावणराज ने तोड़ा है। और उनका क्रोध रावण के ऊपर बरस पड़ता है।

केशव 'रा' के कहत ही समुझयों रावणराज।

ऐसा समझना परशुराम का सङ्गत भी था, क्योंकि उस समय धृष्टता के कार्यों में रावण की ही ख्याति थी। फिर परशुराम अपने फरसे को सम्बोधित करते हैं :—

यद्यपि है अति दीन, मूढ़ ! तऊ शठ मारिबे।
गुरु अपराधहि कौन केशव क्योंकर छांड़िबे।

रावण की लङ्का को राख करने के लिए वे कृत संकल्प हो उठते हैं—

वर बाल शिखीन अलेख समुद्रहि सोखि सखा सुखही तरिहौं।
अस लंकहि औटि कलंकित की पुनि पंक कलंकहि की भरिहौं।
भल भूंजि के राख सुखै करिकै दुख दीरघ देवन के हरिहौं।
सित कंठ खे कंठहि की कठुला दसकंठ के कंठन की करिहौं।
(पृ० १११, छन्द ५)

परशुराम इतना सब कहते जाते हैं, रावण के ऊपर उनका इतना क्रोध बरस रहा है; पर किसी के कहने की हिम्मत नहीं है कि रावण ने नहीं, राम ने यह धनुष तोड़ा है। फिर जब वे स्वयं पूछते हैं—

यह कौन को दल देखिये ?

तब उत्तर मिलता है—

यह राम को दल लेखिये ?
(रा० पू० पृ० १११)

और वास्तविकता का ज्ञान परशुराम को होता है और वे राम के ऊपर जिस प्रकार बरसते हैं, उसका श्रेष्ठ निदर्शन 'रामचन्द्रिका' में है। परशुराम ने फरसे को सम्बोधित करके कहा है—

केशव हैहयराज को मास हलाहल कौरन खाइ लियो रे।
बालिग भेद महीपन को घृत घोरि दियो न सिरानो हियो रे॥
मेरो कह्यो करि मित्र कुठार जो चाहत है बहुकाल जियो रे।
तौं लौं नहीं सुख जौं लग तू रघुवीर को श्रोन सुधा न पियो रे॥
(रा० पू० पृ० ११६, छं० २१)

सरजूराम पंडित
(सं० १८०५ में वर्तमान)

इन्होंने संवत् १८०५ में एक कथात्मक ग्रन्थ 'जैमिनि-पुराण' नाम से दोहे-चौपाइयों तथा अन्य छन्दों मे लिखा, जो ३६ अध्यायों में समाप्त हुआ है। यह ग्रन्थ केवल रामकथा के सम्बन्ध मे नहीं है फिर भी इसका

महत्व राम साहित्य में है। महाभारत, और पुराण की अन्य कथाओं के साथ संक्षिप्त रामायण, सीता त्याग और लवकुश युद्ध का प्रसङ्ग इसमें वर्णित है। उपर्युक्त विवेचित पंच शैलियों मे यह पुराण शैली की रचना है।

श्री मधुसूदनदास

सं० १८३९ मे मधुसूदन दास ने 'रामाश्वमेघ' प्रबन्ध काव्य की रचना की। इसमें कुल ६८ अध्याय हैं। पद्म पुराण के पाताल खण्ड की सम्पूर्ण कथा को कवि ने थोड़ा विस्तार के साथ दोहे-चौपाई शैली में गाया है। तुलसीदास के रामचारित मानस की पूरी शैली का ही अनुकरण कवि करता है। अतः दोहा, चौपाई, सौरठा, हरिगीतिका, और बीच-बीच मे संस्कृत के गेय छन्दों का प्रयोग मानस की भांति रामाश्वमेघ मे भी है। लेकिन तुलसीदास की भांति प्रवाह पूर्ण एवं प्रांजल भाषा का प्रयोग मधुसूदन दास ने नही किया है।

यह सब होने पर भी मधुसूदनदास में प्रबन्ध-पटुता और वस्तु-योजना की क्षमता का नितान्त अभाव है। 'रामाश्वमेघ' काव्य का प्रबन्ध इतना अरुचिकर है कि इसे केवल पौराणिक कृति की सज्ञा दी जानी चाहिए न कि काव्य की। इसे हम इस प्रकार से समझ सकते हैं—समस्त कथा को व्यास ने सूत से कहा है और व्यास उस कथा को कह रहे हैं जिसको शेष ने वात्स्यायन से कहा है। राम लङ्का जीतने के बाद पुष्पक विमान से सीता के साथ अयोध्या मे प्रवेश करते हैं। उनका राज्याभिषेक होता है। वे अयोध्या के राज्य का संचालन करने लगते हैं। अब इसके आगे 'रामाश्वमेघ' की कथा प्रारम्भ होती है।

एक दिन अगस्त्य जी पधारते हैं। राम उनकी पूजा करते हैं। अगस्त्य ने रावण का इतिहास सुनाया और यह बताया कि रावण ब्राह्मण पुत्र था। यह सुन कर राम व्यग्र हो गये और उन्होंने कहा कि तब तो मुझे ब्रह्म-हत्या का दोष लगा। अब यह ब्रह्म-हत्या का पाप कैसे मिटे इसका मुझे उपाय बताइए। अगस्त्य ने रामचन्द्र को अश्वमेघ यज्ञ करने का सुझाव दिया। अश्वमेघ-यज्ञ शुरू हुआ। वशिष्ठ ने राम से कहा कि सीता की स्वर्ण की प्रतिमा बनाकर यज्ञ का सम्पादन किया जाय। अब यहाँ पर पाठक असमंजस मे पड़ता है कि राम के राज्याभिषेक के बाद सीता क्या हो गयीं, जो उनकी स्वर्ण की प्रतिमा निर्मित करनी है। पाठकों को इसका उत्तर इस काव्य में ५० अध्याय के बाद मिलता है। जब शत्रुघ्न के साथ राम की सेना अश्वमेघ यज्ञ के घोड़े के पीछे-पीछे बाल्मीकि ऋषि के आश्रम में प्रवेश करती है और लव उस घोड़े के गले में राम के विजय की यश-गाथा बाँध कर क्षत्रिय स्वाभिमान से घोड़े को पकड़ लेते हैं

और सेना को ललकार देते हैं। उसी समय वात्स्यायन लवकुश सीता के सम्बन्ध में शेष से प्रश्न करते हैं और शेष सीता के निर्वासन-की सारी कथा का वर्णन करते हैं। अत्यन्त स्पष्ट है कि कथानक का यह क्रम पाठक के हृदय में बड़ी विरसता पैदा करेगा और कोई भी रोचकता काव्य के ऐसे प्रबन्ध मे न आ सकेगी। काव्य केवल पौराणिक शैली की कहानी बनकर रह जायगा और ऐसा ही हुआ।

कथानक की समाप्ति राम द्वारा लवकुश और सीता को ग्रहण करके अयोध्या लौटने और यज्ञ को पूरा करने के साथ परिणत होती है। रामाश्वमेघ के कथानक के तीन प्रमुख आकर्षण हैं—(१) लोक धर्म के अनुशासन में राम द्वारा सीता का निर्वासन। (२) वाल्मीकि के आश्रम में रोती-विलखती सीता को शरण और लव और कुश का जन्म। (३) तीसरा सबसे अधिक रोचक प्रसङ्ग है वह है अश्वमेघ यज्ञ के घोड़े के पीछे चलने वाली राम की विजयनी सेना के साथ लवकुश का तुमुल संग्राम और राम की सेना का पराजय। वैसे इस रामाश्वमेघ काव्य में पहले दो प्रसङ्ग तो बिल्कुल छोड़ दिए गए हैं और तीसरा प्रसङ्ग ऐसा आया है कि उसका पता ही नहीं चलता। उसकी रोचक्ता उभर कर काव्य मे आ ही नही पाती। लगभग ५० अध्यायों तक पौराणिक और अवान्तर कथाओ के वर्णन में ही कवि लगा रह गया और राम की सेना कितने पौराणिक राजाओं और असुरो के साथ विजय करने के बाद तब लवकुश के साथ युद्ध करने के लिए बाल्मीकि आश्रम में पहुँचती है और तीसरा यह रोचक प्रसङ्ग नितान्त दब जाता है। सुबाहु, विद्युन्माली, वीरमणि, शिव, सुरथ आदि के युद्ध की श्रेणी में लव और कुश के मार्मिक युद्ध को भी मिला देना कवि की मार्मिक स्थलों की पहचान के सम्बन्ध मे नितान्त अनभिज्ञता है।

इस प्रकार रामाश्वमेघ का प्रबन्ध नितान्त शिथिल और अरोचक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में जो लिखा है कि 'रामाश्वमेघ' नामक एक बड़ा और मनोहर प्रबन्ध काव्य बनाया जो सब प्रकार से गोस्वामी जी के रामचरित मानस का परिशिष्ट होने के योग्य है। गोस्वामी जी की प्रणाली के अनुसरण में मधुसूदन दास को पूरी सफलता हुई है।[१]" आचार्य शुक्ल के इस कथन से सहमत होने के लिए रामाश्वमेघ काव्य पढ़ने पर हमें कोई आधार नही मिलता।

भाषा के सम्बन्ध में अवश्य ही जहां-तहां मधुसूदन दास ने प्रांजलता प्रस्तुत

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४०८-४०६।

आला रवि वारन के काजै कहो श्री सरन माहि ।
सार रामजस आन सदा ही सज्जन संत आदरहिं ताहि।
आला छंदन की चोकरो कहो सान सो सोइ।
करहै निज अभ्यास गान मैं जिनके चित आला रुचि होइ।
आला के लालच सों जे जन पढ़हैं श्रवन कराहिं ।
गाहे यही राह सो नीकैं ते सव अंत परम पद जाहिं।
उनइस से बारस की भादो सुदि आठैं बुजवार ॥
दिवस सतरैं वरस गांठ को श्री कृतं आरायत किय त्यार।

अन्होंने को राम भक्ति की प्रेरणा देते हुए कवि ग्रंथ का आरम्भ करता है—

आला कहिए सब देवन में रघुकुल मनि श्रीराम ।
तिनके चरनन मैं सिरधर कै मैं श्री चरन करो परिनाम।
सिव कैलास सिघर वर वरनै उमावरि न मारि।
आला तुमरै रामभकि है भायो आला जस अघ हारि ॥
आला जे जन भजत राम को करैं न विष की आस।
आला सेवैं राम भजन को तेई सत्य राम के दास ।
आला जया राम को पूजा आला है जिमि नाम ।
तैसे यह आला रामायन उन के पूर्ण करैं सब काम ॥

'आल्हा रामायन' में भाषा का प्रसाद गुण, लोकरुचि की पहचान तथा रामचरित का सरल प्रस्तुतीकरण है और इसका सर्वाधिक विशिष्ट महत्व है—एक नयी शैली में रामकथा का गायन।

नवल सिंह ने राम और कृष्ण दोनों चरितों को लेकर कई पुस्तकें काव्य रूप में लिखी हैं। उनकी कुछ पुस्तकें 'आला रामायन' से आकार में बड़ी हैं, पर शैली की दृष्टि से उनका महत्व उतना नहीं है, जितना 'आला रामायन' का है। नवल सिंह का दूसरा उपनाम 'श्री सरन' है। उनकी रामकथा पर शेष पुस्तकें ये हैं—

(१) जन्म खंड।
(२) सीता स्वयंवर ।
(३) राम विवाह खंड।
(४) विलास खंड।
(५) पूर्व शृंगार खंड ।

(६) मिथिला खंड ।

इनके ये ६ काव्य एक ही विषय के विस्तार है। कवि के काव्यों के अंत की पुष्पिका में इन्हें 'रामचन्द्र विलासान्तर्गत' लिखा है अर्थात् 'रामचन्द्र-विलास' नामका मानसिक प्रबन्ध का ६ खंडो में विस्तार किया गया है। मिथिला खंड की पुष्पिका है—इति श्री मद्रामचन्द्र विलासे उमामहेश्वर संवादे विलाम खंडे श्री जानकी रामस्य मिथिलाया यात्रा वर्णनं नाम थी सरन नवल सिंह कृत समाप्त द्वादसो ध्याय ॥१२॥ 'रामचन्द्र विलास' नाम से प्रकट है कि रसिक सम्प्रदाय की भावना का प्रभाव राम भक्त कवियो पर पड़ने लगा था। नवलसिंह ने राम के वीर रूप की उपासना और कीर्तन का विस्तार न कर केवल उनके विलास-विनोद की चर्चा मे छः ग्रन्थ लिख डाले, यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसका कारण मुगल साम्राज्य की सुखशान्ति तथा उसका विलासपूर्ण वातारवण भी हो सकता है; किन्तु कदाचित उससे भी अधिक कृष्ण-चरित का प्रभाव होना चाहिए।

इन ग्रन्थो की शैली और छंद वही हैं जो 'मानस' के हैं। 'मानस' की भाँति शिव-पार्वती-संवाद की भी परंपरा अपनायी गयी है। पुष्पिका के अन्त में ''उमामहेश्वर संवादे' पद भी आता है।

इन ग्रन्थो के अतिरिक्त दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'रामायण कोश' तथा 'रूपक-रामायन' नवल सिंह की विशिष्ट कृतियां है, जो राम-साहित्य को विद्या को व्यापक करती हैं। उनके वर्णित विषय चाहे महत्वपूर्ण न हों, किन्तु उनकी विधा निश्चय ही विशिष्ट है और उसका आरम्भ पहले-पहले नवलसिंह ने करके राम साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

रूपक रामायन —यह ग्रन्थ ११५ हरिगीतिका छंदो मे है। इसमें राम को सृष्टि का मूल बताकर सृष्टि रचना का रूपक आयोजित किया गया है। एक उदाहरण लीजिए :—

विधि सेस सिव सनकादि नारद आदि भगवन पर जिते।
प्रत्यक्ष हरि के चरित पेखत रहत प्रति कल्पहिं ते ।
निज धाम जात परोक्ष में हृदि मध्य अविलोकन करे।
तिनको सुनित्य नवीन से महि द्रगन तें कबहूँ टरें ॥११५॥

इनके अतिरिक्त रामकथा पर आपकी दोप रचनाएँ हैं—

(१) रामायण सुमिरिनी—इसमें १६ कवित्त और राम का कीर्तन है।

आला रवि धारन के काजें कही श्री सरन माहि ।
सार राममत जान सदा ही सज्जन संत आदरहिं ताहि ।
आला छंदन की चौकरी कहो सात सो सोइ ।
करहे निज आवास मान में जिनके चित आला रुचि होइ ।
आला के लालच सों जे जन पढ़हें श्रवन कराहिं ।
गाहै यही राह सो नीकें ते सब अंत परम पद जाहि ।
उनइस से बारह की भादो सुदि आठें बुजवार ॥
दिवस सत्तरें बरस गाठ कों श्री कृतं आरावत किय त्यार ।

अल्हैतो की राम भक्ति की प्रेरणा देते हुए कवि ग्रंथ का आरम्भ करता है—

आला कहिए सब देवन में रघुकुल मनि श्रीराम ।
तिनके चरनन में सिरधर कै मैं श्री धरन करौं परिनाम ।
सिव कैलास सिखर वर बरनें उमावरि न नारि ।
आला तुमरें रामभक्ति है भायो आसा जस अघ हारि ॥
आला जे जन भजत राम को करें न विष की आस ।
आला लेवैं राम भजन को तेई सत्य राम के दास ।
आला जथा राम को पूजा आला है जिमि नाम ।
तैसे यह आला रामायन जन के पूर्ण करै सब काम ॥

'आल्हा रामायन' मे भाषा का प्रसाद गुण, लोकरुचि की पहचान तथा रामचरित का सरल प्रस्तुतीकरण है और इसका सर्वाधिक विशिष्ट महत्व है—एक नयी शैली मे रामकथा का गायन।

नवल सिंह ने राम और कृष्ण दोनो चरितों को लेकर कई पुस्तकें काव्य रूप में लिखी हैं। उनकी कुछ पुस्तकें 'आला रामायन' से आकार में बडी हैं, पर शैली की दृष्टि से उनका महत्व उतना नही है, जितना 'आला रामायन' का है। नवल सिंह का दूसरा उपनाम 'श्री सरन' है। उनकी रामकथा पर शेष पुस्तकें ये हैं—

(१) जन्म खंड।
(२) सीता स्वयंवर।
(३) राम विवाह खंड।
(४) विलास खंड।
(५) पूर्व शृंगार खंड।

(६) मिथिला खंड।

इनके ये ६ काव्य एक ही विषय के विस्तार हैं। कवि के काव्यों के अंत की पुष्पिका में इन्हें 'रामचन्द्र विलासान्तर्गत' लिखा है अर्थात् 'रामचन्द्र-विलास' नामका मानसिक प्रबन्ध का ६ खंडो में विस्तार किया गया है। मिथिला खंड की पुष्पिका है—इति श्री मद्रामचन्द्र विलासे उमामहेश्वर संवादे विलास खंडे श्री जानकी रामस्य मिथिलाया यात्रा वर्णनं नाम श्री सरन नवल सिंह कृत समाप्त द्वादसो घ्याय ॥१२॥ 'रामचन्द्र विलास' नाम से प्रकट है कि रसिक सम्प्रदाय की भावना का प्रभाव राम भक्त कवियों पर पड़ने लगा था। नवलसिंह ने राम के वीर रूप की उपासना और कीर्तन का विस्तार न कर केवल उनके विलास-विनोद की चर्चा में छः ग्रन्थ लिख डाले, यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसका कारण मुग़ल साम्राज्य की सुखशान्ति तथा उसका विलासपूर्ण वातारवण भी हो सकता है; किन्तु कदाचित उससे भी अधिक कृष्ण-चरित का प्रभाव होना चाहिए।

इन ग्रन्थो की शैली और छंद वही हैं जो 'मानस' के हैं। 'मानस' की भाँति शिव-पार्वती-संवाद की भी परंपरा अपनायी गयी है। पुष्पिका के अन्त में 'उमामहेश्वर संवादे' पद भी आता है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'रामायण कोश' तथा 'रूपक-रामायन' नवल सिंह की विशिष्ट कृतियां हैं, जो राम-साहित्य की विधा को व्यापक करती हैं। उनके वर्णित विषय चाहे महत्वपूर्ण न हों, किन्तु उनकी विधा निश्चय ही विशिष्ट है और उसका आरम्भ पहले-पहले नवलसिंह ने करके राम साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

रूपक रामायन —यह ग्रन्थ ११५ हरिगीतिका छंदो मे है। इसमे राम को सृष्टि का मूल बताकर सृष्टि रचना का रूपक आयोजित किया गया है। एक उदाहरण लीजिए :—

विधि सेस सिव सनकादि नारद आदि भगवन पर जिते।
प्रत्यक्ष हरि के चरित पेषत रहत प्रति कल्पहिं ते।
निज धाम जात परोक्ष में हृदि मध्य अविलोकन करे।
तिनको सुनित्य नवीन से महि द्रगन तें कबहूँ टरें ॥११२॥

इनके अतिरिक्त रामकथा पर आपकी दोप रचनाएँ हैं—

(१) रामायण सुमिरिनी—इसमें १६ कवित्त और राम का कीर्तन है।

(२) राम रहस्य कलेवा—जनकपुर में रामचन्द्र के कलेवा करने का वर्णन इस काव्य मे सार छंद मे है।

यद्यपि नवलसिंह की रचनाएं भाषा, भाव और अन्य दृष्टियों से बहुत ऊँची नही और उन्हें काव्य की कसौटी पर खरा नही उतारा जा सकता, तथापि नवलसिंह की महत्ता राम साहित्य मे सर्वथा अक्षुण्ण है। राम साहित्य के विषय और उसके निर्वाह की दृष्टि से उनका लिखा साहित्य उनकी प्रतिभा की विशिष्टता का द्योतक है। अभिरुचि, अनेकता तथा नवीनता तीनों गुण नवलसिंह के राम साहित्य में हैं। आचार्य शुक्ल जी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इसी ओर लक्ष्य किया है—"उत्तम पुस्तकें में अधिकांश बहुत छोटी-छोटी हैं फिर भी इनकी रचना अनेकरूपता का आभास देती हैं। उद्धृत उदाहरणों के देखने से रचना इनकी पुष्ट और अभ्यस्त प्रतीत होती है[1]।

राजा रुद्रप्रताप सिंह

(१९वीं विक्रमीय शताब्दी का उत्तरार्द्ध)

रुद्रप्रतापसिंह प्रयाग जनपद के मांडा के राजा थे। उन्होंने रामकथा को लेकर वाल्मीकि रामायण तथा अन्य पुराणों के आधार पर एक विशाल ग्रन्थ 'भुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड' की रचना की। यह ग्रन्थ 'रामचरित मानस' की भांति ही दोहा, चौपाई तथा अन्य छन्दो की शैली मे है, किन्तु विषय विस्तार तथा कथाक्रम के शिल्प की दृष्टियो से पुराणो से मेल खाता है और इसे हिन्दी का महापुराण कहना चाहिए। इस ग्रन्थ को रुद्रप्रताप सिंह के पौत्र रामप्रतापसिंह ने महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी से संपादित कराकर सवत् १९५७-६७ के बीच प्रकाशित कराया। रामप्रतापसिंह हिन्दी प्रेमी तथा स्वयं कवि भी थे। इस ग्रन्थ को उन्होने रामभक्तो के लिए बिना मूल्य वितरण करवाया, किन्तु पुराण शैली और भाषा की दुरुहता के कारण इसका यथेष्ट प्रचार न हो सका।

इस ग्रन्थ का महत्व भाषा की दृष्टि से भी है। माडा ऐसा स्थान है, जहां रीवां की बुन्देलखण्डी, अवधी और मिरजापुर की भोजपुरी की सधि भाषा का जन्म होता है, जिसका प्रयोग इस ग्रन्थ मे हुआ है। भाषा का यह रूप देखिए—

> सरअत नेत्रन्ह सुख सिहित जाग्रित नय द्रिग भूप।
> ध्यक्त कोप सुप्रसाद दोउ यह राजन्ह के रूप ॥
>
> अरण्यकाण्ड-दसवां विश्राम।

\+ + + +

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४२१-४२२।

अवसि निसाचर जांहि बिलाई। तुम्ह सम करकस भूपहिं पाई ॥
अरण्यकाण्ड-१० विश्राम ॥

संपूर्ण ग्रन्थ सात काण्डों अथवा सात पथों मे विभक्त है। सं० १८७७ से संवत् १८८३ तक आरम्भ से लेकर लंका काण्ड तक की रचना सम्पन्न हुई है, ऐसा स्वयं ग्रन्थकार ने लिखा है; उत्तर काण्ड कब तक लिखा गया, यह नही कहा जा सकता। अंतिम राजपथ (उत्तर काण्ड में श्री मद्भागवत महापुराण के अनुकरण पर सभी राजवंशों का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार ने दिल्ली के सुलतान शासकों और मुगल शासको का विस्तृत-वर्णन किया है, दिल्ली के शासन में मरहठों और अंग्रेजो का जो हस्तक्षेप हुआ था, उसका भी वर्णन है। उस समय प्रयाग अंग्रेजों के शासन में था और कवि के अनुसार समग्र भारत पर उनका प्रभुत्व था।

ग्रन्ड बिबस हुइ मेदिनी
आसतलज निधि तीर;
रामेशर नयपाल लौं
एकई चक्र समीर ॥
(उत्तरकाण्ड विश्राम ५३-६४६)

इसी प्रसंग में दिल्ली पर अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण का भी वर्णन मिलता है, जिससे प्रकट है कि उत्तर कांड की रचना उसके वाद के १४ वर्षों के बीच जब तब हुई होगी।

इसी काण्ड में और इसके पहले बालकाण्ड में भी कवि ने अपने वंश का विस्तृत वर्णन किया है, जिसका सम्बन्ध कनौज के गहरवारों से है। इस प्रसंग में एक युद्ध का भी वर्णन है जिसमें कवि के पितामह उद्योत सिंह ने अवध के सूबेदार शम्सुद्दीन को हराया था।

इतने विशालकाय ग्रन्थ का प्रकाशन भी बड़े परिश्रम की बात है। पूरा ग्रन्थ नौ जिल्दों में विभक्त है। किष्किंधा पथ के तीन खण्ड हैं और वही सबसे बड़ा पथ है जिसकी कुल पृष्ठ संख्या १३१६ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में लगभग ३७०० पृष्ठ और ४०८ विश्राम (सर्ग) हैं। प्रत्येक पृष्ठ में २० पंक्तियां, औसतन १६ अर्धाली और दो दोहे हैं। दोहा चौपाइयों के बीच अन्य मात्रिक तथा वर्णिक विविध छंदों का प्रयोग इस रामायण में है।

वास्तव मे यह ग्रन्थ महापुराण ही है। यह बात इस ग्रन्थ को पढने के पहले इसकी विषय सूची देखने से ही स्पष्ट हो जाती है। संस्कृत में पुराणों का लक्षण बताते हुए लिखा गया है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥

(१) सृष्टि,(२) सृष्टि का विस्तार, (३) लय तथा पुनः सृष्टि (४) सृष्टि के आदि की वंशावली, (५) मन्वन्तरों और उनमें होनेवाली प्रधान घटनाओं का वर्णन तथा (५) वंशानुचरित-सूर्य तथा चन्द्र वंशी राजाओं का वर्णन-पुराणों के प्रतिपाद्य यही पांच विषय हैं । किन्तु महापुराण की संज्ञा से अभिहित होने वाले पुराण विषय की इस सीमा के अन्दर ही नहीं बंधे हैं। विषयों की विशदता और अधिकता के कारण ये महापुराण संपूर्ण ज्ञानकोष की मूर्तिमान राशि हैं।

विषयों की इसी विशदता के कारण प्रस्तुत रामखण्ड भी महापुराण की कोटि में आता है । मिथिलाखण्ड (बालकाण्ड) में ही सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर आदि सृष्टि, वंशानुचरित, भूगोल और खगोल की विस्तृत भूमिका के साथ कथा-प्रबन्ध का प्रारम्भ होता है । राजपथ के वंशानुचरित में सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं की सीमा तक ही न रह कर ग्रंथाकार ने दिल्ली के ऐतिहासिक सभी वंशों का वर्णन दिया है तथा अंत में अपने राजवंश का भी संयमित वर्णन प्रस्तुत किया है । किष्किधा पथ में आयुर्वेद का सम्यक वर्णन, स्थान-स्थान पर अवान्तर कथाएं, भक्ति, पूजा, यज्ञ, मंत्र, तंत्र, तीर्थों, क्षेत्रों, श्राद्धों के सविस्तार वर्णन, व्यवहारों और दार्शनिक मतों के विवेचन भी उपलब्ध होते हैं । जैसे 'शिवपुराण' आदि में शिवचरित के प्रधान माध्यम से अधिक से अधिक विषयों की अवतारणा की गयी है, वैसे ही यह अवतारणा भी बहुत विस्तृत है। साथ ही साथ जो चरित वर्णन किया गया है उसमें भी विषय का संकोच नहीं है। ग्रंथ में राम का यह चरित भगवान शंकर ने पार्वती से वर्णन किया है किन्तु यह संवाद उतना प्रधान नहीं है जितना तुलसीदास के 'रामचरित मानस' का शिव-पार्वती-संवाद । इस अंश में वाल्मीकि 'रामायण' और 'अध्यात्म-रामायण' से अधिक साम्य प्राप्त होता है, कहीं-कहीं कोई स्थल तो अनुवाद जैसे प्रतीत होते हैं। राजपथ (उत्तरकाण्ड) में रामाश्वमेध, राम का परम धाम गमन आदि के अतिरिक्त रावण आदि का जन्म और उसकी विजयों की कथाएं संवाद प्रसंग में कही गयी हैं।

इसके जनप्रिय न होने के दो कारण हैं—एक तो इसका पौराणिक रूप, जिसमें विषयों का इतना अधिक विस्तार हो जाता है कि रामकथा और अन्य कथाएं-उन विषयों के जंगल में खो जाती हैं और दूसरा कारण है भाषा की

दुरूहता, जिसमे जानबूझ कर संस्कृत के शब्द भी दिये गये हैं, जिसमें से बहुत से तो हिन्दी के लिए अप्रसिद्ध प्रयोग हैं तथा बहुत से नये गढ़े हुए जान पड़ते हैं। जहाँ उनका प्रयोग भी हुआ है वे उस स्थल पर अस्वाभाविक-से प्रतीत होते हैं। एक उदाहरण देखिए, शूर्पणखा की नाक काटने पर खरदूषण की ओर से राम को भर्त्सना दी जाती है—

तुम्ह को केहिं कारण बन आये
किमि बिरूप म्रिग-द्रिसहि कराये।
किमि असुरेन्द्र स्वासा नहिं जानी।
जानि करेउ तुम्ह आपन हानी (अरण्यकाण्ड:विश्राम-७)।

यहा पर म्रिग दिसहि (मृग दृशी) और असुरेन्द्र स्वसा के प्रयोग अस्वाभाविक मालुम पड़ते हैं। कहीं-कहीं वाक्य-गठन की अस्वाभाविकता भी दुरूहता का कारण बन गयी। जैसे—'राक्षसो ने भयंकर धनुष उठाया'। इस अर्थ मे नीचे का प्रयोग—

भीम धनुष निसिचर अधिकोर।

हिन्दी में आचार्य केशव की कविता को प्रेतकाव्य कहा गया है तो इस कसौटी पर रुद्रप्रतापसिंह का राम खण्ड बेताल काव्य है, जिसमें सामान्य पाठक को कथा प्रबन्ध का ओर-छोर ही न मालूम होगा। एक कठिनाई इस काव्य मे यह भी है कि जहां तहां अधिकता के साथ क्षेत्रीय वोली के शब्दों का प्रयोग हुआ है।

इतना सब होने पर भी इस राम खण्ड का महत्व है—पौराणिक, ऐतिहासिक तथा भाषा सम्बन्धी। पौराणिकता के विषय में ग्रन्थकार ने अपने प्रतिपाद्य राम को ब्रह्म का रूप माना है और जैसे तुलसीदास ने भक्ति की बड़ी प्रशंसा की है, इस कवि ने भी भक्ति को उसी दृष्टि से देखा है। राजपथ के प्रारम्भ मे पार्वती ने शंकर से अग्रिम कथा पूछते हुए राम को भगवान कहा है, राम को ब्रह्मा, विष्णु और शिव की क्रमशः सृजन, पालन तथा संहार शक्तियों का मूल-प्रेरक कहा है। आगे पार्वती शिव से कहती हैं कि उन राम के सबसे बड़े तत्ववेत्ता भी आपही हैं। यह स्पष्ट तुलसीदास के 'रामचरित मानस' का प्रभाव है। राम और शिव के परस्पर ऐक्य का जो दृष्टिकोण तुलसीदास के 'रामचरितमानस' मे है, वही रामखण्ड मे भी प्राप्त होता है।

यद्यपि संपूर्ण ग्रन्थ में संस्कृत के तत्सम शब्दों एवं धातु-उपसर्गो से बने गये शब्दों के प्रयोग के कारण भाषा की दुरूहता स्वतः सिद्ध है, तथापि जहां-तहां

नयी उद्भावनाओं का समावेश उसमे किया। वैसे ग्रन्थ में ७ काण्ड ही हैं पर प्रत्येक काण्ड उल्लासो मे बँटा है। कथा में बंदीदीन दीक्षित की नयी कल्पनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) बन में राम-लक्ष्मण के मृगया खेलते समय इन्द्र द्वारा राम के लिए कमल मे अमृत भेजना, राम-लक्ष्मण का उसे पान करना (बा० का० १३५)।

(२) विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण के स्थान पर दशरथ द्वारा कैकेयी की सम्मति से भरत शत्रुघ्न को भेजना।

(३) जनकपुर में राम को देखने के लिए नागरिकों की व्याकुलता का दृश्य उसी प्रकार है जैसे कृष्ण की वंशी की टेर सुनकर समस्त गोपियां अपना काम-काज छोड़कर उनकी ओर भागती थी।

(४) कलेवा के लिए चारों भाइयो को लक्ष्मी-निधि घोडे पर सवार होकर जनवासे में बुलाने आते हैं।

(५) चित्रकूट में भरत अयोध्यावासियों और सेना को देखकर लक्ष्मण का क्रोध। देवताओं की आकाशवाणी द्वारा उन्हें वास्तविक स्थिति का ज्ञान।

(६) लङ्का काण्ड में राम द्वारा रामेश्वर (शिव लिङ्ग) की स्थापना में यज्ञ-क्रिया कराने के लिए रावण को बुलाना तथा यज्ञ कार्य के लिए सीता को मांगना।

इन नवीनताओं में पहली और दूसरी कल्पनाएँ ही लेखक की या तो अपनी है, या समसामयिक अन्य ग्रन्थों की हैं। पांचवी और छठी उद्भावनाएँ संस्कृत ग्रंथो से ली गयीं हैं। लेकिन हा, ये कथाएँ 'रामचरित-मानस' में नहीं हैं, और तुलसी की राम कथा से इनमें नवीनता आ जाती है।

किन्तु कहीं-कहीं नवीनता कोरी कल्पना और आदर्श की महिमा ही रह गयी है और ऐसा मालूम पड़ता है कि भक्तों के झूठे चमत्कार की भाँति कवि चमत्कार दिखाना चाहता है। राम ने सेतुबन्ध पर शंभु की स्थापना रावण की विजय के लिए की थी। रावण उनके आग्रह पर स्वयं उनका पुरोहित बना था। उसे शंभु की स्थापना मे रावण-विजय का संकल्प स्वयं पढना था, पर स्वयं रावण इस संकल्प को हृदय से नही पढ़ सकता था और हृदय से संकल्प न पढने पर यज्ञ और कार्य दोनो पूरे न होते। अत: रावण राम से

कहता है—सारा संकल्प तो मैं पढ़ लूँगा रावण-मारण हित इतना आप पढ़ियेगा—

पढ़व संकल्प को आयो अब रावण मारणार्थ यह काम।
डिगैं कदाचित जो मेरो चित रावण मारणार्थ यहि ठाँय।
ओरक ओरे पढ़ि जावों मैं तों सुव काज वादि ह्वै जायँ।

\+ \+ ✣

रावण मारण-हित इतनों पद तुम निज मुख ते कह्यो उचार।

यह रावण का राम से यह कहना कि संकल्प में—'रावण-मरण-हित' इतना पद तुम पढना—कवि की उक्त-कल्पना में ठीक नहीं बैठता है और भोंडापन ही लाता है।

भाषा मे प्रवाह और प्राजंलता नही है, कवि ने मुहावरों और लोकोक्तियों के लाने का प्रयत्न किया है। उसकी सबके बड़ी विशेषता यह है कि कवि ने ग्रंथ की नवीन शैली, किन्तु लोकप्रिय आल्ह-शैली में लिखा। आल्ह शैली में रामकथा को लिखने का नवलसिंह के बाद यह दूसरा प्रयास था।

विवाह आदि के प्रसंग मे सखियों के अशिष्ट परिहास के प्रसंग, कवि के ऊपर रसिक सप्रदाय के प्रभाव को लक्षित करते हैं। कवि के चरितो मे उदात्तता नही आई है और कवि के पौराणिक पात्र कल्पित प्रतीत होते हैं।

रघुनाथदास राम सनेही

(संवत् १६११ में वर्तमान)

आपने संवत् १६११ में 'विश्राम-सागर' नाम से एक बड़ा काव्य लिखा जिसमे रामकथा का भी वर्णन है। इस ग्रन्थ मे भक्ति के चमत्कार की बातें और उपदेश ही अधिक हैं, काव्यत्व कम है, भाषा परिमार्जित है। काव्य के क्षेत्र में तो नही, भक्तों के संप्रदाय में इसका आदर अधिक है। इस ग्रन्थ में कुल ८६ अध्याय हैं, जिनमें ४७ अध्यायों में राम को कथा है। संपूर्ण ग्रन्थ दोहा-चौपाई की शैली मे है। रामकथा का आधार 'रामचरितमानस' न होकर 'वाल्मीकि रामायण' है।

यह ग्रन्थ विक्रम की बीसवी शताब्दी में लिखा गया। रघुनाथदास राम सनेही स्वामी अग्रदास जी के शिष्य परम्परा की दसवी पीढ़ी में आते हैं, स्वयं लेखक ने विश्रामसागर के निम्नांकित कविता मे कहा है—

श्री रामानुज द्वारा अग्रदास जू के तहां के महन्त में गोविन्दराम जानिए।
तिनही के शिष्य संतदास तस्य कृपाराम जू के रामचरण पिछानिए॥
रामचरण जू के रामजन्म तस्य कान्हर मे कान्हर के शिष्य हरिराम को बखानिए।
हरीराम जू के देवादास रामनाथ भाल देवादास जू के रघुनाथ मोहि जानिए॥

कथा-प्रसङ्गों की भावना मे अनेक अंशों में इसका लेखक तुलसीदास से प्रभावित है। राम के वनगमन के समय ग्राम-वधुओ की यह आकुलता देखिए, जो 'रामचरित मानस', 'कवितावली', 'गीतावली' के इसी प्रसङ्ग से बहुत प्रभावित है—

एक अली लखि गइ निज गेहा।
कहत सखिन से सहित सनेहा॥
सखि एहि ग्राम पथिक द्वै आये।
गौर श्याम छवि धाम सुहाए॥
तिन संग सुन्दरि एक जेहि लखि लाजत जग मेव।
चारि सुमन फल चारि पशु विहंग चारि श्रुति देव॥
सुनि पुरजन सब, देखन, धाए।
उतरे प्रभु जहं तहं चलि आए॥
नख-सिख सुभंग सरूप निहारी।
सीता ढिंग आई मृग नारी॥
पूछहिं हे स्वामिनि सुकुमारे।
ए दोउ बालक कौन तुम्हारे॥
देवर लषण कहेउ सिय बैननि।
निज पति प्रभुहिं बताएहु सैननि॥
कोसलपुर है इनकर धामा।
नृप दसरथ के सुत अभिरामा॥
कारण कौन फिरत बन माहीं।
कोमल पद पद-त्रानहुं नाहीं॥
सासु सवति कीन्हेहु उतपाता।
दिय बन वर्ष सात अरु साता॥

सुनि सिय बचन सकल बिलखानी ।
बोली विधिगत जात न जानी ॥

श्री रामनाथ ज्योतिषी

रामचन्द्रोदय काव्य

ब्रजभाषा में लिखा हुआ यह काव्य केशवदास की 'रामचन्द्रिका' पद्धति की रचना है जिसमें पांडित्य प्रदर्शन और काव्य-कौशल दोनों समान तुला पर है। इसकी रचना संवत् १९९६ वि० में हुई। कविवर रामनरेश त्रिपाठी ने इस काव्य की भूमिका में लिखा है—

> 'इस समय श्री रामचन्द्रोदय काव्य हमारे सामने है। आप कहेंगे कि संस्कृत और हिन्दी मे रामचरित-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ के रहते हुए इस ग्रन्थ को लिखने की क्या जरूरत थी। इसके लिए मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि कवि प्रत्येक को अपनी दृष्टि से देखने के लिए स्वतन्त्र है। इस ग्रन्थ में रामकथा कहने के बहाने कवि ने अनेक ऐसे विषयों पर प्रकाश डाला है जिन पर अभी तक किसी भी हिन्दी कवि ने इतनी सूक्ष्मता से विचार नहीं किया था। हमारी प्राचीन और अर्वाचीन सामाजिक अवस्था के बीच में कितना बड़ा विन्ध्याचल पहाड़ आ खड़ा हुआ है। इसका दिग्दर्शन कवि ने अपने काव्य में कराया है। रामकथा का आश्रय लेकर कवि ने मनुष्य जीवन के अनेक प्रश्नों का गम्भीर और सार्थक विवेचन किया है।"

काव्य में १६ कथाएं (सर्ग) हैं। इसमें विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्रबन्ध का निर्वाह सफल नही है। संवादों के लिए नाम अलग से देना पड़ा है।

ग्रन्थ की सातवी कला तक राम-विवाह की कथा कही गयी है और आगे षट्ऋतु वर्णन। राम का विभव, धर्म नीति तथा वैद्य विद्याओं के वर्णन मे ही सारा काव्य समाप्त हो गया है। एक प्रकार से यह काव्य रसिक-संप्रदाय के राम का चरित काव्य है जिसमें बनवास और युद्ध के प्रसङ्ग नहीं आये हैं।

विवाह के बाद कवि का काम हो जाता है—

आगे चलीं जोतियो सलो जू मंद मंद गति
पाछे रघुचन्द भीड़ भांवरी भराई में ।
घूमती तिरीछे नैन देखतीं मयंक-मुख
बहुरि सकोचि जाती प्रेम सुघराई में ॥

आठवीं कला में राम और सीता के (अष्टयाम की चर्चा) उसी रसिक संप्रदाय की परम्परा का पालन है। पूरा काव्य पढ़ने पर हमारा ध्यान धर्म-शास्त्रीय चर्चाओं तथा भगवान् राम के विमर्शों की उपदेशात्मक भांकी पर टिक जाता है। नीति और धर्म के उपदेशों तथा वर्णनों में कवि ने "राम-चरित मानस" का ही अनुगमन किया है और उसी शैली में अपनी उक्तियां कहीं हैं—

> लोक वेद विधि विविध विधि,
> करि सुभ समय विचारि।
> गुरुपाढे सुत सहित नृप,
> चले संभु उर धारि।
>
> (पृ० १५०)

बिहारीलाल विश्वकर्मा "कौतुक"

कौतुकजी का 'कौशलेन्द्र कौतुक' प्रबन्ध १९९३ वि० में प्रकाशित हुआ। यह ग्रन्थ यद्यपि प्रबन्ध शैली पर ही लिखा गया है, परन्तु वस्तुतः यह तुलसी-दास की कवितावली की कोटि की रचना है जिसमें कथासूत्र अविच्छिन्न नहीं रहता परन्तु कथाक्रम से प्रत्येक प्रसङ्ग पर कुछ न कुछ कह दिया जाता है। 'कवितावली' में रामकथा के प्रत्येक प्रसंग पर कालक्रम से कवित्तों, सवैयों की रचना हुई है, एक तरह से स्फुट काव्य होकर भी यह प्रबन्ध काव्य है, ठीक उसी तरह ही रचना 'कौशलेन्द्र-कौतुक' है। 'कौशलेन्द्र-कौतुक' में 'कविता-वली' की अपेक्षा स्फुट काव्यत्व कम है, प्रबन्धत्व ही ज्यादा है। और कवितावली से यह आकार में दुगना है। इसमें 'कवितावली' की तरह किन्तु उससे अधिक विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा पर कवि का पूरा अधिकार है। भाषा ब्रजभाषा है। शैली में प्रवाह और भावों मे प्रांजलता है।

कवि तुलसीदास के 'रामचरित मानस' से प्रभावित है और रामभक्ति आन्दोलन की परम्परा की ही परोक्ष रूप में एक कड़ी है। तुलसीदास की कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए वह अन्तिम काण्ड में कहता है :—

> कछुक प्रभूति करतूति है न मेरी यह।
> कौशलेन्द्र कौतुक प्रसाद तुलसी को है।

* * *

अपने ग्रन्थ का प्रारम्भ कवि इस रूप में प्रकट करत है—

विरचे विविध यामें विविध प्रबन्ध छंद
मधुर मनोहर रहस्य सियपी को है।
विपुल प्रसङ्ग अघ-निग्रह को संग्रहित
सत्य धर्म नीति को निवाह विधि नीको है।
भरियत भदेस भाव पूरन मृदुल मानो
टेढो बेंडो मोदक संवारों घनीछी को है।
सांची सब भांतिन सो विगत विवाद यह
कोशलेन्द्र कौतुक प्रसाद तुलसी को है।

(उत्तरकाण्ड उपसंहार)।

'कौशलेन्द्र-कौतुक' उत्तरकाण्ड में संत, असंत, धर्म, अधर्म आदि विषयों की चर्चा 'रामचरित मानस' के उत्तरकाण्ड की पद्धति पर की गयी है। भाषा और शैली की दृष्टि से ग्रन्थ महत्त्व का है।

रामकथा को लेकर प्रबन्ध काव्यों के लिखने की यह परिपाटी भक्त और कवि बनने का एक उपलक्षण सा हो गया। जो भी रामभक्त हुआ, जिसमे थोड़ा बहुत कवि का स्फुरण रहा उसने एक रचना रामकथा पर अवश्य लिख दी। इस तरह के अनेक अप्रसिद्ध ग्रन्थ-बस्तों मे बँधे पड़े होंगे, जो खोज विवरणों में भी नही आ सके हैं। अब तक रामकथा पर ऐसे प्रबन्धो की लिखने को परम्परा अक्षुण्ण रूप से चल रही है।

बन्दोदीन दीक्षित का 'विजय राघो खण्ड' काव्य-रामकथा मे अनाप-शनाप परिवर्तन ही कहा जायगा। ऐसे काव्यों से जन-मानस में रामकथा के सम्बन्ध में संभ्रम ही पैदा होता है। जैसे-जैसे समय बीतता गया रामकथा पर अनेक ग्रन्थों की रचना होती रही वैसे-वैसे परवर्ती रामभक्तों के लिए यह एक समस्या बनती गई कि वे कैसे कोई नयी वस्तु रामकथा में लाकर उपस्थित करें जिससे उनकी मौलिकता प्रकट हो। रामकथा का कोई प्रसङ्ग शेष तो था नही अतः पुराण आदि में रामकथा से सम्बन्धित अप्रसिद्ध प्रसङ्गों को उपस्थित करने की मनोवृत्ति इन रामभक्त कवियों में आई। 'विजय राघो खण्ड' उसका सटीक उदाहरण है।

प्रस्तुत प्रसंग मे चर्चित महत्त्वपूर्ण प्रबन्धों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकाशित प्रबन्ध ये हैं—

१—रामसुधा (बूद चन्द्र जनकृत) १८८६ ई०।
२—रामदर्पण (बुद्धाबाई कृत) १९६९ वि०।

३–पंचदेव रामायण (पंचदेव कृत)।

४–श्रीराघवगीत (प्रयाग नारायण कृत)।

५–रामकीर्तन अथवा वीर रामायण (महावीरप्रसाद त्रिपाठी कृत)।

रामकथा को लेकर रामलीला-सम्बन्धी अभिनेय काव्यों की परम्परा (संवत् १६६७-१८०० वि०)

तुलसीदास के रामचरित मानस के बाद रामकथा को अभिनीत करने की अभिरुचि ने बहुत जोर पकड़ा और उस दृष्टि से नाटक-शैली (सवाद के रूप) में अनेक रचनाएँ कवियों ने की। केशवदास की रामचन्द्रिका मे जो पात्रों का नाम सवाद से अलग पाया जाता है उसमे अभिनेय काव्य की रुचि का ही प्रभाव स्पष्ट होता है। अभिनय के स्वरूप की केवल सवाद में इतिश्री समझी जाती थी। इस शैली की प्रसिद्ध रचनायें ये हैं :—

प्राणचन्द्र चौहान (सवत् १६६७) का हनुमन्नाटक।

हृदयराम (सवत् १६८०) का हनुमन्नाटक।

राम (जन्म सवत् १७३०) का हनुमान नाटक।

विश्वनाथ सिंह रीवा नरेश (संवत् १७७८ से १७९७ तक वर्तमान) का "आनन्द रघुनन्दन" नाटक।

इन ग्रन्थों में हृदयराम का हनुमन्नाटक संस्कृत के 'हनुमन्नाटक' का ही छायानुवाद है।

रीवा नरेश विश्वनाथ सिंह ने 'आनन्द रघुनंदन' नाटक के अतिरिक्त राम-साहित्य पर और भी रचनाएं लिखी हैं :—

'अष्टयाम आह्निक' 'गीता रघुनंदन' 'शांतिका', 'रामायण 'गीता रघुनंदन प्रामणिक' 'विनय-पत्रिका की टीका' 'रामचंद्र की सवारी', 'आनंद रामायण', 'गीतावली पूर्वार्ध', 'संगीत रघुनंदन'।

इन ग्रन्थो मे से अधिकांश वर्णनात्मक प्रबन्ध हैं, शेष सगीत काव्य और स्फुट रचनाएं हैं। अष्टयाम आह्निक' और रामचन्द्र की सवारी' वर्णनात्मक प्रबन्ध मात्र है पर महाराज विश्वनाथ सिंह की ख्याति उनके 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक के कारण है। इसे हिन्दी के नाटको में भी पहली रचना माना जाता है। सर्वप्रथम नाटक के नाम पर होने वाली रचनाओं मे इस नाटक मे

ही गद्य का प्रयोग हुआ। यह गद्य ब्रजभाषा गद्य है। पर गद्य में संवादों के देने से इसकी विशेषता बढ गयी।

तुलसीदास के 'रामचरित मानस' के बाद राम चरित को रंगमंच पर लाने की परंपरा चली और उसके लिए अभिनेय काव्यों की रचना कवियों ने शुरू की, उन रचनाओं में आनन्द रघुनंदन' शैली का बिन्दु है। शुक्ल जी ने लिखा है—'पहले कहा जा चुका है कि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने समय की सारी प्रचलित काव्य-पद्धतियों पर रामचरित का गान किया केवल रूपक या नाटक के ढंग पर उन्होंने कोई रचना नही की। गोस्वामीजी के समय में ही उनकी ख्याति के साथ-साथ रामभक्ति की तरंगें भी देश के भिन्न-भिन्न भागों में ही उठ चली थी। अतः उस काल के भीतर नाटक के रूप में कई रचनाएं हुई।[१] ऐसी रचनाओं की विकसित शैली ही 'आनंद रघुनंदन' नाटक है।

वर्णनात्मक प्रवन्ध-काव्य

(संवत् १६४२ से १६५०)

रामचरित को लेकर वर्णनात्मक प्रवन्ध-काव्यों की रचना का सूत्रपात प्रसिद्ध रामभक्त नाभादास के अष्टयाम से होता है। ऐसी रचनाओं में राम के दरबार, उनके स्वरूप, दिनचर्या तथा उनसे संबंधित अन्य विषयों और वस्तुओं का वर्णन मात्र होता है, जिनमे कवित्व कम और वर्णन ही प्रधान रहता है।

नाभादास जी ने दो 'अष्टयाम' बनाये हैं। एक ब्रजभाषा गद्य में और दूसरा 'रामचरित मानस' की शैली पर दोहा चौपाइयों में। इनमें भगवान राम के आठ प्रहर की दिन चर्या का वर्णन है। उदाहरण—

> (गद्य) तब श्री महाराज कुमार प्रथम श्री वशिष्ठ महाराज के चरन छुई प्रनाम करत भए। फिरि ऊपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करते भए। फिर श्री राजाधिराज जू को जोहार करिके श्री महेन्द्र नाथ दशरथ जू के निकट बैठत भए।

(पद्य) अवधपुरी की शोभा जैसे। कहि सकहि शेष श्रु ति तैसी।
रचित कोटि कल धौत सुहावन। विविध रंग मति अति मन-भावन।
चहुँ दिसि विपिन प्रमोद अनूपा। चतुर बीस जो जस रस रूपा।
सुदिसि नगर सरजू सरि पावनि। मनियम तीरथ परम सुहावनि।
बिगसे जलज, भृंग रस फूले। गुञ्जत जल-समूह दोउ फूले।

१-हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १६७।

परिखा प्रति चहुँ दिसि लसति, कंचन कोट प्रकास।
विविध भांति नग जगमगत, प्रति गोपुर पुरवास[1] ॥

ऐसे वर्णनात्मक ग्रन्थो की रचना में उन कवियो ने भी ध्यान दिया जिन्होंने बड़े प्रबन्ध काव्य लिखे। महाराज विश्वनाथ सिंह, महाराज रघुराज-सिंह आदि ने भी इस शैली में रचनाए की।

नाभादास के अष्टयाम के अतिरिक्त इस शैली की अन्य प्रसिद्ध रचनाएं हैं—

१–अष्टयाम — खुमान।
२–रामचन्द्र की सवारी—रीवां-नरेश विश्वनाथ सिंह।
३–जानकी शरण मणि—जनकराज किशोरीशरण।
४–सत्योपाख्यान—ललकदास।
५–रामाष्टयाम—रघुराजसिंह।
६–रामलीला प्रकाश—सरदार।

आगे चलकर ऐसी रचनाओ का झुकाव रसिक साधना के मेल में अधिक हो गया और रसिक संप्रदाय के कवियो की कृतियो मे इस शैली का अन्तर्भाव हो गया।

वस्तुतः रामभक्ति के प्रचार के साथ जैसे-जैसे भक्ति और साधना के नाम पर मंदिरों मे भगवान् की पूजा के लिए अनेक सामग्रियां और साज-सज्जा इकट्ठा किये जाने लगे, मन्दिर भगवान् राम के राजसी दरबार जैसा होने लगा, मंदिरों मे सजावट और राजसी विभवो की उपलब्धि उनकी महत्ता की कसौटी हो गयी, राम की पूजा मे, राम लीला मे, राजाओं के राजा राम के सोने चांदी के सजाव सजाना भक्तो की पूजा का एक अंग बन गया, राजाओ ने ऐसे उपकरणो के जुटाने में अपना अहोभाग्य समझा, उसी के साथ ऐसे वर्णनात्मक काव्यों की रचना का भी सूत्रपात हुआ। भगवान् राम की पूजा-अर्चा कर ऐसी वस्तुओं का वर्णन करना कवि-भक्तों की रचना का एक प्रतिपाद्य हो गया। 'रामचन्द्र की सवारी' जैसी रचनाएँ इसका उदाहरण हैं। बाद मे ऐसी रचनाओं की प्रवृत्ति इन्हीं परिस्थितियों के कारण 'रसिक-संप्रदाय' के अधिक निकट हो गयी। रसिक-साधना के विकास में इसे भी एक उपकरण कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

१-हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १६६।

राम कथा के अंगभूत चरितों पर लिखे काव्य
(संवत् १६६६- २०१८ वि०)

रामभक्ति के प्रचार के साथ-साथ राम भक्तों की भक्ति का प्रचार भी बढ़ा। रामकथा के अंगभूत चरित हनुमान तथा लक्ष्मण-विशेष रूप के कवियों की रचना के आधार बन गये। इनमें भी हनुमान् जी की भक्ति का प्रचार जितने जोर-शोर से हुआ, मंदिरों में उनके पूजा की ओर जैसे-जैसे लोक अभिरुचि जागृति होती गयी। भक्ति-भाव से प्रेरित होकर राम-भक्त कवियों ने हनुमान जी के वीर चरित का गायन भी बहुतायत से किया। हनुमान जी पर की गई रचनाएँ उनकी भक्ति की लोकप्रियता की प्रतीक हैं, लक्ष्मण के चरित को लेकर लिखे ग्रन्थ अपेक्षाकृत बहुत कम हैं।

हनुमान

हनुमानजी को लेकर मंत्र-सिद्धि की रचनाएँ भी तुलसीदास के बाद हुई। 'हनुमान चालीसा' नाम की प्रसिद्ध रचना, जिसका अब तक बहुत अधिक प्रचार है, तुलसीदास की कृति कही जाती है। उसके बाद 'बजरङ्ग बाण', "संकट मोचनाष्टक" की भी रचना हनुमान-भक्तों की है जो मंत्र-सिद्धि की रचनाएँ हैं। 'बजरङ्गबाण' पर 'शाबरमंत्र', 'हनुमत्कवच', 'हनुमान्-वड़वानल' जैसे स्तोत्र ग्रन्थों की रचना-शैली का प्रभाव बहुत स्पष्ट है, 'बजरङ्ग बाण' निश्चित रूप से मंत्र-तंत्र परक उपासना की दृष्टि से लिखी गयी रचना है। 'साबर मंत्र', 'हनुमत्कवच' आदि की तरह अर्थहीन-ध्वनियों का समावेश इस रचना में है—

हनु हनु हनुमन्त हठीले
बैरिहिं मारि बज्र को कीले
(बजरङ्ग बाण)।
ऊँ एहि एहि एहि ऊँ हूं ऊँ हूं ऊँ हूं ऊँ हूं
ऊँ नमो भगवते श्री महाहनुमते......"
(हनुमद् वड़वानल)

इसके अतिरिक्त काव्यतत्व की दृष्टि से भी हनुमानजी के वीर चरित को लेकर कई रचनाएँ कवित्त-सवैया की शैली में लिखी गयी। इनपर तुलसीदास के "हनुमान् बाहुक" का प्रभाव लक्षित होता है। हनुमान के चरित पर रचना करनेवाले जिनकी रचनाएँ प्राप्त हैं, प्रमुख कवि हैं—

सर्गों का काव्य लिखकर हनुमान के वीर चरित पर एक बड़ी और ओजस्विनी रचना दोहा, कवित्त और सवैया मे की है। ग्रन्थ का रचना-काल सं० २००२ वि० है। छंद, भाव, भाषा और अलंकार से अलंकृत कोटि की हैं। हनुमान और राम का यह संवाद देखिए—

सुनि कपि मुख तें सिया की दुःखदायी कथा
आए भरि लोचन बिसाल रघुबर के।
हेरत ही औचक फणीन्द्र कुल केहरि के
प्रबल प्रचंड दोर दंड जुग फरके।
बोले कर जोरि नाथ दुख उर आनौ कहा,
मानी जो कही तो अस्त होतें दिनकर के।
ल्याऊं गढ लंकहि उखारि, जानकी के इतै
सहित सहाय खल खेचर निकर के।
बोले राम—एहो कपि तुम सब लायक हो
मेरे प्रिय पायक सहायक अनल हो।
संभव असंभव को सविधि सधैया एक
विस्व बीच जनक लिए ही पर जन्य हो।
दुख दल हारक संहारक दनुज बेस
ज्ञानिन गुनिन में जनाए अग्रगण्य हो।
जाही जेहि कोख तें सजायो ताहि गौरव तें
परम धुरीन धीर तुम धन्य हो। ६।२३-२४॥

लंका-दहन की प्रबन्ध-कल्पना वाल्मीकि रामायण के सुन्दर काण्ड के आधार पर हुई है, जैसा कि कवि ने मंगलाचरण मे स्पष्ट कहा है—

ईशहिं ध्याइ कपीस को पाई
रजायस आयस अन्तर ही की।
चाहत कीस कथा लिखिबौ गहि के
प्रथा आदि कबीक कहीबी। १०।

भक्ति-भाव और युक्ति-कल्पना की प्रेरणा इस ग्रंथ की रचना के मूल में है—

सोई अवतार सरकार को सराहौं सदा
जासों द्युतिसार को प्रसार होव जग में

जाके पदपात के पिछौरे परिलोक बीच
पावें गति रोपना विमूढ़ गूढ़ मग में। ६।३६॥

(६) स्वामी ब्रह्माश्रम

स्वामी ब्रह्माश्रम ने संवत् २०१८ में 'हनुमान हृदय' नाम से ३३ कवित्त सवैयों का एक ग्रन्थ लिखा, जिस पर हनुमान-बाहुक की शैली की छाप है पर जिसका प्रबन्ध अब तक में लिखे सभी हनुमच्चरित-सम्बन्धी काव्यों से विलक्षण है। ग्रंथ की भूमिका मे हनुमान-हृदय के प्रबन्ध को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है।

विंध्याचल के जंगल में पीड़ित एक संत कैलाश के कुंज में रामचरित का गान करते हुए हनुमान को देखता है और उन्हें अपनी रक्षा के लिए पुकार रहा है। उसी की विनय के कवित्त 'हनुमान हृदय' मे है, हनुमान अंत मे उसे पहुँच कर कृतकृत्य करते हैं। कवित्तों में कवि की मौलिकता स्पष्ट है। हनुमान जी के स्वरूप-वर्णन के बिम्बग्राही दो कवित्त देखिए—

को विदार-कोरक-से बाहु हैं विराजमान
वन्य अक्ष माल लसै उर में गदाधारी के।
शोभित है जटाजूट पारिजात मंजरी से
चाकी क्यों तिलक चारु भौंह धार धारी के।
लोचन हैं गीले लाल ताजे फूले वारिजात
ब्रह्मरस मुसकान ब्रह्म छवि हारी के।
राम भाव में रंगीले तनु ताण्डव सुशीले
मेरो नैन उन्मीले ऐ रूप ! नृत्यकारी के।

\+ + + +

जयति बंकिन भौंह गोल उन्नत ललाट
केश कुन्चित पिशंगी जाल ज्यों दामिन की
शोभित तिलक भाल बाहु वक्ष है विशाल
पिंग दुति नैन सुन्दे दीठि दानविन की।
वारिज नयन जय क्षेम के सदम जै
हेम के बदन जय-जय नख वज्रिन की।

गिरि कन्ध बीन बन्ध तेरो रूप पद्मवन
गिरा गिरै रस-अर्थ अर्थ के अलिन को।

हनुमान जी पर चर्चित अन्य रचनाओं के नाम हैं—

रामल्ल पाण्डे—हनुमच्चरित्र १६६६ वि०
राम —हनुमान नाटक १७३० वि०
सरदार —हनुमत भूषण १६३५ वि०

रामचरित पर स्फुट रचनाएं

कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होंने भक्ति-भाव से प्रेरित होकर रामकथा पर स्फुट रूप से कवित्त-सवैयों की रचना की है। इनमे सेनापति का नाम महत्वपूर्ण है। राम विषयक उनकी रचनाएं उक्तियां स्फुट रूप से उनके 'रत्नाकर' में संग्रहीत हैं। उन्होंने 'कवित रत्नाकर' की रचना संवत् १७०६ में की। ये अनूपशहर के रहने वाले थे। रामचरित-संबंधी इनके लिखे कवित्तों की संख्या लगभग ६० होगी। ये कवित्त बहुत ही ओजपूर्ण हैं। अंगद के दृढ संकल्प का यह वर्णन देखिए—

वालि कौं सपूत कपि-कुल-पुरहूत रघु—
वीर जू को दूत धारि रूप बिकराल कौं।
जुद्ध-मद गाढ़ौ पाउं रोपि भयो ठाढ़ौ, सेना—
पति बल बाढ़ौ रामचन्द भुवपाल को।
कच्छपपि कहलि रह्यो, कुन्डली टहलि रह्यो
दिग्गज दहलि, त्रास पर्यौ चक्रवाल कौं
पाउं के धरत अति भार के परत, भयो
एकै है परत मिलि सपत-पाताल कौं।

५वी तरंग।५५

गद्यात्मक रचनाएं

खड़ी बोली गद्य के आविर्भाव काल मे रामचरित को लेकर तीन रचनाएं हुईं :—

१—रामप्रसाद निरंजनी ने "भाषा योग वाशिष्ठ" लिखा।

२—दौलतराम ने पद्मपुराण को गद्य मे अवतरित किया जिसमे रामचरित का अंश भी आता है।

३—सदल मिश्र ने "रामचरित" नाम से रामकथा का ग्रन्थ लिखा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास के बाद राम कथा को लेकर हिन्दी

के अवधी क्षेत्र के कवियों ने बराबर नयी-नयी रचनाओं से हिन्दी भंडार समृद्ध किया। सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि शैली, विधा, तथा विषय की दृष्टि से इन रचनाओं में अनेकता आती रही है, यही इस प्रयास की सबसे बड़ी विशेषता है प्रबन्ध काव्य, खण्डकाव्य, नाटक, चरित-वर्णन, स्फुट काव्य सब प्रकार की रचनाएं इस परंपरा मे हुई हैं और जब गद्य का आविर्भाव हुआ तो उसमें भी रामकथा को लेकर हमारे लेखक आए, रामकथा की लोकप्रियता और रामभक्ति का आन्दोलन ही इसके मूल में सर्वत्र अनुप्रेरणा देता रहा, इसमें संदेह नहीं।

अब प्राचीन काव्य में (अवधी या ब्रज मे) राम-कथा के गान की सरणि समाप्त हो गयी है किन्तु इन भाषाओं में भगवान की अलौकिक लीला की अभिव्यक्ति की कुछ ऐसी सहजता है कि कभी-कभी माने-जाने कवि या विद्वान जो खड़ी बोली के लेखक हैं, अवधी या ब्रज में राम-कथा का कोई अंश आत्म-तृप्ति पाते हैं। उनका साहित्यिक महत्व कम आध्यात्मिक महत्व ही प्रायः है। कल्याण वर्ष ३१ अंक में ऐसी ही एक कविता डा० रामकुमार वर्मा की जनक-दुलारी प्रकाशित है।

४

मधुरा भक्ति-प्रमुख :

तुलसीदासोत्तर राम-काव्य का मध्ययुग

राम-साहित्य में रसिक-संप्रदाय और उसका कृतित्व

रसिक-सम्प्रदाय की रामभक्ति तुलसीदास के रामचरित मानस में निरूपित रामभक्ति से एक भिन्न दिशा में आविर्भूत और पल्लवित हुई है। तुलसीदास की रामभक्ति और रसिक संप्रदाय की रामभक्ति का उद्देश्य तो एक कहा जा सकता है पर उनकी साधना और उनके सिद्धान्त नितान्त विपरीत हैं। रसिक संप्रदाय की इस भक्ति का इतिहास तुलसीदास के आविर्भाव से कुछ पूर्व का है। ऐसा समझा जाता है कि यदि तुलसीदास के 'रामचरितमानस' की रचना न हुई होती तो यह रसिक-संप्रदाय तुलसीदास के काल में ही अधिक पल्लवित हो जाता। 'रामचरितमानस' के प्रचार ने इसके विकास को अवरुद्ध किया और इस प्रकार अवरुद्ध किया कि दो शताब्दी बाद भी इसका प्रचार-प्रसार अयोध्या और राम तीर्थों तक ही सीमित रहा और छिटपुट स्थानों में ही इस संप्रदाय के इने-गिने महात्मा ही यह रहस्यमयी साधना करते रहे। लोक-जीवन के अनुकूल यह नहीं प्रमाणित हुआ।

रसिक-संप्रदाय का स्वरूप

इनका जीवनदर्शन 'विषस्य विषमौषधम्' के सिद्धान्त पर आधारित है। प्रत्येक भक्त का लक्ष्य इन सांसारिक बाधाओं से मुक्ति ही है। सांसारिक बाधाएं प्रत्येक साधक के मार्ग में एक समस्या बनकर आती हैं, जिससे भक्त अपने भगवान से पास में नहीं पहुँच पाता, पहुँच भी जाता है तो टिक नहीं पाता। रसिक संप्रदाय ने सांसारिक भावों को ही प्रकारान्तर से अपनी साधना का मार्ग बना लिया। भगवतीप्रसाद सिंह ने अपनी पुस्तक में इसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—

'रसिक-भक्तों का आचार-विचार निर्मल और पवित्र था। सांसारिक प्रपंचो से विरक्त होकर ये भक्त, दम्पति (राम-सीता) के दिव्य शृंगार में रस लेते थे और उसे भक्त की रसभूति का प्रसाद समझते। इनका सारा समय, आराध्य के नाम, रूप, लीला और धाम के चिंतन में बीतता था। साधारण दृष्टि से सांसारिक जीवन में सरसता के जितने उपकरण हो सकते हैं, इन भक्तों के साधनात्मक जीवन में परिष्कृत और सूक्ष्म रूप में वे सभी विद्यमान थे। उपास्य को जिस रूप में चाहे, पूजने की उन्हें स्वतंत्रता थी। आरम्भ में ही एक नाता जोड़कर उसका आजन्म निर्वाह करना इनकी साधना का मूल उद्देश्य होता था।"[१]

ये सम्बन्ध निम्न प्रकार के होते थे—१-सखी भाव का सम्बन्ध, २—सखा-भाव का सम्बन्ध, ३—दासभाव का सम्बन्ध, ४—वात्सल्य भाव का सम्बन्ध।

इनमें सखीभाव का सम्बन्ध जितने व्यापक रूप से प्रचारित हुआ, उतने अन्य सम्बन्ध नहीं। सखी भाव का अर्थ है सीता की सखी अपने चित शरीर को सीता की सखी मानकर सीता-राम की सेवा में अपने को लगाना तथा युगल मूर्ति के ध्यान और अर्चना में अपने को अर्पित कर देना। सखियों के विविध वर्गों और भेदों के अनुसार सेवा-कार्य को अपनाते हुए युगल सरकार (राम सीता) के विहार में अपनी सेवाएं अर्पित करना। इस प्रकार के भक्तों की साधना है।

यहाँ मैं डा० भगवतीप्रसाद सिंह के ग्रन्थ से ही सखी सम्बन्ध का संक्षिप्त परिचय दे रहा हूँ जिससे इस साधना के प्रकार पर थोड़ा प्रकाश पड़े, सखियों की सात प्रकार की अवस्था होती है—

१-मधुर सखी—६ वर्ष से नीचे
२-मंजरी सखी—आदि मंजरी ६ वर्ष की
मध्य मंजरी ७ वर्ष की
अंत मंजरी ८ वर्ष की
३-मुग्धा सखी—आदि मुग्धा ९ वर्ष की
मध्य " १० वर्ष की
अंत " ११ वर्ष की
४-त्रयःसंधिनी सखी—११½ वर्ष की
५-मध्य-सखी—आदि मध्या १२ वर्ष की
मध्य " १३ वर्ष की

१-रामभक्ति में रसिक संप्रदाय पृ० ११३९।

अंत मध्य १४ वर्ष की
६-प्रौढ़ा सखी—आदि प्रौढा १५ वर्ष की
मध्य प्रौढा १६ वर्ष की
७-नायिका— जिनकी आयु १६ वर्ष के ऊपर हो।

वर्ग-निर्णय

१-मिथिला से सीताजी के साथ आयी हुई निमि वंशी सखियां
२-अवधपुरी की रघुवंशी सखियां
संप्रदाय में प्रथम वर्ग का ही आधिक्य है।

सेवा प्रकार

रघुवंशी सखियो की निम्नांकित सेवाएँ है—

संगीत सेवा, पुष्पाभूषण सेवा,
ताम्बूल सेवा, सेज बिछाने की सेवा,
वस्त्र सेवा, दर्पण सेवा,
आभूषण सेवा, सुगन्ध सेवा,
व्यंजन सेवा, संरक्षणसेवा,
अंजन सेवा, मुर्छल सेवा,
अंगराग सेवा, छत्र सेवा,
व्यजन सेवा, चंवर सेवा।

युगल-सरकार के विहार के समय सेवा करनेवाली सखियों के वर्ग :
१-मंजरी—युगल सरकार के विहार में संकोच व्यवहार करने वाली।
२-सखी—युगल सरकार के रस केलि में आत्यन्तिक अभाव वाली।
३-अली—युगल सरकार की परस्पर केलि में धृष्टता करने वाली।
४-सहचारी—युगल सरकार की विहार लीला में निस्संकोच भाव से आने जाने वाली।
५—किंकरी—युगल सरकार की रासलीला में डर कर जाने वाली।

आगे डा० भगवतीप्रसाद सिंह जी लिखते हैं—

'वय वर्ग और सेवा निर्धारित हो जाने पर चित् देह का अन्तरंग सेवा सम्बन्धी नाम रखा जाता है। इसे आत्म-सम्बन्धी नाम भी कहते हैं। यह नाम मंत्र दीक्षा के समय रखे गये शरणागति सूचक नाम से सर्वथा भिन्न होता है। सखी भावोपासकों के भावना सम्बन्धी नाम अली, लता, सखी, प्रिया, कली, कला, मंजरी इत्यादि छापों के सहित रखे जाते हैं—जैसे अग्र अली, रूप कला

प्रेमलता, प्रिया सखी और युगलमंजरी। ये नाम प्रायः उपास्य के साधना-शरीर के भाव-सम्बन्ध अथवा सेवा स्वरूप पर आधारित होते हैं।

इसके पश्चात सद्गुरु शिष्य को उसके दिव्य जीवन से सम्बद्ध निम्नलिखित तत्वों का बोध कराता है—

१-अपना सम्बन्ध श्री मिथिला जी से जानना।

२-श्री जानकीजी के साथ हुए राम के पाणिग्रहण के साथ अपना भी पाणिग्रहण मानना।

३-अपने को किशोरीजी (सीता जी) की सखी मानकर उनके सम्बन्ध से ही अपना सुख विचारना।

४-अपनी इष्ट-सिद्धि श्री जानकीजी की कृपा-कटाक्ष से ही संभव मानना।[1]

युगल सरकार के आठो यामों के विहार और लीला के चिंतन को ही भक्त अपना इष्ट बनाता है, और अपना जिस प्रकार का सम्बन्ध वह युगल सरकार से जोड़ता है, अष्टयाम में उसी प्रकार की भावना का ध्यान करता है। इस सम्बन्ध में डा० भगवतीप्रसाद सिंह का दिया हुआ यह परिचय ही पर्याप्त होगा।

> सम्बन्ध-व्याख्या के अनन्तर उसके वास्तविक बोध और योग के लिए आचार्य शिष्य को निरन्तर अपने सम्पूर्ण सम्बन्धों का चिन्तन करते रहने का उपदेश करता है। उसकी दृढ़ता के लिए संप्रदाय में अष्टयाम भावना, मानसी पूजा अथवा अष्टयाम लीला के चिंतन का विधान है। इसके अभ्यास से साधक को उपास्य से अपने सच्चे नाते का अनुभव होने लगता है। उसका मन सांसारिक विषयों एवं प्रपंचों से ऊपर उठकर प्रिय की नित्य केलि भावना में तदाकार हो जाता है। सम्प्रदायिक शास्त्रों में यही सम्बन्ध रस भोग की दशा मानी जाता है।"[2]

मधुर भाव की इस उपासना की साधना और उसके प्रकारों का इसी प्रकार सप्रपंच विस्तार हुआ है। इसमें भी विशेष-विशेष संप्रदाय हैं। कई प्रकार के तिलक हैं। प्रत्येक संप्रदाय और तिलक लगानेवाले मधुरभाव के उपासक अपने गुरुओं की विभिन्न गद्दियों की परंपरा से संबंध रखते हैं। विशेष

१-रामभक्ति में रसिक संप्रदाय, पृ० २३७-२३८।

२-वही, पृ० २४०।

तिलक उनकी गुरु-परम्परा और साधना-सिद्धान्तों के प्रतीक होते हैं। कुल १३ प्रकार के तिलक इस संप्रदाय में प्रचलित हैं।

मधुर भाव की इस उपासना में मूलतः राधा-कृष्ण की मधुर उपासना का अत्यन्त निकट का प्रभाव है। सहजिया जैसे वैष्णव संप्रदायों की परकीया रति ही मधुर भाव की उपासना के इस आमुख के अधिकारी हैं। डॉ० भुवनेश्वर नाथ मिश्र "माधव" ने लिखा है—

"वैष्णव सहजियों ने प्रेम में परकीया भाव ही लक्ष्य माना। मानव प्रेम के द्वारा ही दिव्य प्रेम की परिकल्पना हुई। प्रेम केवल प्रेम के लिए ही जहाँ लोक और वेद की शृंखला तोड़कर अपने प्रेमास्पद का वरण करता है वही वह आदर्श है। विवाहित पत्नी के प्रति चिर-सहवास, प्रगाढ़ परिचय के कारण प्रेम का रस-रहस्य बहुत कुछ नष्ट प्राय हो जाते हैं, उसमें इतना तीव्र आकर्षण, रहस्य, उत्कंठा आदि का भाव नहीं रहता जितना परकीया प्रेम में होता है। स्वकीया में प्रेम कर्तव्य-प्रधान, समाज बन्धन का आश्रित, रंग में फीका और रस में उदास हो जाता है।······ वैष्णव सहजियों ने प्रेम के इस परकीया भाव की तीव्रता को अपनी प्रेम साधना का आदर्श माना। किंवदन्ती है कि स्वयं चैतन्यदेव ने सार्वभौम की कन्या षाठी के साथ सहज साधना की। इतना ही नहीं, प्रायः सभी वैष्णव भक्त कवियों ने किसी न किसी कुमारिका के सङ्ग में सहज साधना की[१]।"

आगे वे लिखते हैं—

'कृष्ण ही हैं रस और राधा हैं रति। कृष्ण ही हैं काम और राधा हैं मादन। कृष्ण काम या कन्दर्प रूप में जीव-जीव के प्राण को अपनी ओर आकृष्ट करते रहते हैं। राधा है मादन जो भोक्ता को आनंद विकास की प्रदात्री है। रस और रति, काम और मादन के बीच जो दिव्य प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही वह सहज है।"[२]

इसी प्रकार आरोप साधना के विषय में कहते हैं—

"पुरुष का कृष्ण रूपकों और स्त्री का राधात्व में अनुभव या भावना को आरोप की साधना कहते हैं। निरंतर शुद्ध चिंतन और शुद्ध

१-रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ० ७०-७१।
२-वहीं, पृ० ७१।

भावना के द्वारा अपने अंदर के सारे मल-प्रावरण आदि विकारों को नष्ट करके अपने अन्दर के मारे पशु का वलि देकर साधक सर्वथा पवित्र हो जाय और पुरुष में कृष्ण का और स्त्री में राधा की भावना दृढ़ करे। इसी प्रकार भावना दृढ होते-होते जब पुरुष को अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् अपने कृष्णत्व का और स्त्री को अपने राधात्व का अनुभव होने लगे तब उनका प्रेम साधारण स्त्री-पुरुष का पार्थिव प्रेम न होकर राधा-कृष्ण का दिव्य प्रेम हो जाता है। प्रेम की यह दिव्य अनुभूति ही सहज की अनुभूति है[1]।"

इस प्रकार कृष्ण भक्तों की इन साधनाओं और इन सिद्धान्तों ने राम-सीता की भक्ति साधन के रूप में नया अवतार लिया।

रामभक्ति के मधुर उपासकों का अंतिम लक्ष्य है—भगवान राम के नित्य लीला धाम की प्राप्ति। जहा सीता और उनकी सखियों के साथ कुंज मे नित्य लीला-विहार करते रहते हैं। यही भक्त का कैवल्य है। इस लीला-विहार का दिव्य लोक साकेत धाम है और इस लोक में अयोध्या के कुंज, सरयूतट आदि। यमुना के तट के स्थान पर सरयू तट और गोलोक के स्थान पर साकेत धाम—केवल इतने ही अन्तर को चाहे जो समझा जाय, नहीं तो श्रीमद्भागवत में जिस रासलीला, और राधाकृष्ण के विहार की चर्चा की गई है अथवा परवर्ती कृष्ण-काव्यों-'गीतगोविन्द' आदि मे जो मधुर वर्णन राधाकृष्ण की भक्ति के प्रसंग में हुए हैं, उन्हीं का नया अवतरण रामभक्ति के मधुर उपासकों ने रामभक्ति साहित्य में उपस्थित किया।

मधुर-उपासना का ऐतिह्य

रामभक्ति की मधुर उपासना के आदि स्रोत-ग्रन्थ के रूप में हम छः ग्रन्थों को ले सकते हैं : (१) शिव-संहिता (२) लोमश-संहिता (३) श्री हनुमत्संहिता (४) बृहत्कोशलखण्ड (५) भुशुंडि-रामायण (६) राम लिंगामृत। इनमें रामलिंगामृत का ही रचना काल शाक संवत् १५३० और लेखक का नाम अद्वैत ब्राह्मण दिया हुआ है। शेष रचनाओं के लेखक और रचनाकाल का भी पता नहीं है। इसी प्रकार मधुर उपासना को लेकर उपनिषद् ग्रन्थों का भी निर्माण हुआ है—

१-राम भक्ति साहित्य में मधुर उपासना : पृ० ७३।

(१) श्री रामतापनीयोपनिषद् (२) विश्वम्भरोपनिषद् (३) मैथिल्युपनिषद् (४) मैथिली महोपनिषद् (५) राम रहस्योपनिषद् ।

क्योंकि सभी भारतीय दार्शनिक संप्रदायों के ग्रन्थ मूल रूप से संस्कृत में रहे हैं और यदि किसी संप्रदाय का ग्रन्थ संस्कृत में नहीं है तो उसकी प्रामाणिकता में भी संदेह हो जाता है। इसके फलस्वरूप संस्कृत में कई एक ग्रन्थ इस रूप में इस सम्प्रदाय ने उपस्थित किये हैं जो इस मधुर उपासना और उपासकों की परम्परा का इतिहास, उसकी पुरातनता और प्रामाणिकता प्रस्तुत करते हैं। उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त ये ग्रन्थ भी सम्प्रदाय में हैं :—

१-बृहद्ब्रह्मसंहिता २-अगस्त्य संहिता, ३-वाल्मीकि संहिता ४-शुक संहिता ५-वसिष्ठ संहिता ६-सदाशिव संहिता ७-महाशंभुसंहिता ८-हिरण्यगर्भ संहिता ९-महा सदाशिव संहिता १०-ब्रह्म संहिता।

मधुर उपासना के गुरुओं की परम्परा को बहुत पीछे ले जाकर श्री हनुमानजी से उसे आरम्भ किया जाता है। वसिष्ठ आदि भी उसी परम्परा में रखे जाते हैं। इसीलिए ऐसा प्रतीत होता है कि मधुर भाव के उपासकों ने केवल अपनी मान्यताओं की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए ऐसा किया है। उन्होंने अपनी गुरु परम्परा की जो सूची उपस्थित की है उसमें हनुमान जी आदि के नाम भी उपासना के क्षेत्र में दूसरे बताये गए हैं—यथा—

नाम	रसिक साधना का नाम
श्री हनुमान जी	श्री चारु शीला जी
श्री ब्रह्मा जी	श्री विश्वमोहिनी जी
श्री वशिष्ठ जी	श्री ब्रह्मचारिणी जी
श्री पराशर जी	श्री पापमोचना जी
श्री व्यास जी	श्री व्यासेश्वरी जी
श्री शुकदेव जी	श्री सुशीला जी
श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी	श्री पुनीता जी आदि।

सम्प्रदाय की परम्परा में ये नाम निश्चित रूप से सम्प्रदाय का गौरव बढ़ाने के लिए है। सम्प्रदाय के इतिहास में यह गुरु-परम्परा श्री रामानन्द और तुलसीदास तक जाती है। इसके बाद आधुनिक रसिक-परम्परा के भक्तों की नामावली तो स्पष्ट ही है।

हिन्दी साहित्य में रसिक संप्रदाय का आरम्भ स्वामी अग्रदास जी (संवत् ६३२ में वर्तमान) से होता है। उनके 'अष्टयाम' और 'ध्यान-मंजरी' इसी प्रदाय के ग्रन्थ हैं। अग्रदास जी के शिष्य नाभादास जी अपने "भक्तमाल" में रसिक सन्तों के नाम भी गिनाए हैं। पर रसिक सम्प्रदाय का वास्तविक प्रचार-प्रसार १९वीं शती के आरम्भ में रसिकाचार्य महात्मा रामचरणदास जी के संगठन और प्रयास के फलस्वरूप हुआ। इस समय रसिक सम्प्रदाय की भावना ने जोर पकड़ा। अनेक महात्मा इस सम्प्रदाय में दीक्षित हुए और अनेक ने रसिक-संप्रदाय के गीत साहित्य की रचना की।

इस प्रकार राम-रसिक संप्रदाय के भक्तों द्वारा रसिक साहित्य की रचना का आरम्भ स्वामी अग्रदास से ही मानना चाहिए। यद्यपि डा० भगवती प्रसाद सिंह और डा० भुवनेश्वर नाथ मिश्र "माधव" ने संस्कृत की अनेक कृतियों तथा तुलसीदास की कृतियों को भी शृंगार वर्णन के आधार पर उसमें सम्मिलित करने का प्रयत्न किया है। संस्कृत ग्रन्थों में 'जानकी गीत' की जो चर्चा डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' ने की है वह रसिक संप्रदाय का ग्रंथ है। इसकी रचना गलताश्रम के पीठाधीश्वर स्वामी हर्याचार्य ने की थी। इसकी समानता 'गीत गोविन्द' और 'राधा विनोद' से की जाती है। यह रसिक भावना और रसिक सिद्धान्तों पर लिखा गया रसिक संप्रदाय का काव्य है। रसिक सम्प्रदाय की मतियों का इसमें उल्लेख भी हुआ है। मंगलाचरण का यह श्लोक रसिक-भावना की ही अभिव्यक्ति है—

इसी पुराण मे एक स्थल पर राधा केशव के निगूढ तत्व को स्पष्ट करते हुए श्री नारायण उनकी इस रमण लीला को वेदों और पुराणों का गोपनीय रहस्य कहते हैं। राधा की माता को रसिकेश्वरी, कामुकी, सुस्थिर यौवना, *यौवनातीति विशारदा, सिद्ध योगिनी कहकर राधा को भी माता के समान* कामुकी और कलाविद् बताते हैं जिनके साथ रसोत्मुक होकर कृष्ण रास-लीला कर रहे हैं—

> श्रृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ।
> गोपनीयंच वेदेषु पुराणेषु पुराविदम् ॥
> *पुन सकामो भगवान् कृष्ण: स्वेच्छामयो विभु:*
> रेमे रसमया सार्द्धं विदिग्धश्च विदाधया ॥
> वेदवेदांगनिपुणा: योगनीतिविशारदा ।
> नानारूपधरासाध्वी प्रसिद्धा सिद्धयोगिनी ॥
> तत्कन्या राधिका देवी मातृतुल्या च कामुकी ।
> चकार नानाभावं सा सुशीला स्वामिनं प्रति ॥
>
> खण्ड ४ अध्याय ६६ ।

और इन वैष्णवो ने वेदवेदागों के लिए रहस्य-रूप इस रासलीला की बडी महिमा गाई है । ब्रह्मा सहित सभी देवगण इस रासलीला पर निछावर हैं। शेष और शंकर भी इसे देखने आते हैं।

राम-रसिक संप्रदाय मे मिथिला की सखियो को सम्प्रदाय मे जो स्थान मिला है, वह इसी का प्रभाव है ।

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' कृष्ण भक्त रसिक संप्रदाय की परतें उलट कर हमारे सामने रख देता है । इसका महत्व इसलिए अधिक है कि यह उस संप्रदाय के ग्रन्थ रूप मे नही लिखा गया है पर उस युग की वैष्णव-भक्तों की लोक प्रसिद्ध प्रवृत्तियाँ अपने आप इसमे आ गयी हैं। ऊपर के उद्धरणो मे रसिक शब्द कई बार स्पष्ट रूप मे आया है, यह रसिक शब्द कृष्ण भक्त रसिकों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है जो उस युग मे प्रसिद्धि पा रहे होंगे। संभवतः ब्रह्मवैवर्त पुराण का यह रूप १४वी शताब्दी के पूर्व का न होगा।

ब्रह्मवैवर्त-पुराण का एक और प्रसङ्ग इस विषय की ही पुष्टि करता है। प्रजापति ब्रह्मा स्वर्गीय वेश्या मोहिनी की काम-भावना का निरादर करते हैं। मोहिनी अपने काम भाव के निरादर से दुखी होकर ब्रह्मा को शाप देती हैं—

आपका यह इन्द्रिय निग्रह केवल विडम्बना है, दासी तुल्य, विनीत इस मोहिनी का निरादर जो आपने किया है अब आपको लोक में कोई आदर न मिलेगा। आपका यह अभिमान भंग होकर आपका नाम, आपके स्तुति लोगों के कार्य में विघ्न पैदा करेगी और आपकी कभी पूजा न होगी :—

दासीतुल्यां विनीतां च देवेन शरणागताम् ।
यतो हससि गर्वेण ततो पूज्यो भवाविरम् ॥
तदैव वचनं स्तोत्रं गृह्णाति यो नरः सदा ।
भविता तपोविघ्नश्च स यास्यत्यवहास्यताम् ॥

अध्याय ३३।

ब्रह्मा इस घटना से घबड़ाए और नारायण के पास पहुँचे। नारायण ने ब्रह्मा को दोषी ठहराया और कहा—स्त्री-जाति प्रकृति का अंश है, जगत का बीज है, स्त्रियों का अपमान, अवहेलना, सीधे-सीधे प्रकृति की उपेक्षा है—

स्त्री जातिः प्रकृतेरंशा जगतां बीज रूपिणी ।
स्त्रीणां विडम्बनेनैव प्रकृतेश्च विडम्बना ॥

और नारायण ने ब्रह्मा के सामने जो घटना प्रस्तुत हुई थी उस पर अपनी व्यवस्था दी—

न तद् भारतवर्षश्च पुण्यक्षेत्रमनुत्तमम् ।
क्रीड़ाक्षेत्रे ब्रह्मलोके कस्त्वयोन्द्रिय निग्रहः ॥
यदि तद् भारते दैवात्कामिनी समुपस्थिता ।
स्वयं रहसि कामार्ता न सा त्याज्या जितेन्द्रियः ।
त्यक्त्वा परत्र नरकं व्रजेदिति विडम्बतः ॥

अध्याय ३४॥

ब्रह्मा! यह लोक पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष नहीं है फिर इस क्रीड़ा क्षेत्र ब्रह्मलोक में तेरा यह कैसा इन्द्रिय निग्रह! जो तूने मोहिनी का तिरस्कार किया। यह परम्परा जिसमें इन्द्रिय-निग्रह-वश हठात् स्त्री की उपेक्षा की जाती है भारतवर्ष को है किन्तु भारतवर्ष में भी देववश एकान्त में काम व्याकुल कामिनी आकर रति की याचना करे तो जितेन्द्रियों को भी उसका त्याग नहीं करना चाहिए—

ध्रुवं भवेन् सो पराधी तस्यावमानतः

जो इस प्रकार कामिनी का त्याग करता है वह निश्चय ही नरक में जाता है।

इसी पुराण में एक स्थल पर राधा केशव के निगूढ़ तत्व को स्पष्ट करते हुए श्री नारायण उनकी इस रमण लीला को वेदों और पुराणों का गोपनीय रहस्य कहते हैं। राधा की माता को रसिकेश्वरी, कामुकी, सुस्थिर यौवना, यौवनातीति विशारदा, सिद्ध योगिनी कहकर राधा को भी माता के समान कामुकी और कलाविद् बताते हैं जिनके साथ रसोत्सुक होकर कृष्ण रास-लीला कर रहे हैं—

> शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ।
> गोपनीयंच वेदेषु पुराणेषु पुराविदम् ॥
> पुन: सकामो भगवान् कृष्ण: स्वेच्छामयो विभुः
> रेमे रसमया सार्द्धं विदिग्धश्च विदग्धया ॥
> वेदवेदांगनिपुणा: योगनीतिविशारदा ।
> नानारूपधरासाध्वी प्रसिद्धा सिद्धयोगिनी ॥
> तत्कन्या राधिका देवी मातृतुल्या च कामुकी ।
> चकार नानाभावं सा सुशीला स्वामिनं प्रति ॥

खण्ड ४ अध्याय ६६।

और इन वैष्णवों ने वेदवेदांगों के लिए रहस्य-रूप इस रासलीला की बड़ी महिमा गाई है। ब्रह्मा सहित सभी देवगण इस रासलीला पर निछावर हैं। शेष और शंकर भी इसे देखने आते हैं।

राम-रसिक संप्रदाय में मिथिला की सखियों को सम्प्रदाय में जो स्थान मिला है, वह इसी का प्रभाव है।

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' कृष्ण-भक्त रसिक संप्रदाय की परतें उलट कर हमारे सामने रख देता है। इसका महत्व इसलिए अधिक है कि यह उस संप्रदाय के ग्रन्थ रूप में नहीं लिखा गया है पर उस युग की वैष्णव-भक्ति की लोक प्रसिद्ध प्रवृत्तियाँ अपने आप इसमें आ गयी हैं। ऊपर के उद्धरणों में रसिक शब्द कई बार स्पष्ट रूप से आया है, यह रसिक शब्द कृष्ण भक्त रसिकों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है जो उस युग में प्रसिद्धि पा रहे होंगे। संभवतः ब्रह्मवैवर्त पुराण का यह रूप १४वीं शताब्दी के पूर्व का न होगा।

ब्रह्मवैवर्त पुराण का एक और प्रसङ्ग इस विषय की ही पुष्टि करता है। प्रजापति ब्रह्मा स्वर्गीय वेश्या मोहिनी की काम-भावना का निरादर करते हैं। मोहिनी अपने काम भाव के निरादर से दुखी होकर ब्रह्मा को शाप देती है—

आपका यह इन्द्रिय निग्रह केवल विडम्बना है, दासी तुल्य, विनीत इस मोहिनी का निरादर जो आपने किया है अब आपको लोक में कोई आदर न मिलेगा। आपका यह अभिमान भंग होकर आपका नाम, आपके स्तुति लोगों के कार्य में विघ्न पैदा करेगी और आपकी कभी पूजा न होगी :—

दासीतुल्यां विनीतां च देवेन शरणागताम्।
यतो हससि गर्वेण ततो पूज्यो भवादिरम्॥
तदैव वचनं स्तोत्रं गृह्णाति यो नरः सदा।
भविता तपोविघ्नश्च स यास्यत्यवहास्यताम्॥

अध्याय ३३।

ब्रह्मा इस घटना से घबड़ाए और नारायण के पास पहुँचे। नारायण ने ब्रह्मा को दोषी ठहराया और कहा—स्त्री-जाति प्रकृति का अंश है, जगत का बीज है, स्त्रियों का अपमान, अवहेलना, सीधे-सीधे प्रकृति की उपेक्षा है—

स्त्री जातिः प्रकृतेरंशा जगतां बीज रूपिणी।
स्त्रीणां विडम्बनेनैव प्रकृतेश्च विडम्बना॥

और नारायण ने ब्रह्मा के सामने जो घटना प्रस्तुत हुई थी उस पर अपनी व्यवस्था दी—

न तद् भारतवर्षश्च पुण्यक्षेत्रमनुत्तमम्।
क्रीड़ाक्षेत्रे ब्रह्मलोके कस्तवोऽयि निग्रहः॥
यदि तद् भारते दैवात्कामिनी समुपस्थिता।
स्वयं रहसि कामार्ता न सा त्याज्या जितेन्द्रियः।
त्यक्त्वा परत्र नरकं व्रजेदिति विडम्बतः॥

अध्याय ३४॥

ब्रह्मा! यह लोक पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष नहीं है फिर इस क्रीड़ा क्षेत्र ब्रह्मलोक में तेरा यह कैसा इन्द्रिय निग्रह! जो तूने मोहिनी का तिरस्कार किया। यह परम्परा जिसमें इन्द्रिय-निग्रह-वश हठात् स्त्री की उपेक्षा की जाती है भारतवर्ष की है किन्तु भारतवर्ष में भी देववश एकान्त में काम व्याकुल कामिनी आकर रति की याचना करे तो जितेन्द्रियों को भी उसका त्याग नहीं करना चाहिए—

ध्रुवं भवेत् सो पराधी तस्यावमानतः

जो इस प्रकार कामिनी का त्याग करता है वह निश्चय ही नरक में जाता है।

यह उन चिन्तकों का उत्तर रहा होगा जो ऐसे रसिक वैष्णवों पर सामान्य लोक के भीतर आक्षेप तथा तिरस्कार पैदा करने रहे होंगे। कितनी सटीक युक्ति पुराणकार ने सोच निकाली। भारतवर्ष में ही इन्द्रिय संयम किया जा सकता है। अतः कृष्ण का गोलोक तथा राम का साकेत धाम दोनों इस रसिक भक्तों की दृष्टि में भारतभूमि से बाहर हैं।

वैष्णवों की इन मान्यताओं ने ही कृष्ण और राम के रसिक भक्तों को अनुप्रेरित किया है। विष्णु की भक्ति के सम्बन्ध की जो भी पद्धतियाँ प्रचलित थीं, जब कृष्ण और राम भक्तों ने कृष्ण और राम के वीर रूप को अलग रखकर केवल उनके मधुर रूप की उपासना आरम्भ की तो पहले विष्णु की वह शृंगारी भावना कृष्ण के उपासकों में आई और फिर राम के भक्तों ने भी राम के व्यापक जीवन को संकुचित कर उन्हें साकेत धाम की लीला में सीमित कर वही मधुर उपासना का नाच शुरू किया।

भक्ति, योग और वैराग्य के साधकों के सामने काम पर विजय एक बहुत बड़ी समस्या रही है। धर्म के अनेक संप्रदाय जो मध्यकाल के इतिहास में इस देश में प्रभावित हुए सभी ने अपने-अपने ढङ्ग से इस समस्या को पचाने की कोशिश की है। इसमें योग और हठयोग के साधकों ने तो काम-भावना का दमन करने में ही अपनी साधना की सफलता मानी है। पर इनके अतिरिक्त अनेक सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में इस काम-भावना के सामने नतमस्तक हैं। इनमें भी शैव और तान्त्रिकों तथा इनके हमजोलियों ने काम-भावना को विशुद्ध सात्विक रूप प्रदान कर अपने को लोक के अधिक निकट रखा। साथ ही वे लोक के लिए बहुत कुछ बोधगम्य रहे। उनके सम्प्रदाय में यौन-योग को साधना का एक अंग मान लिया गया। कापालिकों की पंचमकारी साधना प्रसिद्ध है। प्रत्येक कापालिक अपनी साधना के लिए एक स्त्री अपने साथ जरूर रखता है। दूसरे अनेक सम्प्रदायों की तरह दर्शन की मीमांसा में इन्होंने यौनावरण को माया के अलौकिक आवरण में नहीं लपेटा। कामभावना को आत्मसात करने की प्रक्रिया ही कृष्ण और राम भक्तों की रसिक साधना के रूप में आयी जिसमें साधना का पौरुष रूप तिरोहित हो उठा एकमात्र साधक ने सब प्रकार से अपने को राम को समर्पित कर दिया। काम भावना को जो मोड़ इस रसिक संप्रदाय के पूर्व शाक्त साधना क्षेत्र में प्राप्त हुआ था उसको इसमें ज्यों का त्यों अंगीकार किया। पहले राधाकृष्ण की जिस जलकेलि का वर्णन ब्रह्म वैवर्त पुराण

में उद्धृत किया गया है उससे ही श्री युगलानन्य शरण 'हेमलता' जी के युगल सरकार के सखियों सहित इस जलकेलि से मिलाइए—

काचित कला निकेत बाम बूदत स्वतंत्र जल।
गहत लाल कर कंज जाम औचक असक कल॥
प्रीतम प्रेम प्रकासि परम पंडिता रहस मधि।
ललिन समेत अथाह नीर मज्जति विचित्र विधि॥
ललित लड़ंतो लाल सखिन सम्पन्न परस्पर।
नवल नीर कन कंज करन सोचत विचित्र तर॥
कोमल करपद कंज आघात सरस सुचि।
काहि केलि कमनीय रमन रमनी समेत रुचि॥

—युगलविनोद विलास उद्धृत।

और जैसे दुर्गा-सप्तशती मे ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी शक्ति की वन्दना करते हैं वैसे राम-रसिक भक्तों की आराध्या सीता रानी जू सर्वोपरि है, उनकी चेरी बने बिना आत्मा की गति (आत्म-साक्षात्कार) मुश्किल है। श्री सीताराम शरण 'शुभलीला' का यह दोहा देखिए—

राग रास मंडल रचौं, श्री महाराज कुमार।
श्रवन कबहुँ वह सनौंगो, जनकसुता सुकुमार॥
ब्रह्मादिक को गति नहीं, सुनै आय मुखराग।
चेरी तन धारे बिना, दूर महल अरु बाग॥

—युगलोत्कंठ प्रकाशिका से उद्धृत

रसिक सम्प्रदाय और राम-भक्ति की तंत्र-मंत्र-परक प्रतिष्ठा

जैसे-जैसे रसिक संप्रदाय राम को उनके अब तक के निरूपित व्यापक लोक मर्यादा-स्वरूप से ले जाकर साकेत लीला में सीमित कर बैठा वैसे-वैसे राम का लोकनायक रूप तिरोहित हो गया और केवल उनके 'राम' नाम की महिमा ही शेष रह गयी। अतः एक ओर रसिक संप्रदाय ने अपना एक दर्शन प्रस्तुत किया और दूसरी ओर नाथपंथियों, शाक्तों तथा शैवों की पद्धति का अनुकरण कर रसिक भक्तों ने राम नाम को तंत्र और मंत्र के क्षेत्र में भी प्रतिष्ठित किया।

राम-सीता को तंत्र-मंत्र के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करते हुए रसिक संप्रदाय ने पूरा का पूरा भवानी-शिव का अनुकरण किया है। जैसे शिव का आधा शरीर भवानी का है और वे अर्द्धनारीश्वर कहे जाते हैं, उसी प्रकार रसिक भक्तों के

राम-सीता की आज्ञा के परिपालक हैं। ब्रह्मयामल तंत्र के ये श्लोक इस बात के प्रमाण हैं—

रमा बिहारी रघुवीर रमाशक्त्यै क निग्रहः ।
रमा निग्रह धारीच रमा ध्यान परायनः ॥
रमा विहार निरतो रमाज्ञा परिपालकः ।
रमा कर्मक सन्तुस्ते रमारमन वर लः ॥
रमा केलि कुलाचारी रमाचार गुणे गुरुः ॥
रामसारो राजवृत्ति. राजीरणो विराग ही ।
रामसेवा राजनीतिःरति वो रतिदेश्वरः ॥
रामा पांग नामोगी रामोज्ञानवतां वरः ॥

+ + + +

रमा तरंग सहिता रामयार्या रतिप्रिया ।[१]

इसी प्रकार षडाक्षर मंत्र 'रामायनम :' रसिक भक्तों मे जब प्रतिष्ठित हुआ उसमें युगलनाम रखकर उसकी प्रतिष्ठा की गयी।

रसिक सम्प्रदाय के दर्शन सिद्धान्त को अभिव्यक्त करने वाले संस्कृत भाषा मे जिन संहिता और उपनिषद् ग्रन्थों का नाम गिनाया जाता है जिनकी सूची इसी अध्याय में पहले दी जा चुकी है वे सब रसिक सम्प्रदाय की महिमा का विस्तार करने के लिए परवर्ती रचनाएं ही प्रतीत होती हैं। उन संहिता और उपनिषद् ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से रसिक-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों और साधनाओं का प्रभाव है जो किसी भी प्रकार १६वी विक्रम शताब्दी के पूर्व नहीं कहे जा सकते ।

प्रसिद्ध कवि और रचनाएं

वर्णनात्मक एवं प्रबन्धात्मक

इस साहित्य में अधिकांश मुक्तक रचनाएं हुई हैं जिसमे कुंज विहार, जलकेलि, फाग तथा विहार श्रृंगार के अन्य प्रसंग हैं। थोड़ी सी प्रबन्धात्मक रचनाएं हुई हैं जिनमे 'अष्टयाम' ही अधिक है। कुछ प्रबन्ध काव्य हैं जिनमे रसिक सम्प्रदाय के सिद्धान्त और भावना को छाप हैं।

प्रबन्धात्मक रचनाओं में इनका नाम लिया जा सकता है—

१-रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय : पृ० ६२-६३ से उद्धृत ।

अग्रदास की रचना 'अष्टयाम'।

नाभादास की रचना 'रामाष्टयाम'।

गुणी सुखरामदास टंडन-'रामविलास' (१६३२ ई० में माला दामोदरदास टंडन गुजरात (पंजाब) से प्रकाशित।

बनादास—'उभय प्रबोधक रामायण' (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से १८६२ ई० में प्रकाशित)।

महात्मा शूर किशोर—'श्री मिथिला विलास (खड्ग विलास प्रेस, बाकीपुर १८६५ ई० में प्रकाशित)

रामप्रिया शरण—'सीतायन ग्रन्थ' (बालकाण्ड) (लखनऊ प्रिन्टिंग प्रेस से १८६७ में प्रकाशित)।

रामचरन कवि–'जानकी समर विजय' (अद्‌भुत रामायण से अनुवाद, रचनाकाल १६३३ ई०)।

इन ग्रन्थों में रामचरन कवि के 'जानकी समर विजय' को छोड़कर सभी ग्रन्थ राम-सीता के विलास का ही किसी न किसी रूप मे वर्णन करते हैं। 'जानकी समर विजय' मे राम-रावण के युद्ध का वर्णन है, जिसमें जानकी काली के वेष मे पहुँचकर रावण की सेना का संहार करती हैं और उसी के फलस्वरूप राम की विजय हो जाती है। इसीलिए ग्रन्थ का नाम 'जानकी समर विजय' है। प्रस्तुत ग्रन्थ में सीता की इस महिमा-कथा मे रसिक संप्रदाय और शाक्त सम्प्रदाय का सम्मिलित प्रभाव है। राम संग्राम मे मूछित हो गये हैं तब जानकी उन्हें समर विजय कर, आकर हाथ पकड़ कर जगाती हैं—

जानकी जीति निसाचरि मारि वहै वपु कीरति लूटे।

जाइ जगाइ के पानि गह्यो रघुनंदन जू मुरछा सन छूटे॥

रघुनाथजी को हाथ पकड़कर जगाने का यह भाव रसिक सम्प्रदाय की प्रवृति का द्योतक है।

'सीतायन' ग्रन्थ मे जानकीजी के बाल चरित्र का वर्णन है जिसमें ब्रह्मा आदि स्त्री रूप धारण कर बाला जानकी के शृंगार की वस्तुएं बेंचने आते हैं। पूरा ग्रन्थ इसी हास-विलास और विनोद से पूर्ण है। अनेकधा जानकीजी के नख-शिख का और शृंगार का वर्णन इसमें किया गया है। 'मिथिला-विलास'

भी इसी प्रकार प्रबन्धात्मक रचना होते हुए भी रसिक सम्प्रदाय की भावनाओं से ओतप्रोत है। जनक लली और उनकी सखियों के हास-विलास का वर्णन ही कवि का लक्ष्य है—

जनक लली मधुरे सुर गावत, नइ नइ तान सुनावै,
सहचरि चन्द्रकला अति बीन बजावै। (२१)

बनादास का 'उभय प्रबोधक'-रामायण' बड़ी रचना है और यह ग्रन्थ रसिक संप्रदाय की भक्ति से प्रभावित होकर भी तुलसीदास के भक्ति मार्ग की भी रचना है। ग्रन्थ मे सात खण्ड है —(१) गुरु खण्ड (२) नाम खण्ड (३) अयोध्या खण्ड (४) विपिन खण्ड (५) विहार खण्ड (६) ज्ञान खण्ड (७) शान्ति खंड।

बिहार खण्ड की रचना मे कवि रसिक सम्प्रदाय से अनुप्राणित हुआ है और इसीलिए इस ग्रन्थ को इस शाखा के अन्तर्गत रखना चाहिए।

ग्रन्थ मे दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया तथा अन्य छन्दो का प्रयोग हुआ है।

ग्रन्थ की रचनातिथि, राम के विवाह की तिथि है। इस तिथि के प्रति कवि-आसक्ति ही उसे रसिक सम्प्रदाय का समर्थक संकेत करती है—

हिम ऋतु अगहन मास सित पंचमी है।
राम जी को विवाह दिन जगत विदित है।
सम्वत सहस नव शत को प्रभाव जानो
तापै एक तिंस पुनि बरष लिखित है।
बनादास रघुनाथ चरित प्रकास किये
बुद्धि तो नवीन पुनि लागे अति चित है। (६३)

गुणी सुखराम टन्डन की कृति 'राम विलास' मे बालकाण्ड अयोध्या काण्ड तथा वनकाण्ड की कथा है। इसमे भी उन प्रसगो और भावो का अधिक विस्तार है जो रसिक सम्प्रदाय की भावना से अधिक मेल खाते हैं। फलस्वरूप वनकाण्ड मे यह कहा जाता है कि श्रीराम शबरी को दर्शन देने के लिए आये हैं। शबरी राम के दर्शन के लिए व्यग्र है। इस प्रसंग का बहुत विस्तार किया गया है। राम ऋषियो के समक्ष उनके द्वारा उपेक्षित शबरी की महिमा इस प्रकार प्रकट करते हैं—

तुम शबरी चर्णामृत पावहु हरि भावे सोता शुद्ध हिये
उन शबरी पदुपखार जल में त्यो सरित विमल पिख हर्ष हिये।

शबरी के चरणामृत के मिलाने से नदी का वह जल, जिसमें कीडे पड गये थे शुद्ध हो गया।

अग्रदास और नाभादास की अष्टयाम की रचनाएं रसिक संप्रदाय के आदि ग्रन्थ हैं। सम्प्रदाय की पूजा ध्यान आदि की विधियां और उनके सम्बन्ध में अन्य विवेचन इन मूल ग्रन्थों और पुनः उनकी टीकाओं में किये गये हैं। अग्रदास जी का अष्टयाम संस्कृत में है। शेष दोनो ग्रन्थ हिन्दी मे हैं। अग्रदासजी के दोनों ग्रन्थों पर विस्तृत टीकाएं हैं।

'अष्टयाम' में आठ प्रहर की सेवाओं का विवेचन है जिसमें मंगला आरती से लेकर शयन काल तक की राम और सीता की विविध लीलाओं और उनके संभारों का वर्णन होता है। वस्तुतः आठ प्रहर में राम-सीता की किस प्रकार सेवा करनी चाहिए, उसके साधन और विधि क्या हों, यही तो रसिकों का मूल धर्म और सिद्धान्त है। इसमें बाहरी सेवा तथा मानसी सेवा (ध्यान) दोनों ही सम्मिलित होते हैं। 'अष्टयाम' में राम के सखा और सखियों का उल्लेख है तथा उनकी स्थिति, पूजा में कहां उनका स्थान होना चाहिए, इसके विवेचन हैं। राम के इन सखाओं में रामायण में प्रसिद्ध, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, जाम्बवान, हनुमान कोई नहीं हैं। आठ सखा, आठ सखियां और आठ दासियों के नाम गिनाए हैं। सखाओं के नाम हैं (१) सुलोचना मणि (२) सुभद्र मणि (३) सुचन्द्र मणि (४) जयसेन मणि (५) वशिष्ट मणि (६) सुमशील मणि (७) अनंग मणि (८) रसवेन्दु मणि। पुनः सखियों में लक्ष्मणजी भी एक सखी हैं। सखियां कभी पुरुष रूप से और कभी स्त्री रूप से राम की सेवा करती हैं—

लक्ष्मणा श्यामाना, हंसी, सुगमाश्च चतुर्विधा-।
स्त्रियः प्रसंरूपेण सख्यभावेन सेविताः ॥

'अष्टयाम' में वर्णित सखा और सखियों के ये नाम इस बात की ओर भी पुष्टि करते हैं कि रामायण आदि में प्रसिद्ध राम साहित्य से रसिक सम्प्रदाय का राम साहित्य सर्वथा भिन्न है।

इनकी सेवाएं भी विभाजित हैं—लक्ष्मण जी–ताम्बूल सेवा, श्यामला जी–गन्ध और मोदक आदि पकवान, हंसी जी–अङ्गों में चन्दन आदि का लेप और सुगमा जी जन्द्र-वासक (वस्त्र) पहनाती हैं।

लक्ष्मणा ताम्बूल सेवां श्यामला गन्ध–मोदकम्।
हंसी चन्दन लिप्तांगं सुगमा चन्द्रवासकम् ॥

अग्रदासजी की, 'ध्यानमंजरी' में भी राम के इन्हीं ऐश्वर्यों का वर्णन है—

नाभादास जी आगे इसी प्रकार अन्तःपुर की सखियों की सेवा उनके कटाक्ष आदि का वर्णन करते हुए भोजन और नृत्यसंगीत के साथ शयन का वर्णन कर अष्टयाम का उपसंहार करते हैं।

अग्रदास और नाभादासजी की रचनाएँ राम-रसिक सम्प्रदाय की मूलभूत प्रेरक कृतियाँ हैं, इनके आधार पर ही रसिक सम्प्रदाय का विस्तृत साहित्य लिखा गया। और फिर उसमें कटाक्ष और नृत्य संगीत से आगे बढ़कर राम-सीता की होली की क्रीड़ा का, जल केलि का नग्न वर्णन रसिक कवियों ने किया।

स्फुट कृतियाँ

नाभादासजी के बाद वर्णनात्मक सबसे प्रबन्ध रचना तो कम ही मिलती है, स्फुट रूप से पदों की रचना करने वाले कवि ही अधिक हैं, उनकी एक लम्बी सूची है। ये अपने ग्रन्थ को दूसरे को दिखाना पसंद नहीं करते केवल सम्प्रदाय का व्यक्ति या जिसको पूर्ण श्रद्धा उनपर हो वही इन ग्रन्थों के देखने के अधिकारी होते हैं। स्वभावतः ये ग्रन्थ अधिकांश प्रकाशित ही हैं जो प्रकाशित हैं वे प्रायः अयोध्या अथवा नवल किशोर प्रेस लखनऊ से। प्रमुख रचनाओं और उनके कर्त्ता रसिक काव्यों की सूची इस प्रकारहै—

१-बाल अली जी (काव्य काल संवत् १७२६-१७४६ वि०) रचनाएँ नेह प्रकाश, ध्यान मंजरी।

२-आलानन्द (जन्म सं० १७१०), रामभक्तों की लश्करी शाखा के संस्थापक।

रचनाएँ—स्फुट पद।

३-रूपलाल 'रूपसखी' (१६वीं शती विक्रमी) रचनाएँ—दोहे।

४-सूरकिशोर (संवत् १७६० में वर्तमान) रचनाएँ—स्फुट पद।

५-रामसखे (अठारहवीं शताब्दी) रचनाएँ—पदावली, नृत्य राघवमिलन दोहावली।

६-कृपा निवास (समय उन्नीसवीं वि० शती)

रचनाएँ—लगन पचीसी, अनन्य चितामणि, राम रसामृत सिन्धु, रसपद्धति भावना, पच्चीसी, पदावली।

७-रामचरणदास (जन्म सं० १७६०) रचनायें—पंचशतक रसमालिका,

अष्टयाम-पूजा विधि, रामपदावली, झूलेन, कौशलेन्द्र रहस्य,राम नवरत्न सार संग्रह।

८-जीवाराम 'युगलप्रिया' (१९वी शती विक्रमी) रचना—युगलप्रिया पदावली।

९-जनकराज किशोरी शरण 'रसिक अली' (१९वीं शती विक्रमी) रचना—सिद्धान्त मुक्तावली।

१०-स्वामी युगलानं शरण जी (२०वी शती)
रचनाएँ—प्रेमभाव प्रभा दोहावली, युगल विनोद विलास।

११-सीतारामशरण 'रसरंग मणि' (२०वी शती वि०)
रचनाएँ—सीताराम शोभावली प्रेम पदावली।
श्री रामशत वन्दना, श्री राम रसरंग विलास।
राम झांकी विलास।

१३-रामशरण (जन्म सवत् १८६४) रचनाएँ—सोहर, पदावली।

१४-हनुमान शरण मधुर अली (२०वी शती वि०) रचनाएँ—लीला, पदावली

१५-बैजनाथ कुरमी (जन्म संवत् १८९० वि०)—रचनाएँ—तुलसीदासजी के ग्रन्थो को टीका तथा राममीया संयोग पदावली।

१६-श्री शीलमणि (जन्म संवत् १८७७) रचनाएँ—विवेक गुच्छा, सियावर मुद्रिका।

१७-जानकी वर प्रीति लता (जन्म संवत् १८७९) रचनाएँ—मिथिला महात्म्य, स्फुट पद।

१८-ज्ञान अलि सहचरि जी—रचना—सियावर केलि पदावली।

१९-सियालाल शरण 'प्रेमलता' (जन्म संवत् १९२८) रचनाएँ—वृहद् उपासना रहस्य, प्रेमलता पदावली।

२०-रामनारायण दास (२०वी शती विक्रम) रचना—भजन रत्नावली।

२१-युगलमंजरी जी (२०वी शती वि०) रचना—भावनामृत—कादम्बिनी।

२२-रामवल्लभशरण 'प्रेमनिधि' (जन्म संवत् १९१५) रचनाएँ—वृहत्कोशल खण्ड और शिवसंहिता की टीका। स्फुट पद।

२३-रामवल्लभ शरण 'युगल विहारिणी' (जन्म सं० १९१६)
रचना—युगल विहार पदावली।

२४-सीताराम शरण भगवान प्रसाद 'रूपकला' (जन्म संवत् १८९७)

रचनाएँ—नाभादास के भक्तमाल की टीका, भक्ति सुधा विन्दुस्वाद तिलका। रामायण रसविन्दु, मानस अष्टयाम, प्रेमगंग तरंग। स्फुट पद।

२५-सीताराम शरण शुभशीला (२०वी शती विक्रमीय)
रचना—युगलोत्कंठ प्रकाशिका।

२६-रामाजी (जन्म संवत् १९३८) रचना—स्फुट पद।

इन कवियों के अतिरिक्त अभी ५० ऐसे कवि रसिक संप्रदाय के हैं जिनकी रचनाएँ प्राप्त है, कुछ की प्रकाशित भी हैं पर इन प्रतिनिधि कवियो की चर्चा करके रसिक संप्रदाय के साहित्य का परिचय पूर्ण हो जाता है। इनमे दो प्रकार के रचनाकार हैं (१) जिन्होने राम साहित्य के ग्रन्थों की टीका की है (२) जिन्होंने स्वतंत्र रचना की है। टीका ग्रन्थ पद्य मे भी है। टीकाकारों में श्री रामवल्लशरण 'प्रेमनिधि' और 'रूपकला' जी का लिखा नाभादास के भक्तमाल की टीका—'भक्त सुधा विन्दु स्वाद तिलक,' की प्रशंसा जार्ज ग्रियर्सन ने संदर्भ ग्रन्थ के रूप मे की है।

इन कवियो ने जो कविताएँ लिखी हैं उन्हे चार सर्गों मे बाँटा जा सकता है—(१) अष्टयाम की चर्चा (२) मानसिक ध्यान के पद (३) राम सीता के विलास और रस का उन्मुक्त चित्रण (४) विरह और वैराग की अभि-व्यक्ति।

इसमें राम-सीता के विलास का उन्मुक्त चित्रण इतना खुलकर इन कवियों ने किया है कि रीतिकाल के श्रृंगारी साहित्य ही इससे इस सम्बन्ध में होड़ ले सकता है। भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' ने रसिक संप्रदाय के लिए दर्शन की विस्तृत व्याख्या अपने ग्रन्थ मे की है—रागमयी भक्ति और मधुर रस का स्वरूप—उनकी परिधि के भी बाहर ये रचनाएँ—हो उठती हैं। इनकी परम्परा और भक्ति दर्शन की व्याख्या तो चाहे जहाँ से आई हो पर इसमें सन्देह नहीं कि ये कृष्ण भक्तो के रसिक आदि के आदर्शों से और 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' के वर्णनो से बहुत ही अनुप्रेरित हैं।

ऊपर कहे गये चारों वर्गों की प्रतिनिधि रचनाओं के चुने हुए उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

तो मधि एक सिंहासन सोहै।
रचित विविध मणि अति मन मोहै॥

तापर महापद्म इक राजै ।
दल सहस्र मोतिन मय भ्राजै ॥
तापर राजत सिया रघुनन्दन ।
अलि पुष्प चम्पक मद-गंजन ॥
सिया करें सोरह श्रृङ्गारा ।
चोरन चित अवधेश कुमारा ॥
मांग सिन्दूर तेल रचि बेनी ।
चन्दन खोरि गहा सुख देनी ॥
पान खाति बोलत मृदु बैना ।
दमकत दशन हरत प्रभु चैना ॥
भूषण जे हिमि रतन जड़ाये ।
चन्द्रकादि अंग अंग मन भाए ॥
मणि मानिक जे पट में पोहे ।
कम्पन विनु अंगन अति सोहै ॥

—रामसखेजी

हे जीवन धन लाड़िली
हे नृपलालन मीत ।
हे मन भावन भामिनी ।
दीजे युगपद प्रीति ।
हे नटनागर नागरी
छवि आगरि गुणखानि ।
हे शरणागत रक्षिका ।
निज चेरीकर जानि ॥

—ज्ञान अलि सहचरिजी।

* * *

सब राहस साज बनाये बन विहरत सो रस पाये ।
बहुरंग के फूल उतारी वनमाल गुहै पिय प्यारी ।
बहुभूषण सुमन बनावे रचि प्रीतम को पहिरावे ।
प्रभु निजकर फूल उतारी बहु कंचुकि हार संवारी ।

सब सखियन को पहिरावे सखि फूलन मांग गुहावे।
रचि सेत सुमन बहु सारी सुचि रंग बिरंगी किनारी ॥

*　　　*　　　*

परि केलि प्रभु मानस ललिय ललि लाल कौतूहल रची।
जलकेलि क्रीड़ा भोग जहं अहलाद क्रीड़ा कल मची।
जलजात कर उच्छरित जल जलजात फेंकहि अलि लची।
तेहि संग भ्रमरि उड़ाहि गुंजत देखि कवि शारद नची।
जनु पुर शशि टूटहिं वियकि अहि बाल तेहि रस लूटहीं।
जनु स्वरन संपुट वेष्टि रस अलि आलि चपरि लै जूटही।

*　　　*　　　*

झूलत लड़िली लाल हिंडोलि।
नील सघन पल्लव तरु शोभित जनु वितान घनमाल।
गर्जहि मधुर मधुर पिय मन लै कोकिल शब्द सुराल।
बरपत मेह भरत तरु अमृत बोलित मोर रसाल।

*　　　*　　　*

कोइ जल कनक महावर यइ पग पीय के।
जनु मरकत मणि पत्र लिखित यश सीय के ॥
जनक लली पय जावक चित्र लोल दई।
कनकपत्र जनु लिखति राममन मोल लई।

—रामचरणदास जी करुणासिंधु।

लगन निवाहे ही बनि आवै।
भाव कुभाव खवाव जानदे नेही नाम कहावै।
दृग अटके मन सौंपि दियो जब पीतम हाथ बिकावै।
अपनो मन न रह्यो भयो परबस कैसो ही न्याव चुकावै।
तन दहु द्रवन पवन हंसि उघटे तदपि लगन ललचावै।
शीश उतारि चरण ठुकरावै तब निज भाग सिहावै ॥

—कृपानिवास।

शरद ऋतु जानि के सारी।
रच्यो सुख रास प्रभु प्यारी ॥
धरे मणि-मोति की माला।
सोहै संग सुन्दरी बाला ॥

नचत बरनागरी राजै ।
मधुर धुनि नुपुरे बाजै ॥
टेरत वर तान को प्यारे ।
गावत स्वर सुन्दरी न्यारे ॥
घुमरि घुमि लेत है घुमरी ।
सुधी जब ब्याह को सुमरी ॥
भरी आनंद में प्यारी ।
पकड़ कर राम को सारी ॥
मिले सिय राम अंकवारी ।
नारायण राम बलिहारी ॥

—रामनारायण दास

भली बनी छवि आज की, नहीं कहीं कछु जान ।
मुनि जन तिय करि देति हैं, नारिन की का बान ॥
छोड़ि जुलुफ गल बांहि दे, दिय मगज मुक्ताहार ।
दीरघ दृग घायल करत श्री नृपराज कुमार ॥

—युगलमंजरी जी ।

परि करि प्रत श्री स्वामिनी सुख विर्धनी साथ ।
हमको दीजै सुख सदा अब गहि लीजै हाथ ॥
पद पंकज देखे बिना वृथा जन्म जग जान ।
सीतवर जुन मिलहु अब छिन पन कल्प बिहान ॥

—शुभशीला जी

चातक त्रिपिन जल पाय ।
अंबुज नयन बैन रसभीनें जब हेरत मुसकाय ।
यक टक रही रास पुतरी ज्यों देख दशा बिसराय ।
परत न चैन रैन दिन मोको कब मिलिये धाय ।
तिहारी छबि देखि सांवरे मन मेरे नहिं कल रे ।
निशि बासर मोंहि और न भावत कौन करी छल रे ।
चाहत पान माधुरी मुख की नयन रहि तपत रे ।
बैजनाथ प्यारे लालन ऊपर वारि पियो जल रे ॥

—बैजनाथ कुरमी

होली खेलत राम सिया जोरी।
इत सिय संग सखी यठुराजे रघुवर संग सावन जोरी।
कंचन बन मिथिला पुर माहीं धूम मची अति चहुँ ओरी।
केसर रंग गुलाब पनीर बहुत लगे खोरी खोरी।
अबिर गुलाल कुमकुमनि मारत पिचकारिन तनु सरबोरी।
'प्रेमलता' सुर लखत मुदित मन बरखत सुमन सुभरि भोरी॥

—प्रेमलता

अधिक बिलग अब जनु करि बालम
लेहु मोहि बेगि बुलाय रामा।
जनमा अनेक को गनै मोरे प्रीतम
एहु में छब्बिस साठ रामा॥
जर जर पे हिया भजन ना बने कछु
ठाढ़िन हूँ बिनु लाठि रामा।
लगत पड़ाइहु ते दिन भारी
तोहि बिनु परम सुजान रामा॥
बीतत चितत सोचत रतिया
जस तस होत बिहान रामा॥
इहं के समेया महोत्सव प्यारे
अब जनु गुड़िया के खेल रामा
खास निवास जहां तोर सियवर
आऊं तजि जग के समेल रामा॥
सेऊं मैं निसि दिन, सिय पद पंकज
लखि पिय परम निहाल रामा॥
'रूपकला' सिय किंकरि बिनवे
होहु पिय बेगि दयाल रामा॥

—रूपकलाजी

५

राम-काव्य का आधुनिक युग : रामचरित पर नवीन दृष्टि

पौराणिक काल और भक्ति युग ने राम और कृष्ण को भगवान के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित कर उन्हें इस देश की सामाजिक आत्मा में जिस रूप में अभिन्न कर दिया था और धर्म ग्लानि एवं असुरों के अत्याचार के समय जिस तरह उनके द्वारा रक्षा की मोहक कल्पना को मानसिक सन्तोष में बैठा दिया था—पौराणिक और भक्ति युग का वह विह्वल करने वाला भाव-प्रवाह देश की जनता में उमड़ता हुआ भी देश की पराधीनता देखकर अवरुद्ध था, अंग्रेजों की दमन नीति और धर्म की दृष्टि से इन म्लेच्छों का धर्म-प्राण देश पर शासन-अवतारवाद की समस्त भाव-धारा को गन्धर्व नगर की परिकल्पना बनाये हुए था। धर्म की हानि हो रही थी, देश गुलाम था, फिर भी भगवान अवतार नहीं ले रहे थे, भगवान राम की अयोध्या भगवान कृष्ण का गोकुल सभी हतप्रभ हैं, पर उस ज्योति का कोई पता नहीं है। इस परिस्थिति ने साहित्यिक बुद्धि और हृदय से पूर्ण जनचेतना को अतिमानवीय कल्पनाओं से हटाकर मानवीय विचारों की ओर उन्मुख किया।

ठीक इसी समय भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन में बालगंगाधर तिलक के क्रान्तिकारी विचारों ने जनता को भक्ति से कर्मयोग की ओर प्रेरित किया। हमारे राम और कृष्ण भक्त के भगवान ही नहीं, कर्मयोग के, जन्मभूमि को मुक्ति दिलाने वाले वीर पुरुष के वीर चरित के आदर्श बन गये। और बाल गंगाधर तिलक के बाद महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन, चरखा, खादी तथा कुटीरोद्योग ने राम और कृष्ण को किसानों और मजदूरों के बीच ला खड़ा किया।

राम और कृष्ण के इन आदर्शों की प्रतिष्ठा में केवल भावना और विचारों के मोड़ की ही जरूरत पड़ी। राम और कृष्ण की जो प्रतिष्ठा भक्तियुग ने यहां के जन-मानस में कर दी थी, वह तो पहले से ही स्थिर थी, उसे निकाला नहीं जा सकता था। हां, यही किया जा सकता था कि वनवास स्वीकार करने

वाले राम-सीता, गाधीजी का अहिंसा धर्म और कुटीर-उद्योग के गाधी बन सकते थे जैसा कि 'साकेत' मे श्री मैथिलीशरण गुप्त ने किया। इस प्रकार तत्कालीन महापुरुषो के गुणों और उत्कृष्ट कार्यो का आरोपण राम और कृष्ण के चरित्रो मे किया गया। मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में तो अनेक अंशो में महात्मा गाधी का ही गुणानुवाद है। गाधीजी के चरित्र और विचारों की छाप 'साकेत' काव्य मे है। और यह कहा जाय कि राम और गाधी के सम्बन्ध से नये कल्पित किसी राम का चरित्र ही 'साकेत' में है तो यह अत्युक्ति नही होगी। यद्यपि बहुत अंशों में 'साकेत' मे गुप्त जी भक्ति-विभोर भी हो रहे है। और उन्होंने राम को भगवान ही माना है। केवल महापुरुष और वीर ही नही।

राम के साथ-साथ उनकी कथा के अन्य अलौकिक चरित भी लौकिक आदर्शों के रूप मे प्रतिष्ठित किये गये और उनकी पौराणिक गाथाओ मे बहुत कुछ काट-छांट की गयी। रामकथा के साथ ऐसे अन्य चरितो—भरत, लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव, निषाद, शबरी, विभीषण-में भी आधुनिक युग के अनुरूप कोई न कोई आदर्श प्रतिष्ठित किया गया। गाधीजी के अछूतोद्धार आन्दोलन के फलस्वरूप शबरी और निषाद के साथ राम का व्यवहार विशेष आदर्श के रूप मे चित्रित किया जाने लगा। वानर और ऋक्ष, बन्दर भालू से हटकर मानव जाति के रूप में सामने आये।

नारी-जागरण का जो आन्दोलन शुरू हुआ, उसने कैकेयी की निन्दा को तिरोहित करने का प्रयत्न किया। वैसे गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरित मानस' मे कैकेयी द्वारा राम के लिए वर मागने की घटना को सरस्वती की प्रेरणा कहकर उस प्रवंचना का जन-भावना मे अमोघ परिष्कार कर दिया था। इस युग में कवियो और लेखको ने शुद्ध मानवीय स्तर पर उसे निर्दोष करने का प्रयत्न किया। केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' तथा अन्य लेखको की 'कैकेयी' सम्बन्धी रचनाएँ तो इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर लिखी गयी। इस दिशा में कैकेयी के पक्ष मे सर्वप्रथम अपने विचार श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने 'कवि और काव्य' के निबन्ध 'काव्य की लांछिता-कैकेयी' में सन् १९३६ मे प्रकट किए। रामकथा में नवीनता की खोज करने की धुन आरम्भ मे ही लेखको के मन पर सवार रही। रामचरित उपाध्याय के 'रामचरित चिन्तामणि' के प्रकाशन के साथ, उसमे रामकथा को राजनीति के माध्यम से प्रस्तुत देखकर रामकथा के आधार पर काव्यो में नये प्रयोग करने की रुचि कवियो में

स्वतः जागृत हुई। इस समय खड़ीबोली में जो कविता शुरू हुई दूसरी ओर से छायावाद की शैली का आरम्भ हुआ, उसने कवियों को नवीनता की खोज में बरबस प्रेरित कर दिया। जन मानस में हमारी कविता का क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी ओर कवियों का ध्यान कम रहा। साहित्य क्षेत्र में उनकी कृति की नवीनता की चर्चा उन्हें विशेष आकर्षित करती रही, चाहे वह नवीनता केवल कुछ समय के लिए हो। लोग इसकी ओर कौतुकता से उन्मुख हुए कि तुलसीदास और संस्कृत के वाल्मीकि ने राम-कथा में क्या कहने से छोड़ दिया है, उसे कह दिया जाय। इस सम्बन्ध में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला की बहुत चर्चा रही। पहली बार इस उपेक्षित चरित का जिक्र कवीन्द्र-रवीन्द्र ने अपने एक लेख में किया, जिसे देखकर मैथिलीशरण गुप्त ने इस पर एक काव्य लिखने की योजना बनायी; लेकिन बाद में वह काव्य पूरी रामकथा को देखकर लिखा गया, यद्यपि उसमें प्रधानता उर्मिला के चरित की ही रही। गुप्तजी के अतिरिक्त श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने केवल उर्मिला को लेकर ही 'उर्मिला' नाम से अपना बड़ा प्रबन्ध काव्य लिखा।

अधिकांश, तुलसीदास के 'रामचरितमानस' को ही अपने प्रबन्धों का आधार इन कवियों ने बनाकर कथा में नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। वैसे वाल्मीकि रामायण को जिन लोगों ने आधार बनाया उनमें डा० बल्देवप्रसाद मिश्र और नाटककार पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण तथा अन्य पुराणों को आधार बनाकर रामचरित पर सांगोपांग विशाल प्रबन्ध था चतुरसेन शास्त्री का उपन्यास 'वयं रक्षामः' है। ऐतिहासिक एवं विश्लेषण की दृष्टि से इतनी बड़ी और विद्वतापूर्ण रचना आधुनिक राम साहित्य में पहली बार आयी है। छोटी किन्तु मनोविश्लेषणात्मक शैली की रचनाएँ रामकथा की नवीनता की अद्यतन सीमा हैं। 'सीता की माँ,' 'आँजनेय,' 'संशय की एक रात' ऐसी-रचनाएँ हैं।

रामचरित में नवीन दृष्टिकोण इस युग की रामचरित सम्बन्धी रचनाओं में भी जमकर अंकित हुआ, विशेषतः लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'अशोकवन' एकांकी में। रामचरित में कथा के धरातल पर नवीन दृष्टि मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' से आरम्भ होती है लेकिन इसके सूत्रपात का समस्त श्रेय केवल गुप्तजी को नहीं है। हमें ऐसा समझना चाहिए कि गुप्तजी के काव्य में आकर रामकथा पर नवीन चिन्तन ने सर्वथा निखरा रूप धारण कर लिया लेकिन उसके सूत्रपात का श्रेय रामचरित उपाध्याय को है। उनके 'रामचरित-

चिन्तामणि' का प्रकाशन संवत् १९७० के आस पास हुआ। 'रामचरित-चिन्तामणि' ने रामकाव्य की जो परम्परा चलाई उसमे पौराणिकता और नवीन दृष्टि दोनो का सम्बन्ध है। बल्कि यो कहना चाहिए कि पौराणिकता के अस्तित्व को स्थिर रखते हुए नवीन चिन्तन की रेखाएं खीचो गयी हैं। रामचरित उपाध्याय के प्रबन्ध काव्य 'रामचरित चिन्तामणि' की यह काव्य परम्परा अभी तक चलती आ रही है। इसलिए खड़ी बोली के युग के आरम्भ मे पूर्वाग्रहगृहीत नवोन्मेषवाही रामकथा काव्यो की भी एक परम्परा है। उनका एक अलग वर्ग है। उन पर आरम्भ में ही विश्लेषण कर लेना उचित होगा।

पूर्वाग्रह समन्वित नवीन दृष्टि

रामचरित उपाध्याय

(जन्म संवत् १९२९)

खड़ी बोली मे रामकथा को लेकर सर्वप्रथम प्रबन्ध काव्य की रचना पं० रामचरित उपाध्याय ने की। आपका 'रामचरित चिन्तामणि' संवत् १९७० के आस पास प्रकाशित हुआ। इस प्रबन्ध काव्य मे कुल २५ सर्ग है। रामकथा के प्रमुख प्रसंगों को प्राजल भाषा तथा अपनी नयी शैली मे उपाध्यायजी ने प्रस्तुत किया है। काव्य-शास्त्र की कसौटी पर उपाध्यायजी की कविता खरी उतरती है। संवादों के प्रसंग विशेषतः द्रुतविलम्बित छन्द मे लिखे हैं और उनमे यमक अलंकार का प्रत्येक छन्द मे प्रयोग है। अंगद-रावण संवाद तो इस दृष्टि से सुन्दर है। दो उदाहरण देखिए—

कुशल से रहना यदि है तुम्हें,
दनुज ! तो फिर गर्व न कीजिए।
शरण में गिरिए रघुनाथ के,
निबल के बल केवल राम हैं ॥२८॥

+ + +

सुन कपे ! यम इन्द्र कुबेर की
न हिलती रसना मम सामने,
तदपि आज मुझे करना पड़ा
मनुज-सेवक से बकवाद भी ॥३८॥

(सर्ग १६)

उपाध्यायजी के प्रबन्ध-काव्य मे कवि का झुकाव काव्यत्व की ओर है, यद्यपि इस ग्रन्थ की रचना उन्होंने रामभक्ति से प्रभावित होकर ही की है पर यथास्थान रावण के वैभव की प्रशंसा कर उन्होने कवि-धर्म का पालन किया है। हनुमानजी सीता की खोज करने के बाद जब इन्द्रजित द्वारा पकड़े जाते हैं और रावण की सभा मे उपस्थित होते हैं, उस समय हनुमानजी का यह सोचना बहुत यथार्थ है—

> करने लगे विचार पवनसुत विस्मित मन में
> ये नृप लक्षण कहां मिलेंगे प्राकृत जन में।
> धन्य रीति है, धन्य नीति है, धन्य प्रभा है,
> इस रावण की धन्य शांति है, धन्य सभा है॥
>
> सर्ग १७-७।

यद्यपि काव्य मे कवि ने कोई नया दृष्टिकोण नहीं उपस्थित किया है तथापि विषय की प्राजलता और शैली की मौलिकता एव भाषा की सफाई, इस काव्य की अपनी विशेषताएं हैं।

श्री शिवरत्न शुक्ल 'सिरस'

सिरस जी ने रामभक्ति से प्रभावित होकर रामकथा पर दो काव्य लिखे है—'श्री राम तिलकोत्सव' और 'श्रीरामावतार'। 'रामावतार' छोटा सा ग्रन्थ है, जिसमे रामावतार की दार्शनिक विवेचना ही है। 'राम तिलकोत्सव' ३२ सर्गों का ग्रन्थ है जिसकी कथा राम के राज्याभिषेक से आरम्भ होती है और अनेक प्रसंगो की उद्भावना के साथ ३२ सर्ग तक जाती है। कवि ने वर्तमान युग मे उद्भूत अनेक राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनो को रामकथा और रामराज्य की नीति मे समेटना चाहा है, विश्व का समस्त भूगोल और वर्तमान आन्दोलनो को अपने काव्य मे उपस्थित कर रामकाव्य को इस दृष्टि से सर्वथा-पूर्ण करने की चेष्टा की है। २५वें सर्ग मे रामचन्द्रजी के व्योम-बिहार का वर्णन है, और उस व्योम-बिहार के माध्यम से विश्व के अनेक देशो की जानकारी कवि ने उपस्थित की है। इस प्रकार इस ग्रन्थ मे काव्य तो कम है, राम साहित्य की परम्परा का निर्वाह ही अधिक है। वैसे भी अनेक वर्णिक वृत्तो मे कवि ने अपनी कल्पनाएं निबद्ध की हैं, पर उनमे काव्यत्व नही आ सका है। वस्तुत: कवि का उद्देश्य रामभक्ति के प्रसार मे अपना भी एक कन्धा लगाकर कृतकृत्य होना है। ग्रन्थ की समाप्ति पर उसने जो कहा है उससे यही स्पष्ट होता है—

रघुवर यश चर्चा चित को शान्ति देती,
विषय विवल होने मोहादि भी मन्द होते।
शुचि मन, मति होके विज्ञता बोध लाती,
प्रभु गुण गण हैं मन्दार क्या न देते?

इस ग्रन्थ की रचना में 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' की स्पष्ट छाया है। छोटी सी कथा को आधार बनाकर बड़े प्रबन्ध की योजना और वर्णवृत्तों का प्रयोग। 'प्रियप्रवास' की वर्णवृत्त-शैली से हिन्दी के अनेक कवि प्रभावित हुए थे और उन्होंने वर्णिक वृत्तो मे काव्य की रचना शुरू की। सिरसजी का 'राम तिलकोत्सव' भी उसी शैली को नकल है।

यह प्रमुख प्रबन्ध काव्यो का परिचय हुआ। इनके अतिरिक्त भी कुछ प्रबन्ध काव्य ऐसे हैं जो राम भक्ति आन्दोलन से प्रभावित होकर वर्तमान युग में लिखे गये ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनो मे, किन्तु अप्रकाशित ही रह गये। इन प्रबन्ध काव्यों मे किसी कवि ने राम कथा को कोई नई दिशा नही दी हैं वल्कि रामकथा में पुराणो तथा अन्य ग्रन्थों से प्रसंगों को बढाकर नयापन मात्र लाने की कोशिश की है। केवल रामचरित उपाध्याय को छोड़कर शेष कवियों द्वारा संस्कृत कवियो और 'रामचरित मानस' की कल्पना का ही चर्वित चवर्ण हुआ है। रामचरित उपाध्याय ने यद्यपि रामकथा को कोई नई दिशा नहीं दी तथापि उनका ग्रन्थ शैली भाषा एवं विषय के प्रस्तुतीकरण मे सर्वथा मौलिक है।

'रामचरित चिन्तामणि' लिखकर श्री रामचरित उपाध्याय ने रामप्रबन्ध काव्य-परम्परा को एक स्वस्थ रूप प्रदान किया पर शिवरत्न शुक्ल 'सिरस' के 'रामतिलकोत्सव' ने उसे फिर विकृत कर दिया।

राधेश्याम कथावाचक

सबसे अधिक लोकप्रिय श्रव्य-काव्य आधुनिक युग मे लिखा गया राधेश्याम कथावाचक का 'रामायण' जिसे उन्ही के नाम पर 'राधेश्याम-रामायण' कहते हैं। तुलसीदास के 'रामचरित मानस' के बाद यह काव्य ही सर्वाधिक लोकप्रिय रामकथा काव्य है। इसकी जितनी उपादेयता श्रव्य के रूप में है उससे अधिक अभिनेय रूप मे है। रामलीला मे जहां तुलसीदास की चौपाइयों को गाकर व्यासजी अभिनेताओं को आगामी कथा और संवाद का संकेत देते हैं वहां अभिनेता अधिकांश राधेश्याम रामायण के संवादों का रंगभूमि पर पाठ किया करते हैं।

उत्कृष्ट मालूम पड़ता है। अतः इसकी सराहना की जायगी। एक उदाहरण लीजिए—

> *है सोच नहीं अब सीता का, दुख नहीं तुम्हारे जाने का।*
> *संकोच नहीं इस विपदा में अपने भी प्राण गंवाने का।*
> *कुछ चिन्ता है—तो यह है अब पकड़ी हैं बांह विभीषण की।*
> *हे भाई, उठकर पार करो—यह नौका रघुकुल के प्रण की॥*
> (मेघनाद शक्ति-प्रयोग लंकाकाण्ड—पृ० २४)।

राधेश्याम 'रामायण' की भाषा खड़ी बोली है, पर जहाँ-तहाँ उसमें बाजारूपन आ गया है और भाषा की एकरूपता अन्त तक निभ नहीं पाती। लेकिन इतना सब होने पर भी इस ग्रन्थ की हिन्दी के प्रति एक उपकार है, इसने हिन्दी के प्रचार में बड़ा सहयोग दिया है, इस दृष्टि से यह ग्रन्थ 'रामचरितमानस' के समान होड़ लेता है। पौराणिक जनरुचि को राष्ट्रीय-विचारों की परिधि में संस्कृत करने का काम भी इस रामायण में हुआ है। रामकथा पर इतनी लोकप्रिय रचना इसके बाद फिर न हो सकी।

श्री श्यामनारायण पांडेय

आधुनिक परम्परा में लक्ष्मण और हनुमान के चरित को लेकर हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री श्यामनारायण पांडे ने दो रचनाएं लिखी। लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध को लेकर 'तुमुल' काव्य और हनुमान के लंकादहन की पृष्ठभूमि पर 'जय हनुमान' काव्य। दोनों काव्यों की भाषा में ओज और प्रसाद गुण की विशिष्टता समान रूप में वर्तमान है जो इन काव्यों की ओर पाठक के हृदय और मस्तिष्क को सहज ही आकर्षित कर लेती है।

दोनों काव्यों का साहित्यिक परिचय इस प्रकार है—

तुमुल

प्रथम संस्करण 'त्रेता के दो वीर' नाम से हुआ था। दूसरा संस्करण १९४८ ई० में प्रकाशित हुआ जिसमें कवि ने कुछ परिवर्तन परिवर्द्धन करके इसका नाम 'तुमुल' रख दिया। 'तुमुल' में १९ छोटे-छोटे प्रकरण हैं। मात्रिक और वर्णिक दोनों छंदों का प्रयोग हुआ है। कथा का आरम्भ रावण के विषाद से होता है जहां उसका पुत्र मेघनाद जाकर उसे आश्वासन देता है और राम को पराजित करने की प्रतिज्ञा करता है और अन्त वहां है जहां लक्ष्मण मेघनाद को मार कर आते हैं और रामचन्द्र का पैर छूकर कृतकृत्य हो उठते

है। यद्यपि इस काव्य में भक्ति-भावना का मिश्रण तो अवश्य है पर कवि ने राक्षस और भगवान की भावना पर अधिक बल न देकर दो वीरों की वीरता, उनके उत्साह और अदम्य पौरुष को चित्रित करने का भरपूर प्रयत्न किया है।

काव्य में मेघनाद और लक्ष्मण दोनों वीरों के ओजस्वी किन्तु सौहार्दपूर्ण संलाप मार्मिक और सफल स्थान हैं—लक्ष्मण मेघनाद से कहते हैं—

तेरी छाती चरिडका केशरी-सी
लम्बी चौड़ी ज्ञात होती मुझे है।
मोटे लम्बे पुष्ट हैं बाहु तेरे
योधा होते ज्ञान हो देखने मे॥
तेरी कैसे क्या करूं मैं प्रशंसा
तूने तो है इन्द्र को भी हराया
तेरी होती शौर्य से है प्रतिष्ठा
ज्ञानी मानी विक्रमी मानवों में॥
याके आंखों से तुझे देख के तो
इच्छा होती युद्ध की ही नहीं है
कैसे तेरे साथ में मैं लडूंगा
कैसे वाणों से तुझे मैं हतूंगा॥

(१० वां प्रकरण पृ०-५४-५५)

इस पर मेघनाद का उत्तर सुनिए—

लावण्यधारी ब्रह्मचारी,
आप बुद्धि निधान हैं।
संसार में अत्यन्त वीर
पराक्रमी धृतिमान हैं॥
मैं मांगता हूं भीम रण का दान,
मुझको दीजिए।
चैतन्य होकर तुमुल संगर
आप मुझसे कीजिए॥ (प्रकरण १२ पृ० ६०)

इन संवादों से युद्ध की महत्ता बढ जाती है, मानव के भावों की पृष्ठभूमि निर्मल हो उठती है। 'रामचरितमानस' में रावण पक्ष के वीरों की वीरता को जो तिरस्कृत किया है उससे उन स्थलों में मानवता की भावना उद्वन-सू

होकर वीरता का अंकन करती है, 'तुमुल' मे यह बात नही है। दोनों चरितों को मानवीय पृष्ठभूमि पर उपस्थित करने का कवि का प्रयास प्रशंसनीय, निर्मल और उत्कृष्ट है।

ग्रन्थ के आदि और अन्त मे अथवा भक्तिभाव से काव्य के शास्त्रीय मंगलाचरण की परिपाटी पालन करने के लिए कवि ने रामभक्ति का जयनाद किया है—

गूंजा है धरातल से गगन तक
आपकी जय हो प्रभो !
जय आपकी, जय हो प्रभो !
जय आपकी, जय हो प्रभो ॥ प्रकरण १६, पृ० १३७ ।

इसी उपसंहार से काव्य को रामकथा साहित्य के नये मोड में नही रखा जा सकता। कवि ने प्रबन्ध की कल्पना वाल्मीकि और तुलसीदास दोनो के आधार पर की है। इन्ही भावनाओ और पृष्ठभूमियो पर रामकथा साहित्य की इसी परम्परा पर आपकी दूसरी प्रसिद्ध रचना है—

जय हनुमान

—जय हनुमान सात सर्गों का काव्य है। इसकी समस्त कथा वाल्मीकि रामायण सुन्दर काण्ड से ली गयी है। कही-कहीं सुन्दरकाण्ड के श्लोक ज्यो के त्यो अनूदित हो गये हैं। काव्य में मात्रिक छंदों का ही प्रयोग किया है। 'तुमुल' की अपेक्षा इसमे काव्यत्व की कमी है। हनुमान की लंका यात्रा, सीता को खोजकर उनसे संवाद लेना और फिर राक्षसो का संहार, रावण की सभा का दर्शन तथा अन्त मे लंका को जलाकर समुद्र मे कूदकर उस पार पहुंच कर राम के दर्शन से कृतकृत्य हनुमान के वीर कार्य का सरल और ओजस्वी शैली मे दर्शन ही 'जय हनुमान' की सफलता है। काव्यत्व की दृष्टि से यह काव्य 'तुमुल' से निम्न कोटि का है।

श्री गयाप्रसाद द्विवेदी 'प्रसाद'

१९६३ ई० मे प्रसाद जी ने 'नंदिग्राम' नाम से एक १८ सर्गो का प्रबन्ध-काव्य रामकथा पर लिखा। इसमें भरत का चरित्र विस्तार के साथ गाया गया है। इसमें नये विचार तथा भावोन्मेष तो नहीं है किन्तु संस्कृत-काव्य की प्राचीन परम्परा मे अनुप्राणित तथा अनुरंजित है। प्रसादजी संस्कृत के विद्वान तथा अध्ययनशील व्यक्ति हैं। 'श्रीमद्‌भागवत' 'वाल्मीकि रामायण', 'महाभारत', संस्कृत के दूसरे आर्ष-ग्रन्थों का छायानुवाद 'नंदिग्राम' में है। एवं

तुलसीदास की कविता का भी यथेष्ट प्रभाव इस दिशा में है। भागवत के टीकाकार का यह श्लोक—

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्
यत्कृपा ताहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ।

नंदिग्राम में स्वाभाविकता के साथ अनूदित हुआ है—

मतिमूढ़ ज्ञान गति गहें, मूक घ्रुतिगायें।
नभ चुम्बित हिमगिरि शिखर, पंगु चढ़ जायें ।।

आज की राष्ट्रीय भावना भी काव्य में मुखरित हुई है। सातवें सर्ग में लवणासुर के अन्दर युद्ध अभियान और विजय-यात्रा का ओजस्वी प्रसंग तथा ध्वजगीत—आज की पृष्ठभूमि में कवि की सूझ-बूझ है—

शुभ कामना प्रजा की है साथ में हमारे।
यह राष्ट्र की पताका है हाथ में हमारे ।।
झुकने इसे न देंगे है देह प्राण जब तक,
ध्रुव-सा अटल रहेगा गुण गान मान तब तक।
यह विश्व में विजयिनी राष्ट्र ध्वजा हमारी।
तन-मन करे समुन्नत दे शान्ति-सिद्धि सारी।
इसके लिए जिएं हम, इसके लिए मरें हम,
सर्वस्व भी निछावर इसके लिए करें हम।

पृ० १२६

काव्य के प्रबन्ध में मौलिकता नहीं आ सकी है। चरित्रों में कोई नयी दिशा या अपने में पूर्णता भी नहीं है, हाँ, विषयों का समावेश, विविध छंदों का प्रयोग-विस्तार कवि की शक्ति के परिचायक हैं। जिस भक्ति-भावना में रामचरित मानस और उसका परवर्ती राम-साहित्य लिखा गया उसी को अपने कृतित्व में उतार कर कवि आत्म-तुष्टि लेना चाहता है। देखिए—

दिन एक रहो अवधि अवध-राम न आये
क्या जान कुटिल-क्रूर मुझे नाथ भुलाये।
अब भी न गया प्राण रहा श्वास-पवन जो,
धिक्कार सहस्र बार जनम-जीवन-धन तो ।। पृ० २२।

ये पंक्तियाँ तुलसीदास से अनुप्रेरित हैं—

रहा एक दिन अवधि अधारा
+ + +
कारन कवन नाथ नहिं आये
जानि कुटिल प्रभु मोहि बिसराये।

और फिर प्रभु का यह गुण गान कवि ने स्वयं भी प्रकट कर देता है—

मिट आसुरी सत्ता गयी नर-लोक से,
जग हो गया जगमग सु दिव्यालोक से।
निर्भय हुए सुर-संत प्रभु के राज्य में,
छाया अखिल आनंद जीव समाज में। —पृ० २६३।

तुलसीदास द्वारा निरूपित भक्ति के सन्दर्भ में लिखा गया यह काव्य प्राचीनता नवीनता का ही मिश्रण है। अवसर प्राप्त प्रसंगों में भरत के चरित्र की विशेषता भी स्पष्ट नहीं हो सकी है जोकि आवश्यक थी। वर्णनात्मकता से काव्य हल्का हो गया है। अलंकार हैं पर रस और भाव नहीं। भरत के चरित्र को घट-बढ़ करने के अतिरिक्त कवि और मार्मिकता नहीं ला सका है, देखिये—

सुनकर कहा गुरु ने मुदित मन—
धन्य भरत सुजान।
हैं राम जीवन मूल तव
तुम राम के प्रिय प्राण।
+ + +
कुछ दे सकी माया न तुमको,
व्याधियाँ जग-जन्य।
हे भरत! तुमसे हो गया।
रघुकुल कमल-वन धन्य।

यह भी खेद का विषय है कि यद्यपि कवि संस्कृत का विद्वान है लेकिन संस्कृत साहित्य मे आयी सामग्री का सही उपयोग इस काव्य मे नही किया गया है। उदाहरणार्थ वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड मे वाल्मीकि का आश्रम गंगा के दक्षिण तट पर स्थित तमसा नदी के तट पर कहा गया है और नंदिग्राम के कवि आजमगढ के तट पर कहता है जो सर्वथा गलत है।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य रचनाओं की भी चर्चा इस धारा के अंतर्गत की जा सकती है। ये रचनाएं रामकथा को लेकर लिखी गयी हैं पर इनमें काव्य का उचित मापदण्ड उसकी कसौटी का सर्वथा अभाव है जैसे गोकुलचन्द्र शर्मा का 'अशोकवन', राजाराम श्रीवास्तव का 'लक्ष्मण शक्ति' काव्य।

सर्वथा नवीन दृष्टि

इस वर्ग की रचनाएं ही इस युग की रामचरित-सम्बन्धी गति विधि रचनाएं हैं, जिनकी विशेषता के सम्बन्ध में ऊपर उल्लेख किया गया है। इन रचनाओं ने रामकथा को एक नये प्रकाश और नये युगीन-चिन्तन में लोक के सम्मुख प्रस्तुत किया।

इस वर्ग में लिखी गयी रामचरित सम्बन्धी रचनाओं की मुख्य विशेषताएं ये हैं—

१-गांधीजी के राजनीतिक-आन्दोलन को रामचरित के माध्यम से प्रकट करने की भावना जिसमें अछूतोद्धार का प्रसंग भी प्रमुख रूप से सामने आया।

२-राम को भगवान और वीर पुरुष के अतिरिक्त राजनीतिक और सामाजिक नेता का रूप देना।

३-तुलसीदास के रामचरितमानस तथा संस्कृत के अन्य कवियों की रामचरित सम्बन्धी रचनाओं को लांघकर वाल्मीकि रामायण को अपनी कृतियों का आधार बनाने की चेतना।

४-उर्मिला, कैकेयी, शबरी जैसे पात्रों का रचना का मुख्य विषय बनाने की उत्सुकता।

५-इस युग की मानवीय पृष्ठभूमि पर राम और उनकी कथा को देखने की प्रवृत्ति।

रामकथा में इस नए मोड़ का आरम्भ सर्वप्रथम श्री मैथिलीशरण गुप्त की काव्य रचना 'साकेत' से होता है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त
(जन्म संवत् १९४३-२०२१)

श्री मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' १२ सर्गों का एक वृहत् काव्य है। जैसा कि पहले कहा गया है कि इसका प्रधान विषय उर्मिला के विरह की कथा ही

थी, किन्तु उसी पृष्ठभूमि पर पूरी रामकथा को कह जाने का प्रयास गुप्त जी ने किया है। अपने प्रबन्ध मे एक साथ दो कथाओ के अन्वय का प्रयास गुप्त जी ने किया है—लक्ष्मण और उर्मिला के संयोग और लम्बे वियोग की कहानी, तथा राम के विवाह, वनवास तथा रावण-विजय की गाथा। घटनाएँ केवल साकेत और चित्रकूट मे ही घटती हैं। इस प्रकार एक कहानी और एक पूरी गाथा दोनों को अन्वित कर 'साकेत' मे उपस्थित किया गया है। पहले से आठवें सर्ग तक राम राज्याभिषेक से लेकर चित्रकूट मे राम-भरत मिलन की कहानी है। नवें और दसवें सर्ग मे उर्मिला के विरह का वर्णन है। ये दोनों सर्ग काव्यकला की दृष्टि से मार्मिक है। पुनः ग्यारहवें सर्ग मे मात्र कथा ही कही गई है। ग्यारहवें सर्ग मे संजीवनी का पहाड लेकर आते हुए हनुमान का 'साकेत' के ऊपर उडना और राक्षस के भ्रम मे हनुमान का बाण से घायल होकर गिर पडना, तुलसीदास के 'रामचरितमानस' की ही अविकल कल्पना है, वाल्मीकि रामायण मे भी हनुमान संजीवनी पहाड लाकर जाते है पर न वे अयोध्या के ऊपर से लौटते है और न भरत के बाण से आहत होकर गिरते ही हैं।

यह कल्पना 'साकेत' मे थोडी और भी भद्दी हो गयी है, जब हनुमान वहाँ भरत के सामने रुक कर राम-रावण संघर्ष की पूरी कहानी कहने लगते हैं। एक ओर तो लक्ष्मण की प्राण-रक्षा का प्रश्न है, शीघ्र से शीघ्र हनुमानजी को पहुँचना चाहिए, दूसरी ओर भरत उन्हे रोक कर पूरी कहानी सुनने लगते है।

हनुमानजी चले जाते हैं। फिर अयोध्या मे यह समाचार फैलता है और सेना सजने लगती है, लंका पर चढाई करने के लिए। और शायद जब तक पहुँचेगी वहाँ युद्ध भी समाप्त हो जायगा। यहाँ यह प्रसंग 'साकेत' में बहुत ही अस्वाभाविक बन पडा है। तुलसीदास के 'रामचरितमानस' मे यह घटना केवल भरत और हनुमान तक ही सीमित रहती है, कौतूहल और आश्चर्य कथा के प्रवाह में आ जाता है, किसी प्रकार भी अस्वाभाविकता नही आने पाती, लेकिन 'साकेत' में इस कल्पना को विरूप कर दिया गया है।

पुनः बारहवें सर्ग मे शेष कथा है। राम रावण को विजय कर लौट आते है, लक्ष्मण और उर्मिला फिर मिलते हैं, कवि के काव्य का लक्ष्य पूरा होता है। अयोध्या मे उल्लास छा जाता है।

'साकेत' की बहुत बड़ी विशेषता है उर्मिला विषय की अपेक्षा को समाप्त कर उसके चरित की महिमा को अंकित करना, तथा साथ ही 'साकेत' की बहुत बड़ी कमी है, राम के विराट गौरव को रावण विजय की अतुलनीय गाथा को मूर्तिमान करने में सर्वथा अक्षम रहना। 'साकेत' की नवीनता है रामकथा के माध्यम से गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन, कुटीरोद्योग, विश्वबन्धुत्व तथा वर्तमान युग के प्रजातन्त्र-शासन की अभिव्यक्ति।

इस प्रकार कुल मिलाकर 'साकेत' रामकथा का नवीनीकरण है। उसमे काव्य का कौशल भी है, पौराणिक अतिशयोक्ति की कहानी भी है, राजनीतिक प्रचारवाद भी है। राजनीतिक प्रचारवाद मे जहाँ-तहाँ काव्य केवल तुकबन्दी बनकर ही रहा है—

प्रस्थान वन की ओर।
या लोक मन की ओर।
होकर न धन की ओर।
हैं राम जानकी ओर। (सर्ग ४, पृ० १०६)।

नवीनता मे बढकर कवि ने जहाँ-तहाँ पौराणिक मर्यादा को भूलकर पात्रो से अनुचित भाषा और भाव का प्रयोग करवाया है। देखिये वाक्य—

"कैकयी चिल्ला उठी सोन्माद—
सब करें मेरा महा अपवाद
किन्तु उठ ओ भरत, मेरा प्यार,
चाहता है एक तेरा प्यार।
राज्यकर उठ वत्स! मेरे बाल,
मैं नरक भोगूं भले चिरकाल।

(सर्ग ७ पृ० १७६)

कैकेयी का सोन्माद चिल्लाना और उस उन्माद में भरत को मेरा प्यार कहकर भावुक होना, उस समय अयोध्या की राजनीति की सूत्रधार कैकेयी के लिए कहाँ तक संगत है। 'मेरा प्यार' शब्द तो बिल्कुल सिनेमा की बोली है।

इस प्रकार जहाँ-तहाँ तुलसीदास की भाव-कल्पना को अविकल अपना लेना कवि की काव्य-प्रतिभा की कमी का प्रमाण है—

जुड़ आयी थीं वहाँ नारियाँ ग्राम की,
वे साधक हो सिद्ध हुईं, विश्राम की।
सीता सबसे प्रेमभावपूर्वक मिलीं,
लतिकाओं में कुसुमकली सी वे खिलीं।
शुभे, तुम्हारे कौन उभय ये श्रेष्ठ हैं?
गोरे देवर, श्याम उन्हीं के ज्येष्ठ हैं।
वैदेही यह सरल भाव में कह गईं,
तब भी वे कुछ तरल हंसी हंस रह गईं।

(सर्ग ५, पृ० १३१)।

इसमें अंतिम पंक्ति—'वे कुछ तरल हंसी हंस रह गईं।' समस्त उसी उक्ति को ओछा कर देती हैं।

इस काव्य की लोकप्रियता के पीछे गांधीजी के सत्याग्रह, कुटीरोद्योग तथा रामराज्य की अभिव्यक्ति है, जिसे युग के अनुरूप रामकथा में देखकर जनता ने पसंद किया। और कला पक्ष की ओर से कल्पना तथा भावों का अनुष्ठान और भाषा का प्रसाद गुण काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। आधुनिक युग के राम काव्यों में 'साकेत' का ही प्रचार हुआ है, जनता इसे ही अधिक जानती है।

खड़ी बोली में इसके अनन्तर और भी काव्य लिखे गये। आलोचकों की दृष्टि में काव्य का स्तर और ऊँचा उठा। यद्यपि बीच-बीच में अनेक समीक्षकों ने 'साकेत' के भीतर 'रामचरित मानस' की संपूर्ण गरिमा देखी है लेकिन सर्वथा इसका अनुमोदन नहीं हो सका।

पंचवटी

गुप्तजी की रामचरित पर दूसरी रचना है—'पंचवटी'। पंचवटी में कुल १२८ छंद हैं जिसमें लक्ष्मण के तपोनिष्ठ जीवन की महत्ता आंकना ही कवि का लक्ष्य है। काम-लोलुप राक्षस-युवती शूर्पणखा का उद्धत प्रतिकार भाई राम का प्रहरी बनना, कठोर संयम और आचरण की उत्तप्त तप-मूर्ति *लक्ष्मण का उज्ज्वल चरित्र इस लघु काव्य में गुप्तजी ने अंकित कर दिया है।* लेकिन वर्णनात्मक कौशल तथा विचारों का ही अधिक इस काव्य में है। भाषा प्रसादपूर्ण है—लक्ष्मण का यह शब्दचित्र देखिए—

पंचवटी की छाया में है
सुन्दर पर्णकुटीर बना।

उसके सम्मुख स्वच्छ शिलापर
धीर वीर निर्भीक मना।
जाग रहा यह कौन धनुर्धर
जबकि भुवन भर सोता है।
भोगी कुसुमायुध योगी-सा
बना दृष्टिगत होता है। पंचवटी छंद २।

प्रदक्षिणा

इसके बाद संवत् २००७ में गुप्तजी ने रामकथा पर एक तीसरा काव्य लिखा—प्रदक्षिणा। प्रदक्षिणा एक तरह से रामकथा की, संक्षिप्त सूची है जो काव्य रूप में, प्रस्तुत की गई है। राम के जन्म से लेकर रावण-विजय तक की कथा को काव्य के रूप में, भाव तथा अलंकार से रंजित भाषा में ३०१ चौपायी मे गाया गया है। साकेत तथा पंचवटी में काव्यगत जो विशेषताएँ हैं वे जहाँ-तहाँ इसमे भी प्रस्फुटित और समुल्लसित हैं।

'सारंगा-सदाव्रज' अथवा 'ढोला मारू' जैसी गाथाएँ जो एक बैठक मे समाप्त की जा सकती हैं वैसे ही एक बैठक में समाप्त होने वाली रामकथा गुप्त जी ने लिखकर आधुनिक हिन्दी मे एक नयी 'टेक्नीक' प्रस्तुत की है। वैसे हम इसे वाल्मीकि रामायण के प्रथम सर्ग मूल रामायण की अनुकृति रचना कहेंगे। इसका आरम्भ मंगलमय प्रणाम से तथा अंत साधुवाद से हुआ है, जो प्रायः कथा कहने की परिपाटी है—

एकाकी रह सका न जिनका
मातृ गर्भ में भी अनुराग,
अनुज-हेतु अवकाश वहाँ भी
देकर दमका जिनका त्याग।
स्वयं राम ने चन्द्र छोड़कर
जोड़ा जिनका लक्ष्मण नाम,
उन सौमित्रि इन्द्र जेता
दृढ़ चेता को प्रथम प्रणाम॥

(आरम्भ पृ० ६)

\+ \+ \+

रक्षक मात्र रहे वे राजा
राज्य प्रजा ने ही भोगा
हुआ यहाँ तब जो जन-रंजन
वह क्व और कहाँ होगा ?

(अंत पृ० ७६)

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"

गुप्त जी के बाद रामचरित के दो प्रसंगों की सशक्त अभिव्यक्ति–'निराला' ने अपने लघुकाव्य 'राम की शक्ति पूजा' और लम्बी कविता 'पंचवटी प्रसंग' में की ।

राम की शक्ति-पूजा

'राम की शक्ति पूजा' की रचना सन् १९३६ ई० में हुई थी। इस लघु-काव्य की मूल कथा राम-रावण के महासमर का वह समय है जब राम युद्ध में जय से निराश होकर वानरवाहिनी में घिरे चिन्ताकुल हो गये और फिर उन्होंने महाशक्ति की आराधना की तथा उनसे विजय का वरदान प्राप्त किया। पूरी कविता अत्यन्त संवेदनापूर्ण काव्य की उत्कृष्ट अभिव्यक्तियों से ओतप्रोत, रसात्मक तथा मर्म को हिला देने वाली है। अर्थों के अनुसार शब्द का चयन उनकी कला का चूडान्त निदर्शन है और इन्हीं सब कारणों से कथा केवल पौराणिक नहीं रहती, संवेदना और तपश्चर्या के बीच मनुष्य की अपनी आत्मशक्ति को अर्जित कर शक्तिमान बनने की, विराट बनने की एक साकार घटना को कवि स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत करता है। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण यह लघुकाव्य खड़ी बोली में लिखे विशाल प्रबंधों से टक्कर लेता है और उनसे कम महत्व नहीं रखता। आरम्भ की १८ पंक्तियों में युद्ध का जो शब्द चित्र खींचा गया है वह इतना मूर्तिमान है कि हम पढ़ते हुए समर का प्रत्यक्ष दर्शन करने लगते हैं—

रवि हुआ अस्त, ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
आज का, तीक्ष्ण-शर विधृत क्षिप्र कर वेग-प्रखर
शत-शैल सम्वरण-शील, नील-नभ गर्जित-स्वर
प्रतिपल परिवर्तित व्यूह-भेद-कौशल-समूह
राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह-क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह ।

\+ \+ \+

लौटे युग दल। राक्षस-पद-तल पृथ्वी टल मल,
बिंध महोल्लास से बार बार आकाश निकल

इसके बाद समर से श्रान्त राम की संवेदना का चित्र खींचता हुआ कवि उस महायुद्ध की भूमिका मे क्या प्रतीत हुआ है, वह स्वाभाविक ढङ्ग मे कहा जाता है—

है अमा निशा, उगलता गगन घन अन्धकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-चार,
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल।
स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा, फिर फिर संशय,
रह रह उठता जग जीवन में रावण जय-भय।

\+ + +

ऐसे क्षण में अन्धकार घन में जैसे विद्युत—
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छबि, अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का-प्रथम स्नेह का लतान्तराल-मिलन।

\+ + +

ज्योति-प्रपात स्वर्गीय- ज्ञात छवि प्रथम स्वीय—
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।

आगे कवि ने इस समर-चिन्ता के बाद समर विजय के प्रसंग मे दो प्रसग को मूर्तिमान कर अपनी कविता का उपसंहार किया है। हनुमान और राम से सम्बन्धित प्रसंग वस्तुतः शक्ति सम्प्रदाय की भावनाओ से अनुप्रेरित हैं और जहाँ तक निश्चित है कि 'कालिका पुराण' इनका आधार है। रामकथा मे इन कथा-प्रसंगो की उद्भावना का रूप निरालाजी को बंगाल से ही प्राप्त हुआ।

पहला प्रसंग है। एकादश रुद्र हनुमान का राम के चरण दबाते समय अमर्ष में रावण द्वारा पूजित शिव-शक्ति के उस विराट् रूप को निगलने का उपक्रम जो सारे आकाश और समुद्र को घेरता चला आ रहा था। शिव हनुमान के इस उद्धतपन को देखकर शक्ति से कहते हैं—

सम्वरो, देवि, निज तेज, नहीं वानर
यह नहीं हुआ शृङ्गार युग्म-गत महावीर,

अनुरूप परतन्त्र भारत को स्वतन्त्र होने के लिए अपनी आत्मशक्ति को जगाने का उद्बोधन करता है।

निरालाजी का यह काव्य न तो वाल्मीकि का और न तुलसीदास का किसी का उपजीवी नहीं है, यह इसकी एक अन्य विशेषता है, जबकि खड़ी-बोली में भी लिखे गये राम-काव्य तुलसीदास या फिर वाल्मीकि की सरणि से अनुगमन अवश्य करते हैं।

'रामचरित' पर निराला जी की दूसरी रचना है। यह कविता निराला जी के 'परिमल' में संगृहीत है। 'परिमल' का प्रथम प्रकाशन संवत् १९८६ वि० में हुआ।

पंचवटी प्रसंग—

प्रस्तुत कविता नाटकीय संवाद के रूप मे है, इसमे पाँच दृश्य अथवा मोड़ है और कविता अतुकान्त किन्तु लय युक्त है। रामचरित की कथा में पंचवटी की घटनाएँ इतनी महत्वपूर्ण है कि वे राम कथा को सहसा इसकी ओर मोड़ देती है। 'पंचवटी' में राम ने कई वर्षो तक निवास किया, अयोध्या के राजकुमार और उनकी वधू के दिन जिस भूमि मे बीते उसकी महिमा की ओर आकर्षित होना, और जहाँ शूर्पणखा के कान-नाक काटने से राम-रावण के तुमुल संघर्ष का आरम्भ हुआ, उसका महत्व अंकित करना कवियो के लिए सहज बात थी, जो रामचरित को अब नयीदृष्टि से देख रहे थे। 'पंचवटी' मे वीर लक्ष्मण, के तपस्या के दिन बीते है। राम-सीता ने वनभूमि को राज-भवन का गौरव दिया है वस्तुतः इन्ही दोनों विशेषताओ की ओर गुप्त जी ने भी 'पंचवटी' में निर्देश किया है। निरालाजी ने संक्षिप्त किन्तु गहरी अभिव्यक्ति मे इन्ही भावों को एक बडी कविता मे प्रकट किया है और अर्थ तथा भाव की दृष्टि से यह कविता गुप्तजी के 'पंचवटी' काव्य से होड़ लेती है।

'पंचवटी' प्रसंग मे पाच प्रसंग हैं—(१) सीता का वनभूमि में राजभवन से अधिक आनन्द मनाना। (२) लक्ष्मण का सीता को माता के रूप मे, शक्ति के रूप मे मानकर सेवा मे दत्तचित होना। (३) शूर्पणखा का रूप शृङ्गार (४) राम का लक्ष्मण और सीता को ज्ञान तथा भक्ति का उप-देश देना। (५) शूर्पणखा की काम-वासना-जन्य उच्छृङ्खलता तथा नाक-कान काटना।

निराला जी ने इन प्रसंगो की नाटकीय तथा आकर्षक ढंग से उपस्थित

किया है। सीता तथा राम दोनों वन-भूमि के निवास की प्रशंसा करते हैं और अपना पूर्ण सन्तोष व्यक्त करते हैं—

> और कहाँ सुनती मैं
> सुखद समीरण में विहग कल कूजत ध्वनि—
> पत्रों के मर्मर में मधुर गन्धर्व गान ?
> और कहाँ पीती मैं श्री मुख की अमृत कथा ?
> और कहाँ पाती मैं
> विमल विवेक-ज्ञान-भक्ति-दीप्ति
> आश्रम तपोवन छोड़ ?
>
> (पृ० २१६)

राम का कहना है—

> छोटे-से घर की लघु-सीमा में
> बंधे हैं क्षुद्र भाव,
> यह सच है प्रिये।
> प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
> सदा ही निःसीम भूपर।
>
> (पृ० २१६)

पंचवटी प्रसंग में यह बात बहुत स्पष्ट हो गयी है कि निराला जी शाक्त मत से प्रभावित हैं। राम की शक्ति पूजा में राम के माध्यम से शक्ति के प्रति जो अनन्य श्रद्धा निराला जी ने प्रकट की है, वही इस छोटी सी कविता में लक्ष्मण के माध्यम से प्रकट हुई है। लक्ष्मण, सीता, राम की पूजा के लिए फूल चुनते हुए कहते हैं—

> जीवन का एक ही अवलम्ब है सेवा
> है माता का आदेश यही
> मां की प्रीति के लिए ही चुनता हूँ सुमन दल;
> \+ \+ \+
> जिनके कटाक्ष से करोड़ों शिव विष्णु अज
> कोटि-कोटि सूर्य-चन्द्र-तारा ग्रह
> कोटि इन्द्र सुरासुर
> जड़ चेतन मिले हुए जीव-जग
> बनते-मिटते हैं-नष्ट होते हैं अन्त में—

मारे ब्रह्माण्ड के मूल में जो विराजती हैं
आदि शक्ति रूपिणी
शक्ति से जिनकी शक्ति शालियों में सत्ता है,
माता हैं मेरी वे
+ + + +
माता की तृप्ति पर
बलि हो शरीर-मन
मेरा सर्वस्व सार,

(पृ० २२४-२२५)

राम ने ज्ञान-भक्ति की चर्चा करते हुए योग और हठयोग की ओर भी संकेत किया है—

क्रम क्रम से देखता है
सबके ही भीतर वह
सूर्य चन्द्र ग्रह तारे
और अनगिनत ब्रह्माण्ड भाण्ड।

(पृ० २३३)

शूर्पणखा की काम भावना का चित्रण वैदिक युग की ओर संकेत करता है जब नारी अपने काम के लिए आज की अपेक्षा बहुत कुछ उन्मुक्त थी। निराला जी द्वारा शूर्पणखा का पश्चात्ताप वर्णन देखिए—

निरखकर मनोहर श्याम काम कमनीय देह
सोचा था मैंने
तू काम कला कोविद
जन रसिक अवश्य होगा।
मैं क्या जानती थी
यह राम की नहीं है
किन्तु विष की है श्यामता
कूट-कूट कर इसमें
भरा है हलाहल घोर ?

(पृ० २४७)

शूर्पणखा के नाक-कान काटने का वर्णन साभिप्राय नहीं हो पाया है, कविता के इस प्रसंग को पढ़ते हुए जिसमें राम ने लक्ष्मण को नाक-काटने का

संकेत किया है ऐसा प्रतीत होता है कवि भावों को ठीक पकड़ नहीं कर सका है।

इस छोटी सी कविता मे सीता का निर्मल चरित्र राम की धीरता, गम्भीरता, वन-निवास की पवित्रता तथा उसका निर्मल आनन्द, लक्ष्मण का संयम, भ्रातृ-प्रेम तथा भाभी में मातृ-भाव एवं रामकथा मे पंचवटी की महत्ता-संक्षिप्त किन्तु तीव्रता से हमारे सामने नाच-जाती है।

श्री जयशंकर 'प्रसाद'

रामचन्द्र के चित्रकूट निवास के प्रसंग को लेकर प्रसाद जी ने भी 'चित्रकूट' नाम से एक लम्बी कविता लिखी है जो उनके 'कानन-कुसुम' के दूसरे संस्करण में संकलित है। इस कविता के तीन भाग हैं-एक भाग में रामसीता के चित्रकूट निवास में वन के आनन्द और जीवन के संतोष की झांकी है, दूसरे भाग मे सेना-सहित भरत के आगमन का समाचार पाकर लक्ष्मण के रोष का प्रसंग है और तीसरा भाग कविता का उपसंहार है जहा लक्ष्मण के अनुमान के विपरीत भरत आकर राम के चरणों पर गिर पड़ते हैं और करुण तथा अनुराग मे सम्पन्न वातावरण भर उठता है।

कविता की भाषा बहुत प्रांजल नही है। यह कविता प्रसादजी की प्रारम्भिक कविताओं में से है। किन्तु भावों की गहरी पैठ कविता में विद्यमान है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। राम-सीता के श्रृंगार का खुला-वर्णन भी इस कविता में है।

राम सीता इस वन मे राज भवन से अधिक सुखी हैं—

मधुर-मधुर आलाप करते ही प्रिय गोद में
मिटा सकल संताप वैदेही सोने लगीं,
पुलकित तनु थे राम देख जानकी की दशा
सुमन स्पर्श अभिराम सुख देता किसको नहीं ?

(का० कु० पृष्ठ १०३)।

दोनों के हास-परिहास की भी एक झांकी देखिए—

'स्वर्गंगा का कमल मिला कैसे कानन को ?
'नील मधुप को देख वहीं पर कंज कली ने
स्वयं आगमन किया' कहा यह जनक लली ने। (वही, पृ० १०४)

भरत और राम के मिलन का संक्षिप्त चित्र खींचते हुए कविता का उपसंहार किया गया है—

> भरत इसी क्षण पहुँचे, दौड़ समीप में
> बढ़ा प्रकाश सुभ्रातृ स्नेह के दीप में ।
> चरण स्पर्श के लिये भरत भुज ज्यों बढ़े
> राम-बाहु गल-बीच बड़े सुख से मढ़े ।
> अहा विमल स्वर्गीय भाव फिर आ गया
> नील कमल मकरन्द बिन्दु से छा गया ।
>
> (वही, पृ० १०६)

प्रसाद जी की इस कविता में छायावादी शैली छू भी नहीं गई है। कविता प्रारम्भ की है। चित्रकूट के मार्मिक प्रसंग पर रीझकर कवि ने उस प्रसंग को अपनी कविता का विषय बनाया है। इस कविता की परम्परागत रामकथा से नवीनता यह है कि इसमें राम मानवीय पृष्ठभूमि पर अंकित किये गये हैं। मानव-सहज राम-सीता का अनुराग तथा लक्ष्मण का रोष, और भरत का समर्पण इस कविता में एक नयी प्रवृत्ति थी।

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

'हरिऔध' जी को खड़ीबोली में प्रथम, महाकाव्य लिखने का गौरव प्राप्त है। इनका 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य संवत् १९७१ मे प्रकाशित हुआ था जिसमे गोकुलवासियो को कृष्ण वियोग की कथा विविध प्रसगो की उद्‌भावना करके गायी गयी है। संस्कृत के भिन्न तुकान्त वर्णिक वृतों तथा संस्कृत शब्दों से युक्त पदावली मे इसकी रचना हुई है। हरिऔधजी ने आरम्भ से ही दो प्रकार की भाषाओ के लिखने का कौशल प्रकट किया है-ठेठ हिन्दी तथा संस्कृत गर्भित हिन्दी। इन्होंने 'प्रिय-प्रवास' के लिखने के वर्षो बाद संवत् १९९६ में 'वैदेही वनवास' नाम से दूसरा महाकाव्य पूरा किया, जिसकी सभी विशेषताएं 'प्रिय प्रवास' के विपरीत थीं। 'वैदेही वनवास' रामकथा के उत्तरार्द्ध पर लिखा गया है, जिसमे लोकप्रिय सम्राट राम द्वारा सीता को निर्वासित किए जाने की कथा है। 'वैदेही वनवास' की भाषा यथा संभव ठेठ हिन्दी रखी गयी है। छन्द सभी मात्रिक तथा तुकान्त हैं।

'वैदेही वनवास' में कुल १८ सर्ग हैं। जिसमें सातवें सर्ग तक केवल वैदेही के निर्वासित करने का ही कथानक चलता रहता है। आगे वाल्मीकि

आश्रम में लवकुश के जन्म तथा संस्कार, लवणासुर के मधुपुर को विजय करने के बाद शत्रुघ्न का उस आश्रम में सीता से भेंट और सीता का प्राण-त्याग कर दिव्य लोक को प्रस्थान। सभी सर्गों की घटनाएं सीता के माध्यम या प्रसंग पर आधारित हैं, यों अवान्तर चर्चा भी उनमें आयी है। जैसे राम की सेना द्वारा गन्धर्वों के विनाश की चर्चा।

राम का यह उत्तर चरित, जिसमें उन्होंने सीता के चरित पर अयोध्या के किसी धोबी द्वारा संदेह प्रकट किये जाने के कारण, सीता को राजभवन से निर्वासित करने का निश्चय किया, एक कठोर आदर्श का प्रेरक, मर्मस्पर्शी एवं हृदय विदारक रहा है। इस प्रसंग को लेकर कालिदास तथा भवभूति ने जो कुछ संस्कृत साहित्य में लिखा है, वह भारतीय साहित्य की चिरस्मरणीय विभूतियों में से हैं। तुलसीदास के बाद कुछ अन्य कवियों ने राम के अश्वमेघ का प्रसंग लेकर 'रामाश्वमेघ' या अन्य नाम से रचनाएं लिखी हैं पर वे राम की भक्तिभावना से इतनी ओत-प्रोत हैं कि मूल कथा की सहजता उनमें सर्वथा तिरोहित हो उठती है। हमें यह कहते संकोच नहीं होता कि 'हरिऔध' जी का 'वैदेही वनवास' भी नए विचारों के भ्रम में कथा की मूल शक्ति का स्पर्श नहीं कर पाया है और उसमें सीता के वनवास तक की कथा तो नितान्त भोंडे ढंग से आगे बढ़ती है।

कहा गया है कि वाल्मीकि रामायण में धोबी द्वारा सीता के चरित पर संदेह प्रकट किये जाने पर राम स्तब्ध रहे गये, शायद उस समय उनकी माताएं एवं वशिष्ठ आदि शृंगी ऋषि के द्वादशवर्षी यज्ञ में गये हुए थे। राम के लिए अपने ही चरित पर संदेह की ऐसी अभिव्यक्ति सहन न हो सकी, जिसने माता और भाई की प्रियता के लिए राज्य त्याग दिया था, उसे लोक की प्रियता के लिये स्त्री का त्याग क्या कठिन कार्य था। उन्होंने तुरन्त ही सीता को वन में निर्वासित करने की बात सोच ली, सीता उस समय गर्भवती थी, पर राम का निश्चय अत्यन्त कठोर था। उन्होंने लक्ष्मण को बुलाया और उन्हें यह काम सौंपा। सीता को वन देखने के लिए राजी कर लिया। लक्ष्मण से सारी बातें कहीं और यह समझा दिया कि गंगा पार तमसा नदी के तट पर वाल्मीकि आश्रम के निकट सीता को छोड़ देना और तब कह देना-कि तुम्हें निर्वासित किया गया है। हुआ भी ऐसा।

पर इतनी मार्मिक घटना को हरिऔधजी अपनी कल्पना में जिस ढंग से प्रस्तुत करते हैं वह नितान्त हास्यास्पद है। वाल्मीकि रामायण के राम ने सीता

के इस निर्वासन का निर्णय स्वयं किया था, यह उनके जीवन का ही तथ्य था, कालिदास के रघुवंश में भी यही होता है और भवभूति के उत्तर रामचरित की भी कथा यही है। 'वैदेही वनवास' में सात सर्गों तक यह प्रसंग चलता रहता है। 'वैदेही वनवास के राम गुरु वशिष्ठ से तो इस बात में सलाह लेते ही हैं, सीता को भी सलाह के तौर पर समझते हैं और वन जाने के लिए राजी करते हैं, जिसमे ७६ वर्षों के बाद वे सीता को फिर बुला लेंगे। सीता का यह निर्वासन गन्धर्वों तथा मधुपुर विनाश से क्षुब्ध-प्रजा की प्रीति के लिए है। हरिऔध ने इस प्रकार की कल्पना कर और उसे सात सर्गों में प्रस्तुत कर राम और सीता को आज के प्रजातंत्र के रंगमंच पर खड़ा कर दिया है। निःसंदेह वाल्मीकि रामायण के वे राम जिन्होंने अपना परिचय माता से इस प्रकार दिया था कि—

रामो-द्विर्नाभिनापते[1],

तथा 'रघुवंश' की सीता जिन्होंने गंगापार वन में पहुँचने पर लक्ष्मण द्वारा अपनी समस्त निर्वासन कथा सुनकर राम की भर्त्सना करते हुए यह कहा था—

वाच्यस्त्वया मद वचनात् स राजा
वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीत्
श्रुतस्य तत्कि सदृशं कुलस्य[2]।

इस 'वैदेही वनवास' में दोनों ही नहीं है। ये तो यही हैं। कवि हरिऔध ने अपने नये विचारों में राम के साथ गुरु वशिष्ठ की भी छीछालेदर कर डाली है। पहले तो राम उनसे सलाह लेने पहुँचते है जो कि गलत है, फिर वशिष्ठ की सीता-निर्वासन में अनुमति कितनी असंगत और भावना शून्य हृदय की बात है, सुनिए, वशिष्ठ राम से क्या कहते हैं—

बात मुझे लोकापवाद की ज्ञात है
वह केवल कलुषित चित का उद्गार है,
या प्रलाप है ऐसे पाकर पुंज का
अपने उर पर जिन्हें नहीं अधिकार है। छं० ४१।

× × × ×

१–वा० रा० अयोध्या काण्ड सर्ग।
२–रघुवंश सर्ग १४।६१

जो हो पर पथ आपका—अतुलनीय है
लोकाराधन की उदारतम नीति है
आत्मत्याग का बड़ा उच्च उपयोग है
प्रजा पुंज की उसमें भरी प्रतीति है ॥५१॥

× × × ×

स्वयं कहेगी वह पतिप्राणा आपसे।
लोकाराधन में विलंब मत कीजिये ॥५६॥ सर्ग ४

अर्थात् सीता को शीघ्र निर्वासित कीजिए। गुरु वशिष्ठ का यह कथन न तो राम के उस युग के ही अनुरूप है और न नारी-जागरण के इस युग के लिए संभव।

राम प्रत्यक्ष रूप से सीता से भी बातें कहते हैं और उन्हें वन जाने के लिए राजी करते हैं, भारतीय पुरुष और नारी के मनोविज्ञान के बिलकुल विपरीत यह चित्रण हरि औध के इस काव्य को नितान्त अस्वाभाविक बना देता है—

इतना कह लोकापवाद की बातें सारी बतलाईं
गुरुताएं अनुभूत उलझनों की भी उनको बतलाईं।
गन्धर्वों के महानाश से प्रजा वृंद का कंप जाना,।
लवणासुर का गूढ़ भाव से प्राय: उनको उकसाना।
सर्ग ५, पृ० १०।

× × × ×

इच्छा है कुछ काल के लिए तुमको स्थानान्तरित करूं।
इस प्रकार उपजा प्रतीति में प्रजापुंज की भ्रान्ति हरूं॥
सर्ग ५—छं० २१।

सातवें सर्ग मे जब सीता को वन के लिए विदा किया जाता है, तब कवि ऐसा चित्रण कर रहा है, मानों अयोध्या में कोई उत्सव हो, सीता की विदा की यह तैयारी उस प्रसंग की समस्त मार्मिकता, वेदनाजन्य अभिव्यक्ति लोकरंजन के लिए राम की स्त्री त्याग की महानता, सती सीता के दुर्भाग्य आदि सभी तथ्यों को लीप-पोत देती है—

अवधपुरी आज सज्जिता है
बनी हुई दिव्य सुन्दरी है
विहंस रही है विकास पाकर
अटा अटा में छटा भरी है। सर्ग ७—छं० १

कमल नयन राम ने कमल-से
मृदुल करों से पकड़ प्रिया कर,
दिखा हृदय प्रेम की प्रवणता
उन्हें बिठाला मनोज्ञ रथ पर
उचित जगह पर विदेह जा के
विराजतीं जब त्रिलोक माया
सवार सौमित्र भी हुए तब
सुमित्र ने यान को चलाया। सर्ग ७—छं० २४–२५।

इस प्रसंग को कवि ने इतना भोंडा बना दिया है जिसे कहा नहीं जा सकता। सीता के विदा होने का यह चित्र भी देखिए—

इसी समय आए वहां धीर वीर रघुवीर,
बहनें विदा हुईं बरस नयनों से बहुनीर। सर्ग ६—छं० ८६।

सीता के त्याग की सारी मार्मिकता तो इसमें है कि राम ने कठोर हृदय से सीता को निर्वासित भी कर दिया और केवल लक्ष्मण को छोड़कर इसकी जानकारी किसी को हुई ही नहीं, सीता को भी तब हुई, जब वे वन में पहुँच गयीं और लक्ष्मण उन्हें छोड़कर चलने लगे। और जब उन्होंने रोना शुरू किया, वहां वाल्मीकि के विद्यार्थी आ गये और उन्होंने इसकी सूचना कुलपति को दी।

'हरिऔध' जी ने जिन नये प्रसंगों की उद्भावना अपने इस काव्य में की है, वे भी अनवसर के और सुधारवादी हैं, उस युग में गांधी जी के अहिंसावाद की दुहाई अशोक के राज्य को याद है, न कि दुष्टों के दमनकर्ता राम के राज्य की—

यदि आहव होता अनर्थ होते बड़े
हो जाता पविपात लोक की शांति पर
वृथा परम पीड़ित होती कितनी प्रजा
कालिका कवल बनता मधुपुर-सा नगर।

सर्ग-१२-छं० १४।

कवि ने प्रसंगों की मार्मिकता की भी सही पहचान यथावस्तु में नहीं की है। लवकुश के नाम-करण संस्कार के समय सीता की सहज वेदनाओं को अभिव्यक्त करने का कितना उपयुक्त प्रसंग था जिसमें दिग्विजयी पिता तथा राजधानी अयोध्या के वैभव को याद दिलाना, जो अत्यन्त स्वाभाविक होता, पर इनकी चर्चा कवि ने नहीं की है।

अनावश्यक रूप में प्रत्येक सर्ग के आरम्भ में प्रकृति चित्रण करना भी कृत्रिम लगता है, जैसे प्रकृति-चित्रण करना ही कवि की प्रतिभा की कसौटी थी लेकिन प्रकृति-चित्रण में भी भाव-अभाव के सामंजस्य का दर्शन कवि नहीं कर सका है और उसने कहीं-कहीं अनावश्यक वर्णन भी कर दिए हैं।

इस प्रकार 'वैदेही वनवास' असफल प्रबन्ध है। राम के उत्तर चरित को उसमें अनुत्तरदायित्व के साथ ही प्रस्तुत किया गया है।

श्री सुमित्रानंदन पंत

पंत जी ने भी रामचरित पर दो कविताएं लिखी हैं–(१) लक्ष्मण और (२) अशोकवन। 'लक्ष्मण' स्वर्णधूलि में संकलित है और 'अशोकवन' 'स्वर्ण-किरण' में। 'स्वर्णकिरण' का प्रकाशन सं० २००४ में हुआ है।

(१) 'लक्ष्मण' छोटी-सी कविता है। जिसमें लक्ष्मण को मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अनन्य सहचर के रूप मे चित्रित किया गया है। उन्हें मानवता के आदर्श के रूप में कवि देखता है और कामना करता है कि ऐसे ही लक्ष्मण आज भी हमारे समाज में हों। १६ पंक्तियां हैं—

ऐसे भू के मानव लक्ष्मण
कभी गा सकूँगा उनका जीवन।

× × ×

राम पतित पावन दुख मोचन
लक्ष्मण भव सुख दुख में शोभन।
वे सर्वज्ञ, सर्वगत, गोपन,
ज्ञानमुक्त मैं, पदमत लोचन।,

(२) अशोकवन २० कविताओं का लघुगीति प्रबन्ध है जिसमे अशोकवन में बन्दी सीता से लेकर रावण-विजयी राम के अयोध्या गमन तक की संक्षिप्त कथा कुछ प्रमुख प्रसंगो को लेकर गायी है। इन कविताओ में रावण को शोषक, अत्याचारी, मानवता का उत्पीडक कह कर उस पर मानव की विजय का गान कवि ने संक्षिप्त किन्तु प्रेरणाप्रद और सजीव भावों में किया है।

लंकाविजय की कथा ही 'अशोकवन' की पृष्ठ भूमि है पर प्रसंगतः और घटनाएं भी इसमें चित्रित हो गयी हैं जो मर्मस्पर्शी बन पड़ी हैं। जैसे–सीता का राम के प्रति अनुराग, अनुराग की स्मृति, सीता के अलौकिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति, उर्मिला की चर्चा, राम द्वारा सीता का स्मरण। सीता की यह विरह वेदना देखिए—

पंचवटी की स्मृति हो आई।
नील कमल में, नील गगन में
नील बदन ही दिये दिखाई।
संध्या की आभा में मोहन
पंचवटी उठ आई गोपन,
भूलीं सन्मुख, प्रिय संग चौदह
बरसों की स्वर्णिम परछाईं।
कौन रहा वह सोने का मृग
जिसने मोह लिए मेरे दृग
जगी चेतना थी केवल, मैं
मन से राम न थी बन पाई।

(स्वर्ण-किरण पृ० १६४)

इसके बाद कवि फिर मानवता का रूपक सीता के साथ बाधने लगता है—

जग जीवन सीता की काया
जन मन से लिपटी थी छाया
गत युग की लंका में उसने
कर प्रवेश नव ज्वाल लगाई!
ज्ञात भूमिजा को भू माया
वह तामसी ढोंगी बाधा,
आज हृदय स्पन्दन में उसके
प्रभु ने जय दुन्दुभी बजाई!

(स्वर्ण-किरण पृ० १६५)

इस लघु काव्य को सभी कविताएं प्रायः गीतात्मक ही हैं। उनमें जहा-तहां भावों की सूक्ष्म पकड़ है पर कथा को आगे बढाते हुए और युग के अनुरूप दानव-मानव संघर्ष का निदान, परिणाम व्यक्त करते हुए कवि आगे बढ गया है। इससे अधिक इस लघु प्रबन्ध में कहा भी नही जा सकता था। फिर भी कुछ अंश काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट तथा आकर्षक हैं, जैसे लका दहन का प्रसंग मे पंक्तिया देखिए—

हे पावक-वाहक, धन्य, धन्य!
जग धूमकेतु से शिखा पुच्छ,

सीता का उत्तर :—

सतत लोक मंगल में जो रत
भू का हृदय राम का अनुगत
क्या तुम बांध सकोगे उसको
घट में समा सकेगा सागर ?

× + ×

हरा राम ने मोह निशा मम
उठा पंक से पद्म भू हृदय
छोड़ो मोह निचर पति अब
प्रकटे लोको दमके दिन कर। (पृ० १६२)

रावण फिर कहता है—

भुवन विदित मैं भू अधिकारी !
जीति सकेंगे मुझको राघव
देवि मुझे है संशय भारी।

× × ×

मिट सकती जो मन की तृष्णा
होती धरा न सागर बसना,
सम्मोहन की रत्न छटा को
त्याग बनेगा कौन भिखारी ?
देवि युद्ध से होगा निर्णय।
किसका होगा धरणि का हृदय।

(पृ० १६३)

इस प्रकार पंत जी ने मानवता, लोक कल्याण, रावण का प्रताप, राम की वीरता, सीता का पवित्र चरित—आदि पृष्ठभूमियों को अपनी गीतात्मक कविताओं में उतार कर 'अशोकवन' के माध्यम से जो लघुकाव्य लिखा है वह गीत भी है और प्रबन्ध भी है। रामायण भी है और लोकायन भी है। ऐसी छोटी और अनूठी रचना-खड़ी बोली साहित्य में रामचरित पर नहीं है। इसे गीत नाट्य के रूप मे भी प्रस्तुत किया जा सकता है। भाषा का स्वच्छ प्रवाह, गति और माधुर्य इसे और भी प्रिय बना देते है। काव्य मे गहरी अभिव्यक्ति न होते हुए भी सावन की ऐसी फुहार है जो भुलाई नही जा सकती।

श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन

नवीन जी ने उर्मिला के चरित को लेकर 'उर्मिला' नाम से ६ सर्गों का बड़ा प्रबन्ध काव्य लिखा। इसका प्रकाशन सन् १९५८ मे हुआ, वैसे इसकी रचना का आरम्भ उन्होंने १९२२ ई० में किया था। १९२२, १९३१-१९३४ ई० के बीच साढ़े चार साल की अवधि मे काव्य का प्रणयन पूरा हुआ। प्रकाशन बहुत बाद में आकर किया गया। यही कारण है कि 'नवीन' जी की 'उर्मिला' में प्रबन्ध की कथावस्तु, भावों और विचारो की बहुत कुछ वैसी ही पृष्ठभूमि है जैसी गुप्त जी के 'साकेत' में। आजादी के बाद देश और समाज की भावधारा में जो नये मोड़ आये उनकी झलक 'उर्मिला' में नही है यद्यपि इसका प्रकाशन १९५८ में होता है।

अपने काव्य के प्रबन्ध के सम्बन्ध में नवीन जी ने भूमिका मे लिखा है।

'मेरी इस 'उर्मिला' मे पाठकों को रामायणी कथा नही मिलेगी। रामायणी-कथा से मेरा अर्थ है क्रम से राम लक्ष्मण—जन्म से लगाकर रावण-विजय और अयोध्या-आगमन तक की घटनाओं का वर्णन। ये घटनाएँ भारतवर्ष मे इतनी अधिक सुपरिचिता हैं कि इनका वर्णन करना मैं उचित नही समझता इस ग्रन्थ को मैंने विशेष कर मनस्तर पर होने वाली क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का दर्पण बनाने का प्रयास किया है। रामायणीय घटनाओ का राम, सीता, सुमित्रा, कौशल्या और विशेपकर लक्ष्मण और उर्मिला के मनों पर क्या प्रभाव पड़ा, वे उन घटनाओ के प्रति किस प्रकार प्रतिकृत हुए—आदि का वर्णन ही इस ग्रन्थ का विषय बन गया है।'

(भूमिका : च० ६)

जैसा कुछ लेखक ने कहा है प्रायः यही सब 'उर्मिला' काव्य मे है। प्रत्येक सर्ग काफी विस्तृत है। पहले सर्ग मे उर्मिला का मिथिला में बाल्यकाल, दूसरे मे अयोध्या में उसका लक्ष्मण के साथ मिलन-आनन्द, तीसरे में वन गमन की तैयारी में लक्ष्मण का योग, उर्मिला की सहमति आदि है। फिर चौथे और पाँचवें में उर्मिला के विरही जीवन की अभिव्यक्ति की गयी है। छठें में रावण विजयी राम द्वारा लंका में विभीषण को राज्य पद पर अभिषिक्त किये जाने की कथा और अयोध्या आगमन का वर्णन है, जिसमे अन्त में उर्मिला और लक्ष्मण के मिलन पर काव्य समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार यह काव्य सम्पूर्ण रूप से उर्मिला के चरित पर ही है और

ये फहराई थीं उस दिन भी
जब रावण का ब्याह हुआ,
और आज भी फहराती हैं
जब रावण का दाह हुआ।
किन्तु आज की बात और है
आज और ही है आनंद,
आज मुक्ति का मिला संदेशा,
सबल दिशाएं हैं स्वच्छन्द।

वरुण मुक्त हैं, मुक्त मरुद्गण
वायु मुक्त उनमुक्त सभी
अब जग में कोई क्यों होगा
परवश बन्धन मुक्त कभी ?
इसीलिए उन्मुक्त पताकाएं
हर्षित लहराती हैं
विश्वमुक्ति संदेश वाहिनी
ये सब दिशि फहराती हैं। (सर्ग ६, छन्द-२०-२१)

इस प्रकार नवीनजी ने रामकथा में नये सांस्कृतिक विचारों के मोड़ को बिल्कुल अभिमूर्त कर दिया है और इस सांस्कृतिक संस्तवन में बीसवीं शती का कवि भी तुलसीदास की भाँति इतिहास को उठाकर बगल में रख देता है तथा ब्रह्म का गुणगान करने लगता है। कवि कहता है—

शब्द ब्रह्म बनकर, यह लहरा
उठी पताका संस्कृति की,
हुई सांस्कृतिक विजय पूर्ण थी—
आर्य राम की अति कृति की,
नहीं शस्त्र विजिता यह लंका—
यहां विजय है शास्त्रों की,
यह जय है तापस आर्यों के
युद्ध शब्द ब्रह्माओं की। (सर्ग ६, छन्द २८)

नवीन जी ने 'राम वनगमन' को आर्य-संस्कृति के प्रचार का उद्देश्य बताया है, जैसा कि अभी मैंने पहले उल्लेख किया है और राम एक सत्य-

प्रचारक बनकर अयोध्या से दक्षिण वन-प्रदेश में गये थे, कवि इस विषय की ओर कई जगह संकेत करता है और छठें सर्ग में भी इसी बात को दुहराता है :—

इस संदेश प्रचार मार्ग में
हैं बाधाएं बड़ी बड़ी
गगन चुम्बिनी पर्वतमाला
पयकोरो के अचल खड़ी।
सागर की उत्ताल तरंगे
नाच रहीं पथ में प्रबला
विकट शूल हैं, भीम शिलाएं
विजन सघनता है सबला।
वर्षा आतप शीत भयंकर
वन पशुओं से पंथ घिरा
सत्य प्रचारक के पथ में है
बाधाओं का पुंज निरा। (पृ० ५६६)

ये सब चर्चाएं रामचरित का ही प्रकारान्तर से प्रस्तुतिकरण है, और तब प्रबन्ध का नामकरण 'उर्मिला' और उसमें उर्मिला की शक्ति के बल पर ही लक्ष्मण को विजय की मान्यता स्थापित करता। यदि ७०४ दोहों की विरह-सतसई पर नवीन जी ने प्रबन्ध की यह कल्पना की होती तो काव्य चमत्कृत हो उठता। प्रस्तुत प्रबन्ध में तो कवि उर्मिला का चारण मात्र बनकर रह गया है, वह उर्मिला के गुण और शक्ति का चित्र खींचना चाहता है लेकिन यह संभव नहीं हो सका है।

कवि ने एक ओर पंचम सर्ग में रीतिकालीन भाव व्यञ्जना अवधी के दोहों में जहां रक्खी है और जहां उर्मिला सीधे-सादे शब्दों में कहती है—

चले जाहु मोरे सजन
अनबोले सकुचात
हिय की हिय में रह गयी
नेकु न निकसी बात। (पृ० ३९९)

वहां दूसरी ओर छायावादी युग की उक्ति व्यंजना शैली भी उसने अपनाई है। लक्ष्मण उर्मिला के मिलन प्रसङ्ग का चित्र दूसरे सर्ग में प्रस्तुत करते हुए

'प्रसाद' की 'कामायनी' के आनन्द सर्ग का प्रतिरूप उपस्थित हो गया है, जहाँ ब्रह्माण्ड थिरक उठता है, दिशाएँ नाच उठती हैं, सूर्य और नक्षत्र-मण्डल भी नाच उठते हैं, अन्तरिक्ष मे राम का दृश्य उपस्थित हो जाता है, 'उर्मिला' अपनी पूरी सार्थक्ता नही पाता। 'साकेत' की तरह प्रस्तुत काव्य मे भी केवल चौथे और पांचवें दो सर्ग पूर्ण रूप से उर्मिला के लिए लिखे गये हैं। पाचवां सर्ग तो एक विरह सतसई, है ।इस सर्ग मे अवधी में लिखे ७०४ दोहे हैं, भाषा, शैली और विषय दोनो दृष्टियो से यह सर्ग इस प्रबन्ध के भीतर स्वतंत्र रचना है, जिसे इस प्रबन्ध में से यदि निकाल दिया जाय तो कोई अधूरापन प्रबन्ध मे नही मालूम पड़ता।

प्रबन्ध की समस्त घटनाएँ अयोध्या में घटती हैं। उर्मिला के १४ वर्ष के वियोग की तपस्या पर कवि निछावर है, यह प्रबन्ध लिखकर उर्मिला चरणार्पण करने की ही उसकी साध है, इस माध्यम मे और जो कुछ आ गया है, यह प्रबन्ध के विस्तार की दृष्टि से। विशेषकर ,आर्य-संस्कृति के प्रसार की बात कई बार दुहरायी गयी है। लक्ष्मण-उर्मिला के विरह की अनुभूति-अभिव्यक्ति ही पूरे प्रबन्ध को मूल प्रेरणा है। आरंभ मे ही कवि कहता है—

> न हो आलस्य न हो उद्रेक
> न लाओ अपने मन में भ्रांति
> उर्मिला की आहों को सुना
> करुण रस में कर दो कुछ क्रान्ति। (पृ० २)

क्योकि प्रबन्ध की समस्त घटनाएँ अयोध्या में ही घटती है, इसलिए जो क्रान्ति कवि को अभीष्ट थी उसका दिग्दर्शन काव्य मे नही हो सका। सारा काव्य *प्रेम और वेदना तथा कुछ युगीन विचारो में ही सिमट कर रह गया है*। वास्तविक क्रान्ति का चित्रण तो तब संभव होता जब कवि लक्ष्मण और मेघनाद के विकट समर का चित्रण दो सर्गों मे करता। लक्ष्मण के प्रणय का यह विराट् दर्शन कवि की छायावादी पहचान है—

> ढुल गई विमला की उर्मिला
> लखन के चरणों में चुपचाप,
> न मोल न भाव सौदा हुआ
> समर्पण हुआ आप ही आप
>
> + + +

कर नवीनजी कवित्व के क्रांतिधर्मा राही नहीं बन सके। वैसे, भाषा भाव शैली तथा अभिव्यंजना की दृष्टि से 'उर्मिला' काव्य 'साकेत' से आगे है, इसमें संदेह नहीं।

डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र

डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र ने 'तुलसी-दर्शन' नाम से शोध प्रबन्ध लिखा है, उसमे उन्होंने रामचरित की लोकप्रियता की सही पहचान की है। धर्म, राजनीति तथा लोक व्यवहार मे राम इतना घर कर बैठे हैं, इस तथ्यों को सही रूप से हृदयगम करने वाले साहित्यकारो में मिश्रजी का नाम आगे लिया जाना चाहिए। वह शोध-प्रबन्ध तो उनका आलोचना ग्रन्थ है, और अपने विषय का बेजोड़ ग्रन्थ है, लेकिन जिन अछूते विचारों को मिश्रजी ने अपने 'तुलसी-दर्शन' मे व्यक्त किया था, भाव की सरणि में बिठाकर उन्हीं विचारो और भावों को तीन प्रबन्ध काव्यों मे अभिव्यक्त किया, 'कौशल किशोर', 'साकेत-संत' तथा 'रामराज्य', ये तीनो काव्य भिन्न-भिन्न समयो पर लिखे गये हैं। रामराज्य की रचना देश की आजादी के बाद हुई है। युगीन प्रभाव और युग के बोल की दृष्टि से इन्हे दो वर्गों में रखना चाहिए—एक मे 'कौशल किशोर' और 'साकेत-संत' तथा दूसरे भाग मे 'रामराज्य'। 'कौशल किशोर' संवत् १९९१ वि० में 'साकेत संत' संवत् २००१ मे और 'रामराज्य' संवत् २०१७ मे लिखा गया।

मिश्रजी के 'तुलसीदर्शन' का चौथा परिच्छेद 'तुलसी के राम' का उत्तर भाग ही भावरूप मे इन काव्यों मे प्रकट हुआ है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील, गुण, शौर्य एवं उनकी राजनीति के प्रति मिश्रजी अपनी गाढ निष्ठा जिस प्रकार इस परिच्छेद मे प्रतिष्ठापित कर सके हैं उसी को युग काव्य के रूप मे इन काव्यों मे अवतरित करते हैं। उत्तर-दक्षिण की एकता, समाज मे रावण भावना का विध्वंस, त्याग और शौर्य आदि जो अपने राष्ट्र के लिये चिरन्तन सत्य हैं उन्हे राम के चरित के माध्यम से देखना मिश्र जी का इष्ट है और इसे मिश्र जी ने सरल, सुबोध एवं ओजस्वी भाषा में रसात्मकता के साथ व्यक्त किया है। उसमें प्राचीन का दुराग्रह और नवीन की उद्दंडता दोनों नहीं हैं वरन् दोनो के सही रूपो का ग्रहण है। मिश्रजी के काव्यों के पढ़ने के पूर्व 'तुलसी दर्शन' के चौथे परिच्छेद का उत्तरार्ध हमें अवश्य पढ़ लेना चाहिए। इस परिच्छेद के कुछ उद्धरण ये हैं—

'विश्वामित्र पहले स्वतः राजा रह चुके थे। उन्हें क्षत्रियत्व और ब्राह्मणत्व दोनों का पूर्ण अनुभव था। इसलिए उन्होंने रत्न वैद्य की तरह गवेषणा का अनुसंधान किया और इन कार्यों के सुचारु संपादन के लिये सच्चे जौहरी की तरह रामचन्द्र रूपी अमूल्य रत्न को ढूंढ निकाला, यह उन्हीं का प्रयत्न था कि अनिर्वासित होते हुए भी रामचन्द्र सीता-स्वयंवर के अवसर पर मिथिला गये और अपना पराक्रम दिखाकर उत्तरीय भारत के—आर्यावर्त के—दो दुरन्त संभ्रान्त राजकुलों को स्नेह सूत्र में बांध कर आर्य-संगठन का प्रथम सूत्रपात किया।......

नीचाभिजात मनुष्य ने भी उनमें आत्मीयता का अनुभव करके उनका साहचर्य प्राप्त किया। कोल, किरात, निषाद, शबर वानर (द्रविड़); भालू, आदि अनेक अनार्य जातियाँ उनके शील प्रभाव से प्रभावित होकर उनकी ओर खिंच आईं, उनके उस शील प्रभाव का इतना महत्त्व था कि अत्रि, अगस्त्य, वाल्मीकि, सुतीक्ष्ण, शरभंग प्रभृति बड़े बड़े महात्मा भी उनके आगे नतमस्तक हो गये। आर्यों और अनार्यों को इस प्रकार वशीभूत कर लेने वाले राम ने अपने लिए कभी कोई स्वार्थ भावना नहीं रखी।[1]'

मर्यादा पुरुषोत्तम को जिस प्रकार अपने शील और सौन्दर्य का पता था उसी प्रकार अपनी शक्ति का भी पता था। वे जानते थे कि वे समाज पुरुष के सेवक ही नहीं शासक भी हैं। जैसे शरीररक्षा के लिए फोड़े को चीरना और शस्य राशि की वृद्धि के लिए घास-फूस को उखाड़ना अनिवार्य है वैसे ही भारतवर्ष की रक्षा और सद्भावों की वृद्धि के लिए रावण-राज्य विध्वंस करना अनिवार्य था।[2]

रामचरित के इतिहास को हमने जिस दृष्टिकोण से देखने और लिखने की चेष्टा की है, उसके अतिरिक्त और कोई दृष्टिकोण हो नहीं है, यह हमारा कहना नहीं है। नर चरित्र आखिर नर चरित्र ही है। उसमें कुछ अपूर्णताओं अथवा आक्षेप योग्य बातों का भी मिल जाना स्वाभाविक ही है। परन्तु यदि हम भक्त की दृष्टि से उस चरित्र का अध्ययन करना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि बकौल महात्मा गांधी के यह विश्वास रखकर कि रामादि कभी छल नहीं

१–तुलसीदर्शन पृ० १५१-१५२।
२–वही, पृ० १५३।

कर सकते हम पूर्ण पुरुष का ही ध्यान करें।[१] मिश्रजी के तुलसी दर्शन मे आये इन विचारो की काव्य-परिणति उनके 'साकेत-सन्त' और 'राम राज्य' प्रबन्ध काव्यो मे हुई है। तुलसीदास के भक्ति पर स्थिर रहकर रामकथा के नये मोड़ पर भी मिश्रजी जिस पर खड़े हो गये है, यह इनके इन दोनों काव्यो की विशेषता है। इस पर हम आगे विचार करेंगे।

कौशल किशोर

'कौशल किशोर' मिश्रजी की प्रारम्भिक रचना है। राम के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा इसमे ग्रथित है। रामकथा के नये मोड़ की प्रवृत्तियाँ इस काव्य मे प्राय: नही है, कथानक तुलसीदास के 'रामचरित मानस' का बहुत कुछ अनुसरण करता है। प्राञ्जल-शैली, सरल-भाषा तथा रोचक प्रसंगो की उद्भावना कवि की अपनी विशेषता है। मारीच-सुबाहु के दमन-प्रसंग मे पाचवें सर्ग मे राक्षसो की पान गोष्ठी का रोचक-चित्र मिश्र जी ने अपने काव्य शब्दो मे खीचा है। एक उदाहरण लीजिए—

> कौडी, सींग और दांतों के, गहनो से थे लदे कई।
> फूलों के रस्सों से बँधकर भैंसों से थे फंदे कई।
> सींग लगाकर वैल बने या लिए बाघ का वेश कई।
> छिटकाये थे भालू ही से अपने कुंचित केश कई।

मिश्रजी वाल्मीकि और तुलसीदास की सरणि छोड़कर बाहर काव्य की पृष्ठभूमि देखने के लिए मजबूर नही हैं। उन्होंने यथासभव इन्ही दोनो महाकवियो की सीमा मे रहकर नये युग की नयी आवाज उठायी है। 'कौशल किशोर' मे वाल्मीकि के आदि-काव्य की स्तुति प्रस्तुत करते हुए मिश्र जी कहते है—

> जिस सरोवर का सुधा स्वादीय जल
> आदि कवि ने पान आजीवन किया
> भाग्य अपना सराहूँगा बड़ा
> यदि वहां का चुल्लू जल पिया। (पृ० १)

शासन के लिए ब्रह्मणत्व और क्षत्रियत्व का परस्पर सहयोग बहुत अपेक्षित है, इस विचार का समर्थन मिश्रजी के काव्य मे यत्र-तत्र पाया जायगा। दशरथ और विश्वामित्र के मिलन के अवसर पर कवि ने ये उद्गार प्रकट किये हैं—

१–तुलसी दर्शन, पृ० १५६।

भोग योग, समृद्धि संपति राग त्याग समान
या प्रवृत्ति निवृत्ति का यह ऐश्य शोभावान।
था बड़ा ही चितहारी नृपति यति संयोग
पुण्यतम निश्चय बना था यह मनोरा सुयोग। (पृ० ४६)

'कौशल किशोर' मे राक्षसों के उन उत्पातों की ओर संकेत कवि करता है जो उन्होंने मध्यदेश में आरम्भ कर दिये थे और इस प्रकार उत्तर भारत को आक्रान्त करना चाहते थे, तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में नर कथा की यही पृष्ठभूमि है। राक्षसों का सुधार शस्त्र रण से ही हो सकता है, यह लिखकर मिश्र जी ने सुलझे विचारों का परिचय दिया है, युग के अनुसार सर्वत्र अहिंसा की दुहाई कवि का पिछलग्गूपन है। मिश्र जी कहते हैं—

भर गया है राक्षसों में तामसी अभियान
शस्त्ररण ही दे सकेगा उन्हें सच्चा ज्ञान।
मारना होगा बना जब मारना अनिवार्य,
सुख इसी में सब लहेंगे आर्य और अनार्य। (पृ० ४६)

तुलसीदास का बालकाण्ड बहुत अंशों मे कौशल किशोर का आधारभूत बन जाता है। परशुराम लक्ष्मण संवाद मे कवि ने वाल्मीकि की ओर न देखकर रामचरित मानस के भावो का ही उद्धरण कर दिया है। लक्ष्मण कहते हैं;—

सुन फिर बोले लक्ष्मण कुमार
मुनि! व्यर्थ धनुष, तर्कश कुठार।
अब त्याग सकल अभिम न ध्यान,
करिये जाकर जप तप सुजान। (पृ० २१८)

इस प्रकार राम लक्ष्मण द्वारा जनकपुर देखने का यह प्रसंग—

स्वयं नगर-दर्शन, इच्छुक थे
पर लेकर लक्ष्मण का नाम
बोले 'प्रभु! इनको लगती ह
नगर-छटा अतिशय अभिराम,
मुनि ने मन का भाव समझकर
कह—'बन्धु लक्ष्मण के संग,
तुम भी श्रीराम! देख लो,
पुर निर्माण कला के ढंग, (पृ० १३१)

'रामचरितमानस' को इन चौपाइयों की याद दिलाता है—

नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं । प्रभु सकोच उर प्रगट न कहहीं ।
जौं राउर आयसु मैं पावौं । नगर देखाई तुरत लै आवौं ॥
\+ + +
जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ ।
करहु सुफल सबके नयन, सुन्दर बदन देखाइ ॥

इस प्रकार 'कौशल किशोर' अनेक अंशों में रामकथा सम्बन्धी पूर्व मान्यताओं के आधार पर लिखी रचना है। युग के अनुरूप—राष्ट्र की एकता, स्वतंत्रता—जैसे कुछ प्रसंगों का भी प्रस्तुतीकरण हुआ है, पर अवतारवाद और भक्ति के बीच उसकी आवाज उभर नहीं पाती।

साकेत संत

'साकेत संत' मिश्र जी की अत्यन्त प्रौढ़ रचना है। इसमें रामकथा पर नया दृष्टिकोण भी है कवित्व गत भाषा और भावन की प्रौढ़ता भी है तथा काव्य प्रबन्ध का सुनियोजित निर्वाह है। इस प्रबन्ध काव्य में १४ सर्ग हैं। यद्यपि काव्य का आरम्भ राम की भगवद्भक्ति की भावना ही लेकर होता है—

स्वामी एक राम हैं, उन्हीं का धाम विश्व यह
जन में जनार्दन की ज्योति नित्य जागी है। (पृ० १७)

तो भी उसमें वर्तमान युग की राष्ट्रीय, सामाजिक समस्याओं के प्रस्तुतीकरण का समाधान करने की भरसक चेष्टा की गयी है। राष्ट्रीय एकता का यह उद्बोधन रामचन्द्र की ओर से भरत को मिल रहा है—

वहां तुम शक्ति संगठित करो,
कि जिससे विकसे आर्यावर्त,
यहां मैं उत्तर अभिमुख करूं,
वनों में रह दक्षिण आवर्त,
उभय दिश एकदिश की भांति,
एक भाई का ही है अंग
हो उठें उत्तर दक्षिण एक,
तुम्हारा भारत बने अभंग। (पृ० १२७)

और यह आवाज आज के युग की है। इस प्रकार कवि का मानस राम की भक्ति के केन्द्र पर स्थित होकर भी राष्ट्र-निष्ठा और सामाजिक उद्बोधन की गहरी अभिव्यक्ति करता है।

काव्य का कथानक भरत-माण्डवी के मिलन और आमोद के वर्णन में प्रारम्भ होता है, दूसरे सर्ग में भरत ननिहाल में हैं जहा उन्हे अपशकुन की सूचना और विपरीत समय का संकेत-सा मिलता है, उसी समय अयोध्या में राम का वनवास होता है। तीसरे सर्ग मे भरत अयोध्या लौटते हैं, माता कैकेयी से उनकी भेंट होती है। कवि ने यहाँ भरत और कैकेयी के विपरीत भावो का अच्छा द्वन्द्व दिखाया है। काव्य का अंतिम कथानक है राम का आदेश ग्रहण कर चित्रकूट से भरत का लौटना, और वनवास की अवधि तक अयोध्या की रक्षा का भार संभालना। अंतिम सर्ग में नंदिग्रामवासी भरत की यह तपस्या माण्डवी और उर्मिला के वियोगाकुल भावो का चित्रण कर कवि ने उपेक्षित उर्मिला और माण्डवी दोनो को काव्य का विषय बना दिए हैं। बीच मे जिन कथानको का समावेश हुआ है, उसमे गंगातटवासी निषादराज के ग्राम-संस्कृति का चित्रण तथा सेना के साथ चित्रकूटगामी भरत के अवरोध के लिए निषादो का भावोद्‌बोधन अत्यन्त मार्मिक है। १२वें सर्ग मे राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति के लिए पृष्ठभूमि खोजी गयी है। राम भरत से कहते हैं—तुम उत्तर भी संभाले रहो और मैं दक्षिण में आर्य संस्कृति का प्रचार कर अखण्ड भारत की कल्पना करता हूँ।

भरत के चित्रकूट-गमन मे मार्ग की जिन कठिनाइयो का वर्णन किया गया है उसमें निषादराज का अवरोध तथा भयंकर वन का गहन मार्ग दोनों पर कवि ने विशेष रूप से विचार और भाव अभिव्यक्त किये हैं। कुछ समालोचको ने भरत के मार्ग की इन कठिनाइयों को दार्शनिक रूप देने का प्रयत्न किया है।

किन्तु प्रसन्नता की बात है कि पाठक की दृष्टि मे यह दार्शनिक विचार बहुत ऊपर उठकर नही आते और काव्य की गरिमा पूर्णरूपेण सुरक्षित रहती है। इन दोनो प्रसंगों के चित्रण बहुत ही रोचक, प्राञ्जल, भावपूर्ण और मर्म-स्पर्शी हैं। निषादराज का यह विचार देखिए, राम के प्रति उत्कट भक्ति के परिचायक उसके ये उद्‌गार हैं—

चौंका गुह इसका मतलब क्या
होने को है आगे अब क्या ?
मिलना ही था तो मेला क्यों
सेवा का बड़ा झमेला क्यों ?

परम चतुर था और साहसी उसके वेद भाष्य विख्यात
उस विज्ञानी के वश मे थे प्रकृति देव सेवक दिन-रात। (पृ० ६६)

यहाँ मिश्रजी ने रावण विज्ञानी द्वारा प्रकृति देवों से सेवा लिये जाने की बात कह कर सीधे सीधे यूरोप की लोलुप सत्ताओं की ओर संकेत किया है।

जैसे गांधीजी ने अहिंसा से भारत को आजादी प्राप्त की, मिश्र जी ने भी अहिंसा का तो नहीं निरस्त्रीकरण का सा थोड़ा चित्र राम द्वारा दिये गये रावण के प्रति इस संदेश में खींचा है, जिसमें वे रावण में पथ की एक लकीर मात्र चाहते हैं—

तब प्रभु ने अंगद को भेजा उसके सुहृदय पुत्र तुम वीर।
जाकर कहो कि चाह रहे हम केवल पथ की एक लकीर।
जिस पर चलकर हम सीता को देखें कर दें उसे स्वतन्त्र।
भारतीय नारी न रहेगी बंधी विदेशों में परतन्त्र।
जन शासक होकर हाय किया कुत्सित अन्याय।
प्रायश्चित करो कुछ जिससे क्षोभ सभी का कुछ मिट जाय।
(पृ० ६६)

इस संदेश मे स्पष्ट ही गांधी आन्दोलन के विचारों की छाप है।

संपूर्ण भारत की एकता की ओर संकेत करते हुए कवि लिखता है—

देखा भारत रूप विनत जैसे रत्नाकर।
मत्स्य वही है और मकरगण का भी वह घर।
वही रत्न है, वही शंख, रेतों के टीले
साधु वहीं यदि लोग वहीं हिंसक गरबीले।
मित्र दलों में बंटा एक ही मानव का दल
कहीं कहीं दल भालू कहीं वानर कहलाया
कहीं उसी ने आप स्वतः अपने को खाया। (५वां सर्ग)

नंदिग्राम में भरत की साधना का चित्रण करते हुए कवि के मानस पर आज के गरीब गाँवों का चित्र उतर आया है, जो युग के प्रतिनिधित्व का ज्ञान रखता है; न कि राम काव्य का—

ऐसी थी साधना भरत के शासन व्रत में
गांव गांव थे गये न नगरों तक ही विरमे

रूखा भोजन, वसन लँगोटी, भूमि शयन था
देख प्रजा का मूर्त रूप उनका जीवन था। (पृ० ११४)

इन पंक्तियों में जैसे कवि ने दीन-हीन ग्रामों की ओर संकेत किया है, जो राम के युग की पौराणिक कल्पना के विरुद्ध है। स्पष्ट है कि कवि राष्ट्र का दर्शन कर रहा है—

मनुष्य ही महा सत्य मनुष्य मन के लिए।
वही परम आराध्य, वही प्रत्यक्ष विष्णु है। (पृ० १३३)

उक्त पद्य में महाभारत के व्यास की छाया है—

गुह्यं तदिदं ब्रह्म ब्रवीमि
न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचन्।

रामराज्य सरल भाषा में लिखा, इस देश में इस युग का एक सशक्त और सफल राष्ट्रीय काव्य है, जिसमें रामराज्य की सरल और गूढ़ कल्पना को साकार रूप दिया गया है।

श्री चन्द्रप्रकाश वर्मा

श्री चन्द्रप्रकाश वर्मा ने 'सीता' नाम का एक खण्ड काव्य सन् १९५२ में लिखा जिसमें सीता के उत्तरकालीन चरित को आधुनिक नारी जागरण की दृष्टि से देखा गया। नारी उपेक्षा, समाज में उसकी हीनसत्ता, लाछन से आतंकित नारी का एक सबल चित्रण राम की महारानी जानकी के रूप में 'सीता' खण्ड काव्य में किया गया है। काव्य की भाषा सबल, भावों की अभिव्यक्ति भी उक्ति 'वैचित्र्यपूर्ण है किन्तु काव्य पौराणीक तथा साहित्यिक पृष्ट-भूमि से अपना नाता कम रखता है।

छायावादी तथा गीतवादी शैली में बिखरे भावों को समेटने का प्रयत्न कवि ने इस खण्ड काव्य में किया है। वाल्मीकि अपने आश्रम में सीता के निर्वासन के बाद उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं—

सीते! स्वागत है! सुनता हूँ
आती हो आश्रम में
करुण रागिनी, तुम सतेज
सम होती हो अब सम में।

+ +

सीते ! आओ ! पीछे आवेगा
वह रघुनन्दन भी,
कहीं भक्ति से दूर रहा है
भक्त-हृदय चंदन भी ।
+ +
मुझे ज्ञात कुछ और अभी
इस जन को सिखलाओगे
रावणारि मर्यादा पुरुषोत्तम
भी कहलाओगे ।
+ +
हे अदृश्य ! आवश्यक ही है
यह विछोह यह दूरी,
वाल्मीकि सब देख रहा
रामायण अभी अधूरी ।

श्री शेषमणि शर्मा 'मणि रायपुरी'

'मणिरायपुरी' जी ने सन् १६४२ में 'कैकेयी' नाम से खण्डकाव्य लिखा था जो सन् १६५२ मे प्रकाशित हुआ । इस खण्ड काव्य मे लेखक ने वाल्मीकि रामायण का आधार लेकर यथार्थ कथावस्तु को सामने रखा है और फिर आज के युग की वर्तमान राष्ट्र स्थिति को दृष्टिकोण मे रखते हुए कैकेयी के पश्चताप, अहिंसा और सत्य का परिपाक काव्य के अन्त में दिखाकर यह प्रकट करना चाहा है कि कभी किसी नियत के वश भी उलटे कार्य हो जाते हैं । जिनका परिणाम अच्छा होता है, इसी प्रसग में कवि कहता है :—

राम न बन जाते तो कैसे
राम राज्य सार्थक होता
ओ प्रकाण्ड पंडिते ! जगाया था
तूने भारत सोता ।
ओ विप्लव की प्रथम गायिके
क्रान्तिस्वरूपे ओ रानी !
तेरे कारण अमर बन गयी
कवि की कल्याणी वाणी । (पृ० ३६-३७)

काव्य में कुल सात सर्ग हैं। कैकेयी के वर मांगने के प्रसंग से काव्य का आरम्भ होता है और चित्रकूट में कैकेयी की क्षमा-याचना के साथ कार्य का उपसंहार होता है। बहुत अर्थों में काव्य की कथावस्तु आगे वर्णित 'प्रभात' जी के 'कैकेयी' काव्य से उत्कृष्ट बन पाई है। लेकिन भाषा और शैली मे सजीवता नही है।

श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

प्रभातजी ने 'कैकेयी' नाम से १५ सर्गों का एक प्रबन्ध काव्य लिखा जो संवत् २००७ में प्रकाशित हुआ। अयोध्याकाण्ड में राम के वनवास का प्रसंग इस काव्य की कथावस्तु है। वाल्मीकि से लेकर अब तक रामकथा के सम्बन्ध में यही मान्यता चली आयी है कि कैकेयी ने ईर्ष्यावश राम को वनवास भेजने तथा भरत का राज्याभिषेक करने का वरदान राजा दशरथ से माँगा। वाल्मीकि रामायण में यह कहा गया है कि कामुक राजा दशरथ अप्रतिम सुन्दरी कैकेयी के इतने वशीभूत थे कि उसकी कोई बात टाल नही सकते थे। लक्ष्मण ने वनवास को बात सुनकर दशरथ पर क्रोध करते हुए कहा था—

हान्मि एनम् कामुकं पितरम्।

(वा० रा० अयो० सर्ग)

इससे स्पष्ट है कि कैकेयी सुन्दरी थी और दशरथ उस पर मुग्ध थे। वाल्मीकि रामायण के उसी प्रसंग मे कौशल्या के कथन इस तथ्य की प्रमाणिकता पुष्ट करते हैं।

किन्तु तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में इस प्रसंग को पौराणिक रूप दे दिया गया। कैकेयी और उसकी दासी मन्थरा की मति देवगण तथा सरस्वती मिलकर प्रेरित करते हैं कि कैकेयी दशरथ से राम के लिए वनवास का वरदान मागे जिससे राम वन चलें तथा रावण का वध कर देवों एवं इस पृथ्वी का भार दूर करें। यह धार्मिक एवं पौराणिक कल्पना मूल घटना को आत्मसात् कर गयी।

इस प्रसंग को लेकर 'प्रभात' जी ने एक नयी पौराणिक कल्पना की, जिसमें राष्ट्रीयता का पुट विशेष रूप से रखा गया है। वैसे कैकेयी के लाछन-हीन होने का पहला संकेत सन् १९३६ मे शान्तिप्रिय द्विवेदी ने अपने 'कवि और काव्य' में किया था। बाद में कवि और कथाकारों ने उसे और भी पल्लवित किया। प्रभात जी का कहना है—

'कैकेयी वीर पत्नी और वीर माता है, उसमें आर्य संस्कृति की विजय देखने की लालसा है, और वह राम के गुण तथा शौर्य से परिचित है। वह जानती है कि विन्ध्य-पर्वत के उस पार अनार्यों की संस्कृति तथा अत्याचारों का जो प्रसार हो रहा है उसे रोकने में सक्षम राम ही हैं। इसीलिए उसने राम के राज्याभिषेक के समय वनवास भेजने का वरदान दशरथ से मांगा, यह कवि प्रभात की कथा कल्पना है, दशरथ कैकेयी के इन विचारों से सहमत भी हो जाते हैं। उनका कहना है—

कैकेयी ! हे प्रिये ! प्रियतमे !
साक्षी है युग-धर्म-विधाता
सच है तुम ने राम को जननी
किन्तु तुम्हीं माता, न विमाता। (पृ० १३३)

कैकेयी भरत के विह्वल होने पर जो उत्तर देती है उसे भी सुनिए—

राम-वन-गमन निर्वासन है
यह असत्य है भारी।
पाप सोचना भरत ! कि तू है
सिंहासन अधिकारी।
वन की ओर राम का जाना
मानवता की जय है।
आर्य सभ्यता की, चिर मानव-
स्वतंत्रता की जय है। (पृ० १८४)

काव्य की छायावादी शैली कथा को और भी उलझन में डाल देती है और न कथा, न काव्य दोनों में किसी की उपलब्धि इस रचना में नहीं हो पाती। और ऐसे पद—

कैकेयी को लगा कि दुनिया
छलना है, छलना है।
मन बोला-पथ एक, उसी पर
चलना है, चलना है। (पृ० ३६)
आशीष मुझे मिल जाय, चला मैं
युग-प्रकार स्वीकार मुझे,
मंगल हो मेरे पथ का जो,

दो वह थोड़ा सा प्यार मुझे।

\+ + +

कर्तव्य बुलाता मुझे जिधर
मैं आज उधर ही जाता हूँ।
साकेतपुरी के सिंहासन।
मैं तुमको शीश नवाता हूँ (पृ० १४८)

नारी और सुहाग-वत्स ! तू
जगा न होई ज्वाला
अमृत पिये संसार, अमृत की
'जय, मैंने पी हाला। (पृ० १८३)

रामायणी कथा से हमें बरबस निराश करते हैं। कैकेयी को छलना और हाला की कामना की व्याख्या समझ में नहीं आती तथा राम जो थोड़ा प्यार मांगते हैं और साकेतपुरी के सिंहासन को शीश नवाते हैं उससे उनका व्यक्तित्व ही सिमट कर थोड़ा-सा किंवा आज के एक सिने-अभिनेता का सा हो जाता है।

'प्रभात'जी ने कैकेयी के लांछन को दूर करने के लिए कल्पना का जो व्यायाम किया है उसमें उनकी कविता का अभ्यास अवश्य बढ़ा होगा पर लांछन जहाँ का तहाँ रहा, व्यायाम के श्रमबिन्दु तक उस पर न गिरे। श्री हरिऔध जी ने 'वैदेही वनवास' में कथा की कल्पना जिस भोंडे ढंग से की है, उतनी ही अमनोवैज्ञानिक कथानक इस कैकेयी काव्य का है।

रघुवीरशरण 'मित्र'

'मित्र' जी ने सन् १९६१ में 'भूमिजा' नाम से आठ सर्गों का एकखण्ड काव्य लिखा। 'भूमिजा' में सीता के द्वितीय वनवास की कहानी जिसमें राम की अलौकिक लोकप्रियता का प्रेम और सीता की असामान्य सहनशीलता का निदर्शन निहित है। किन्तु मित्र जी ने प्रस्तुत खण्डकाव्य में उस गंभीरता, उदारता तथा गौरवपूर्ण चरितों का स्वरूप नहीं अंकित किया है जो राम की कहानी, वाल्मीकि के लिखे महान् इतिहास के अनुरूप होना चाहिए था। कहानी मे आधुनिकता की छाप केवल कथा के मोड़ तक ही नहीं, उसके अन्तर मे भी समा गयी है जो अनुचित है यद्यपि लेखक ने भूमिका में लिखा है—

'भूमिजा सीता के वनवास जीवन की रचनात्मक कहानी है। घटनाएं बीजरूप से उपयोग में लाया हूँ। वास्तव में मैं सीता के माध्यम से समाज एवं

राष्ट्र से कुछ कहना चाहता है। सीता की चेतना में आधुनिक गतिविधि को उभारना चाहता है, न्याय और निर्माण की आवाज बुलन्द करना चाहता है। सीता जनक-दुलारी होने के साथ-साथ वर्तमान चेतना का प्रतीक भी है।'

इस कथन से स्पष्ट है कि यह काव्य एक आन्दोलन की भाषा में लिखा गया है और उसमें अपनी बात में जोर देने के लिए मूल विषय की ओर नजर न करके लेखक जो कुछ भी कल्पना में आया, जैसे-तैसे शब्दों में उड़ेलता चला गया है और कथा की मूल-चेतना तथा उदात्तता गायब हो गयी है। लक्ष्मण द्वारा जंगल में छोड़ दी गयी निर्वासित सीता का अरण्यरोदन सुनता हुआ कवि नारी आन्दोलन का सत्याग्रही बन गया है और जैसे सीता उसके ध्यान में नहीं, वह केवल नारी को लेकर विकल वाणी में बोल रहा है—

खोये शिशु सा खोज रहा है
पूजा परमेश्वर को।
हाय निराश्रित खोज रहा है
नारी अपने नर को। (पृ० १८)

खैर यहाँ तक तो ठीक था। पर आगे सुन्दरी सीता को वन में बिलखती देखकर जो रावण की आत्मा तड़पती हुई कवि की दृष्टि में उतर आती है—

धनुष तोड़ने वाला कादर
है अपयश के आगे
इसीलिए क्या लंका जीती—
थी तूने हत भागे (पृ० २२)

रावण तो मर गया, भूमिजा—
पर कर लो मन मानी।।
शिव का आराधक रोता था,
तड़प रहा था पानी।
धनुष तोड़कर तुम्हें स्वयंवर
में से ला सकता था,
फोड़ राम का हृदय राम के
यश पर छा सकता था।।
किन्तु धनुष शिव का था, गुरू का
गुरु का गौरव कैसे ढाता ?
शिव का आराधक उपास्य को-

कैसे बात गिराता।
जितना प्यार दशानन को था
नहीं राम को होगा।
तेरे घर भिखारी बनकर—
आया, हर दुख भोगा॥
तेरे लिए कुटुम्ब मिटाकर
रामचंद्र से हारा
सीता से था प्यार, राज्य कब
था रावण को प्यारा॥ (पृ० २४-२५)

यह नितान्त अनुचित है। प्रेम में असफल किसी युवक का यह प्रलाप मात्र है, महावीर रावण के चरित को शायद कवि ने अपने विचार से उपर उठाया है, पर उससे बहुत नीचे गिरा दिया है। विश्वविजयी रावण ने धनुष यज्ञ के वर्षों बाद लंका राज्य का मोह त्यागकर, सती सीता के लिए युद्ध की विडम्बना मोल ली थी। कवि का यह कहना, कितना निराधार और हास्यापद है।

सीता पर यह काव्य नारी की अदम्य शक्ति का चित्र किसी भी स्थल पर नहीं उतार पाया है। छिछले प्रेम के शब्द-अर्थ ही बैठाने की कोशिश की गयी है। राम के मुँह से इस कथन को सुनिए—

मेरे दोष बहुत हैं देवी!
पुण्य यही है मेरा।
मेरे जैसे विष घट पर भी
प्यार रहा है तेरा॥
तुम ऐसे ही खिली फूल-
कांटों में जैसे खिलता।
तुम ऐसे ही मिली मार्ग
भूले को जैसे मिलता। (पृष्ठ० १४२)

राम सीता के प्यार पर निछावर हैं। भूले राम को सीता रूपी मार्ग मिला था, ऐसे कथन यह सिद्ध करते हैं कि कवियत्री ने सीताराम का केवल नाम लेकर जो चाहा है अनाप-शनाप बका है। धनुष यज्ञ की कठोर परीक्षा, जिसमे देश के ख्यातनाम वीरों का पराक्रम भी असफल रहा' धनुष तोड़कर सीता को राम ने वरण किया था। यहां कवि की दृष्टि में भूले राम को सीता मिल गयी थीं, मार्ग रूप मे, इसलिए वे सीता के प्यार के लिए भिखारी हैं। इस काव्य में

सीताराम के नाम निकाल दिये जायं, तो कोई इसमें राम काव्य की छाया न पा सकेगा।

श्रीमती मायादेवी शर्मा

मायादेवी शर्मा का 'शबरी' खण्डकाव्य संवत् २०२० में प्रकाशित हुआ। इसमे छोटे-छोटे १० सर्ग हैं, जिनमें आत्म वंदना और आश्रम नाम के दो सर्ग उपक्रम के रूप मे हैं, एक मे नारी जीवन की उपेक्षा के प्रति आक्रोश है और दूसरे में आश्रम जीवन की महिमा का गान है। शेष आठ सर्गो मे शबरी द्वारा राम-दर्शन की मूलकथा कुछ मौलिक प्रसंगों के साथ प्रस्तुत की गयी है, इन मौलिक प्रसंगों में अछूतोद्धार तथा नारी की शिक्षा, तपस्या, समाज में विशिष्ट स्थान के प्रति श्रद्धा युक्त अभिव्यंजना है। इन्हीं प्रसंगों मे उस पौराणिक कथा का भी समावेश है, जिसमें यह कहा गया है कि शबरी के निरादर से आश्रम के पंपा सरोवर का जल दूषित हो गया था उसमें कीड़े पड गये थे, राम के आदेश से शबरी ने जब उस सरोवर के जल का स्पर्श किया तब वहाँ का जल पुनः स्वच्छ और सुस्वाद हो उठा और सभी ऋषि बड़े आश्चर्य मे पड़ गये।

शबरी रामायणी कथा के लोकप्रिय पात्रों मे हैं विशेषतः भगवान् और भक्त के सहज प्रेम-जन्य सम्बन्ध के उदाहरणों में उसकी याद हमारा साधारण लोक भी करता है, भगवान की भक्ति के अधिकारी बनकर ऐतिहासिक और पौराणिक काल के बीच जिन अनेक उपेक्षित जाति के मनस्वियों ने अपने निर्मल चरित्र से लोक के सहज जीवन में रस ला दिया है, शबरी का नाम उनमें सर्व-प्रथम है। शबरी को राम ने जिस रूप में ग्रहण किया उससे न केवल शबरी की आत्मा ही आप्यादित हुई वरच पीछे के इतिहास में शबरी की समानधर्मा नीच मानी जाने वाली जातियों ने शबरी के प्रति राम को उस उदार दृष्टि का लेखा कर अपने को भी कृतकृत्य समझा, जिसके परिणाम यह हुआ कि ऋषि-कुटीरों और राज-भवनों की तुलना में अनुराग पूर्ण साम्राज्य छाया रहा और छाया है। प्रस्तुत शबरीखण्ड काव्य में इन तथ्यों का एक प्रस्तुतीकरण सरल भाषा और स्वाभाविक भाव सरणि में है।

राम दर्शन के प्रति शबरी की उत्कंठा का अच्छा चित्रण कवियित्री ने किया है। इसके पूर्व शबरी के गुरु मतंग ऋषि ने जो उसे राम के दर्शन का आश्वासन भरा उपदेश दिया है, उसमें राम दर्शन की एक व्यापक झांकी भी

प्रस्तुत कर दी गयी है, सरल भाषा में होने के कारण वह बहुत प्रभावशाली है। राम को ब्रह्म का रूप दिया गया है—

ये घर घर में बसते हैं
प्रत्येक हृदय में रमते।
ये सूर्य चन्द्र में रहते
तारों में टिम-टिम करते।
अति आतप, हिम, वर्षा को
वे पर्वत बन कर सहते।
रवि शशि आते जाते हैं
वे अचल लोक से रहते। (पृ० २६)

और फिर इन रूपों को समेटकर राम में आरोपित कर दिया गया है—

इस समय रमें है प्रभु व
उस चित्रकूट के वन में
आयेंगे मैं कहता हूँ—
तेरे भी पर्ण भवन में। (पृ० २७)

अछूतोद्धार मानव-प्रेम की कसौटी है। इसी भाव की व्यंजना कवयित्री ने की है—

प्रभु ने बदरी फल खाये—
या प्रेम-अमृत में डूबे।
यह जान सकेंगे वे क्या
जो रहे अभी अनडूबे? (पृ० ५२)

राम की भक्ति-शरणि की अधिक अभिव्यक्ति हो प्रस्तुत खण्ड-काव्य में है और अन्त में शबरी के दिव्य-लोक जाने की पौराणिक मान्यता भी काव्य में चित्रित है—

कहते कहते शबरी ने
प्रभु को आंखों में देखा।
खिंच गयी गगन में तब तक
नक्षत्रज्योति की रेखा।
सेवा का,जन की श्रद्धा को

सीताराम के नाम निकाल दिये जायं, तो कोई इसमे राम काव्य को छाया न पा सकेगा।

श्रीमती मायादेवी शर्मा

मायादेवी शर्मा का 'शवरी' खण्डकाव्य संवत् २०२० में प्रकाशित हुआ। इसमें छोटे-छोटे १० सर्ग हैं, जिनमें आत्म वंदना और आश्रम नाम के दो सर्ग उपक्रम के रूप मे हैं, एक में नारी जीवन की उपेक्षा के प्रति आक्रोश है और दूसरे में आश्रम जीवन की महिमा का गान है। शेष आठ सर्गों में शवरी द्वारा राम-दर्शन की मूलकथा कुछ मौलिक प्रसंगों के साथ प्रस्तुत की गयी है, इन मौलिक प्रसंगो में अछूतोद्धार तथा नारी की शिक्षा, तपस्या, समाज में विशिष्ट स्थान के प्रति श्रद्धा युक्त अभिव्यंजना है। इन्हीं प्रसंगों मे उस पौराणिक कथा का भी समावेश है, जिसमें यह कहा गया है कि शवरी के निरादर से आश्रम के पंपा सरोवर का जल दूषित हो गया था उसमें कीड़े पड़ गये थे, राम के आदेश से शवरी ने जब उस सरोवर के जल का स्पर्श किया तब वहाँ का जल पुनः स्वच्छ और सुस्वाद हो उठा और सभी ऋषि बड़े आश्चर्य में पड गये।

शवरी रामायणी कथा के लोकप्रिय पात्रो में हैं विशेषतः भगवान् और भक्त के सहज प्रेम-जन्य सम्बन्ध के उदाहरणो में उसकी याद हमारा साधारण लोक भी करता है, भगवान की भक्ति के अधिकारी बनकर ऐतिहासिक और पौराणिक काल के बीच जिन अनेक उपेक्षित जाति के मनस्वियों ने अपने निर्मल चरित से लोक के सहज जीवन में रस ला दिया है, शवरी का नाम उनमें सर्व-प्रथम है। शवरी को राम ने जिस रूप में ग्रहण किया उससे न केवल शवरी की आत्मा ही आप्यादित हुई वरंच पीछे के इतिहास में शवरी की समानधर्मा नीच मानी जाने वाली जातियों ने शवरी के प्रति राम की उस उदार दृष्टि का लेखा कर अपने को भी कृतकृत्य समझा, जिसके परिणाम यह हुआ कि ऋषि-कुटीरों और राज-भवनो की तुलना में अनुराग पूर्ण साम्राज्य छाया रहा और छाया है। प्रस्तुत शवरीखण्ड काव्य मे इन तथ्यों का एक प्रस्तुतीकरण सरल भाषा और स्वाभाविक भाव सरणि में है।

राम दर्शन के प्रति शवरी की उत्कंठा का अच्छा चित्रण कवियित्री ने किया है। इसके पूर्व शवरी के गुरु मतंग ऋषि ने जो उसे राम के दर्शन का आश्वासन भरा उपदेश दिया है, उसमें राम दर्शन की एक व्यापक झांकी भी

प्रस्तुत कर दी गयी है, सरल भाषा में होने के कारण वह बहुत प्रभावशाली है। राम को ब्रह्म का रूप दिया गया है—

ये घर घर में बसते हैं
प्रत्येक हृदय में रमते।
ये सूर्य चन्द्र में रहते
तारों में टिम-टिम करते।
अति आतप, हिम, वर्षा को
वे पर्वत वन कर सहते।
रवि शशि आते जाते हैं
वे अचल लोक से रहते। (पृ० २६)

और फिर इन रूपों को समेटकर राम में आरोपित कर दिया गया है—

इस समय रमें है प्रभु व
उस चित्रकूट के वन में
आयेंगे मैं कहता हूँ—
तेरे भी पर्ण भवन में। (पृ० २७)

अछूतोद्धार मानव-प्रेम की कसौटी है। इसी भाव की व्यंजना कवयित्री ने की है—

प्रभु ने बदरी फल खाये—
या प्रेम-अमृत में डूबे।
यह जान सकेंगे वे क्या
जो रहे अभी अनडूबे ? (पृ० ५२)

राम की भक्ति-शरणि की अधिक अभिव्यक्ति ही प्रस्तुत खण्ड-काव्य में है और अन्त में शबरी के दिव्य-लोक जाने की पौराणिक मान्यता भी काव्य में चित्रित है—

कहते कहते शबरी ने
प्रभु को आंखों में देखा।
खिच गयी गगन में तब तक
नक्षत्रज्योति की रेखा।
सेवा का,जन की श्रद्धा को

गौरव कितना ? सबने माना
वन-वन में
शबरी का दिव्य लोक जाना ।   (पृ० ६६)

पर इतना सब होने पर भी नारी जीवन की वर्तमान जागृति अछूतोद्धार तथा सामाजिक जागरण के स्वर मे काव्य गुंजित है। रामकथा का यह प्रसङ्ग एक नवीनता के साथ प्रस्तुत हुआ है—

ये बेर हमारे खाकर
प्रभु ने हमको अपनाया
इस वन्य बेर ने जीता
राजन्य नगर की माया ।   (पृ० ६५)
पर उनका दंभ मिटाकर
पहले शबरी के घर जा,
आदर्श नया ही रक्खा,
राघव ने वन्य प्रजा का ।
अब अमृत प्रभा-सी बरसी
भीलनी और भीलों पर
चढ़ गया घड़ों भर पानी
उन जप-तप-गर्वीलों पर ।   (पृ० ६५)

आचार्य तुलसी

आचार्य तुलसी ने 'अग्निपरीक्षा' नाम से एक खण्डकाव्य सन् १६७० में लिखा है। इसमे आठ सर्ग हैं। इसमे राम द्वारा सीता के त्याग और अग्नि परीक्षा की कहानी है। यह कहानी विमलसूरिकृत प्राकृत भाषा में रचित 'पउमचरित' के आधार पर है। इसमें सीता की अग्नि परीक्षा, सीता के द्वितीय वनवास के बाद जब राम से उनका मिलन होता है, अपने चरित की सत्यता सिद्ध करने के लिए होती है। इस काव्य में नारी-पक्ष की युगानुसार पैरवी कवि ने की है इसके कथानक और वर्णन में कुछ सन्दर्भ ऐसे चित्रित किये गये, जिनको पढकर हिन्दू समाज में बडा रोष जागृत हुआ, वातावरण विरोध उग्र होता गया, तब पुनः आचार्य तुलसी ने, इस 'अग्नि परीक्षा' के बहुत से स्थलो को बदल दिया और १६७२ ई० मे इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ, जिसमे कोई आपत्तिजनक बात नहीं रह गयी। आचार्य तुलसी जैन

आचार्य हैं इनकी जन्म भूमि राजस्थान में लाडनूं स्थान है। इन्होंने अणुव्रत आन्दोलन का संचालन किया था।

'अग्नि परीक्षा' के सातवें सर्ग में राम के कहने पर अपनी शुद्धता प्रमाणित करने के लिए सीता अग्नि परीक्षा देती हैं। जलती हुई आग में जब सीता बैठ गयी, अग्नि में शीतलता आ गयी, पुन: नया दृश्य उपस्थित हो गया, पानी का समुद्र ही उमाड़ता दिखायी दिया, भूमि डूबने लगी, लोक त्राहि-त्राहि करने लगा। सभी सीता से अपनी रक्षा की प्रार्थना करने लगे, तब सीता ने अपने दोनों हाथों से सारे प्रवाह को समेट कर सीमित कर दिया—

दोनों हाथों से समाहित कर, आकृष्ट प्रवाह,
सीता ने सीमित किया, सुन जनता की आह,

इस काव्य की भाषा, भाव और कथा वस्तु द्विवेदी युग के काव्यों की तरह है जिसमें स्थल-स्थल पर कवि ने अनेक सामाजिक आदर्शों तथा नारी, विद्रोहों को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। लव-कुश के इस चित्रण में बालक का आदर्श निहित है—

प्रात: उठते ही करते हैं महामंत्र का स्मरण सदा
नित्य नियम कर दोनों छूते पुज्य जनों के चरण सदा
नियत समय पर खेल कूद है नियत समय पर विद्याभ्यास,
नियत समय पर खाना-पीना करते सर्वांगीण विकास।
(पृ० ६७)

नारी के प्रति कवि बहुत ही आस्थावान् है—

सती ढूंढती फिर रही कहीं सुरक्षित स्थान
म्लानमना निम्नानना कांप रहे हैं प्राण।
जाए तो जाए कहां, सुनता कौन पुकार
अपने इस नारीत्व को देती है धिक्कार।
अपमानों से भरा हुआ है नारी जीवन।
अरमानों से भरा हुआ है नारी जीवन।
अभियानों से डरा हुआ है नारी-जीवन
बलिदानों से घिरा हुआ है नारी-जीवन। (पृ० ६६)

रामचरित के अन्य पात्रों को लेकर भी नयी सम्भावनायें कविओं ने की हैं, कहीं लाछन लगाये है, कही लांछन छुड़ाए है। जैसे मद्रास के श्री कैलाशम ने 'कैकेयी' शीर्षक से अंग्रेजी में एक बड़ी कविता लिखी थी, जिसका प्रकाशन वहाँ जरनल 'त्रिवेणी' में सन् १९३१ में हुआ था। उस कविता का अनुवाद श्री शिवशंकर त्रिपाठी ने 'अभिशप्त साम्राज्ञी' नाम से १९६५ में किया, जो श्री 'वेंकटेश्वर समाचार' मे प्रकाशित है, उसकी कुछ पंक्तियां हैं—

> रहा पति प्राप्त प्रणय जो
> वह बदल गया, वात्सल्य बना,
> तब मोह हुआ
> चाहा तुमने,
> हो जाय व्याप्त अधिकार
> पुत्रका
> सकल अयोध्या के कण-कण में।

नये दृष्टिकोण से प्रेरित श्री शिवशंकर त्रिपाठी की अन्य कविता 'धरणिजा-परिचय' है। जो १९६१ ई० मे 'अमरविभूति' मे प्रकाशित हुई थी।

प्रसिद्ध कवि और नाट्यककार डा० रामकुमार वर्मा ने इधर १९७१ ई० मे एक नया काव्य 'उत्तरायण' नाम से लिखा है। जिसमें सीता के द्वितीय वनवास की कथा को ही कल्पित ठहराया है।

वस्तुत: रामचरित पर इस तरह के दृष्टिकोणो को कविता के माध्यम से उपस्थित करने की परम्परा द्विवेदी-युग से ही चली आ रही है, यह सब नये युग और नये चिन्तन का प्रतीक है।

रामकथा पर लिखी गयी इन रचनाओं के अतिरिक्त कुछ स्फुट और प्रबन्ध अन्य रचनाएँ भी हैं जो प्राय: पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हैं। इनमें ही रामचरित उपाध्याय की 'विभीषण' नाम की कविता, जो सरस्वती मे प्रकाशित हुई थी, जिस पर बड़ा विवाद उठा था। 'कैकेयी' नाम की एक कविता १९२३ मे माधुरी में गुलाब कवि की प्रकाशित हुई थी। गया के गुलाब खंडेलवाल का एक 'अहल्या' नाम का खंडकाव्य धारावाहिक रूप में काशी की 'प्रसाद' पत्रिका में प्रकाशित हुआ है।

श्री उमाकान्त मालवीय ने 'अभिशप्त अमर ज्योति' खण्ड काव्य में तीन नये प्रसंग रामचरित पर दिये हैं। आभास का संचार :—जड़ अमरता के सन्दर्भ में एक कर्मठ क्षणभंगुरता का तरसते हुए नितान्त अधुनातन संवेदनाओं को

उजागर करता हुआ यह परशुराम का आत्मकथ्य है। आत्मीय हन्ता :— इन्हीं सन्दर्भों में यह विभीषण का आत्मकथ्य है। सामर्थ्य की असमर्थता इन्हीं सन्दर्भों में यह हनुमान का आत्मकथ्य है। यह तीनों प्रसंग उमाकान्त मालवीय के खण्ड काव्य 'अभिशप्त' अमर वेली के तीन सर्ग हैं।

देवराज दिनेश ने विभीषण नाम से मुक्तक काव्य लिखा है। यह विभीषण का देशद्रोही रूप ही उजागर करता है।

सीता के चरित्र को लेकर राम के अन्तर्द्वन्द को चित्रित करनेवाला राम का अन्तर्द्वन्द एस. आर. अरविन्द का राम 'का अन्तर्द्वंद्व' अत्यन्त विवादास्पद मुक्तक काव्य है।

रामकथा पर नवीन दृष्टि

नाटक

राम भक्ति के अविर्भाव के साथ ही रामकथा का नाटकीय रूपान्तर उत्तर भारत में लोकजीवन का प्रमुख आकर्षण रहा है। संस्कृत के कवियों में अनेक सिद्धान्त कवियों द्वारा रामकथा को लेकर नाटक रचना को लेकर प्रयोग किया गया है। संस्कृत के आदि नाटककार भास ने भी रामकथा पर दो नाटक—'प्रतिमा' और 'अभिषेक' नाटक लिखे थे। भास के नाटकों को देखने से रामकथा पर नाटक खेलने की लोक-अभिरुचि का पता चलता है आठवीं-नवीं शताब्दी के आस-पास भवभूति और राजशेखर ने एक तरह से पूरी राम कथा को ही नाटक के रूप में लिखा। भवभूति के 'महावीर चरित' तथा 'उत्तर' रामचरित' एवं राजशेखर का 'भास रामायण' नाटक रामकथा के अभिनय की व्यापकता के द्योतक हैं। पीछे भी संस्कृत में रामकथा सम्बन्धी नाटकों की रचना का क्रम ही नहीं,टूटा। 'हनुमन्नाटक' भी पूरी रामकथा का नाटकीय रूपान्तर है। संस्कृत की देखादेखी मध्ययुगीन हिन्दी में भी, रामचरित को राम की लीला को नाटक के रूप में प्रस्तुत करने की अभिरुचि भक्तों और कवियो के बीच जागती रही जिसके फलस्वरूप रामायण, महानाटक; हनुमन्नाटक, आनन्द रघुनन्दन नाटक मध्ययुगीन हिन्दी में लिखे गये और यदि इन कृतियों का समग्र रूप में अभिनय के लिये उपयोग न किया गया तो भी रामलीला रूप में रामचरित का जो नाटक कई दिनों तक खेला जाता है उनमें इन कृतियों के

संवादों का प्रयोग प्रायः हुआ ही करता है। इन कृतियों की चर्चा पिछले तीसरे अध्याय में की गयी है।

पर हिन्दी के आधुनिक युग मे रामकथा पर जो नवीन दृष्टि डाली गयी उस प्रवाह में नाटकों की रचना रामकथा में अभिनव निरूपण को ही लेकर हुई। कुछ नयी ऐतिहासिक खोज, चरितों के सम्बन्ध में नयी मान्यताएँ वाल्मीकि की रामकथा का नया प्रस्तुतीकरण के दृष्टिकोण ही राम साहित्य को लेकर लिखे आधुनिक नाटकों में पाये जाते हैं। यद्यपि रामचरित पर आधारित नाटकों का प्रणयन बहुत थोड़ी मात्रा में हुआ है तथापि वह महत्व-पूर्ण है।

सन् १६२० के बाद नाटक के क्षेत्र में एकांकीकला का जो आविर्भाव हुआ उसने इस ओर लेखकों की प्रवृत्ति अधिक थी। समर्थ लेखकों ने प्रायः रामकथा को अपने एकांकियों का विषय बनाया है। किन्तु लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'चित्रकूट' को छोड़कर पूरा नाटक रामकथा पर इस काल में भी दूसरा ऐसा नहीं लिखा गया, जिसे प्रशस्त साहित्य की नाटक कोटि में रखा जा सकेगा। सेठ गोविन्ददास का 'कर्तव्य' नाटक रामकथा पर पूरी तौर से आधारित नहीं है। श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'चित्रकूट' के पहले 'अशोकवन' नाम से एकाकी ही लिखा था।

रामकथा पर नाटक और एकांकियों की यह संख्या हिन्दी में उंगलियों पर गिनने योग्य है, उसका कारण हिन्दी में रंगमंच का अभाव भी है और राम-कथा पर हिन्दी काव्य साहित्य में अत्यधिक पिष्टपेषण भी है जिसके कारण नाटक रचना में अभिनव दृष्टि के लिए अवकाश ही नहीं रहा। जब तक कोई अभिनव तथ्य सामने न हो कथानक को नाटक का विषय आज का बौद्धिक लेखक कैसे बनाये।

सेठ गोविन्ददास

रामकथा पर नाट्य साहित्य की पहली रचना जिसने रामचरित को नवीन दृष्टि से आंका सेठ गोविन्ददास का 'कर्तव्य' नाटक है। इसका प्रका-शन सन् १६३५ के आस-पास हुआ। 'कर्तव्य' नाटक के पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध दो भाग हैं। पूर्वार्द्ध में रामचरित है और उत्तरार्द्ध में कृष्ण चरित।

लेखक ने इस नाटक में यह दिखाना चाहा है कि कर्तव्य पालन में किस प्रकार अपना सर्वस्व निछावर कर देना पड़ता है, और हमारी भारतीय संस्कृति

के दो विराट् चरित राम और कृष्ण केवल अपना ही सुख-दुख नहीं अपने स्त्री, भाई, पुत्र सबको निछावर कर तब उस कर्त्तव्य पालन में समर्थ हुए हैं जिसने उन्हें प्रजा की दृष्टि में परमात्मा की कोटि में बैठा दिया।

'कर्तव्य' का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध अपने में पूर्ण नाटक है। पूर्वार्द्ध में जिसमें रामचरित है, कुल पाँच अंक हैं प्रत्येक अंक अनेक दृश्यों में विभाजित है। इन पाँचों अंकों की कथा का चुनाव लेखक ने बड़ी प्रतिभा से किया है। पाँचों अंकों की कथावस्तु का भाग रामायण के अत्यन्त मर्मस्पर्शी स्थल हैं।

पहले अंक में कथा का वह भाग है जहाँ राज्याभिषेक के लिए तैयार होने वाले राम को दशरथ की अस्वस्थता की सूचना मिलती है और तुरन्त ही वन जाने का प्रसङ्ग आ जाता है। इसके बाद दूसरे अंक की कथा तेरह वर्ष बाद शुरू होती है। भ्रातृ-भक्ति को विषयान्तर समझ कर नाटक में स्थान नहीं दिया गया है। तेरह वर्ष बाद राम पंचवटी में हैं। वहाँ छल से सीता का हरण होता है। राम सीता के वियोग में विकल घूमते-घूमते सुग्रीव के सखा बनते हैं और अन्याय होते हुए भी मित्र के प्रति अपना कर्तव्य समझकर छल से बालि का वध करते हैं। तीसरे अंक की कथा सीता के अशोकवन में निवास से शुरू होती है। शक्ति के प्रहार से मूर्छित लक्ष्मण की रक्षा कर राम कितनी कठिनाई से रावण को समर में विजय कर पाते हैं पर उसके बाद ही सीता के पुनर्ग्रहण की बात आते ही उनकी अग्नि-परीक्षा लेकर मर्यादा का कर्तव्य निभाते हैं। चौथे अंक में अयोध्या के राजसिंहासन पर आरूढ़ होकर भी राम को शान्ति नहीं मिलती, सीता के प्रति प्रजा में अपवाद फैलता है अतः सीता का निर्वासन राम को करना पड़ता है। साथ ही ब्राह्मण बालक की अकाल मृत्यु से रक्षा के लिए धार्मिक न्याय में बँधकर शूद्र तपस्वी शम्बूक का वध भी करना पड़ता है। पाँचवें अंक में राम के अश्वमेध-यज्ञ की कहानी है जिसमें राम अपनी आँखों से कुपित सीता का पाताल प्रवेश देखते हैं। कर्त्तव्य पालन में ही लक्ष्मण के प्राणों से उन्हें हाथ धोना पड़ता है। इस पाँचवें अङ्क में फिर गुरु वशिष्ठ ही राम के शव को लेकर दाह-संस्कार के लिए प्रजा का आवाहन करते हैं और नाटक अत्यन्त करुण हो उठता है। कर्त्तव्य पालन करने वाले महान् पुरुष की गति अन्त में क्या होती है इसे राम के ही शब्दों में सुनिए—

'आह ! लक्ष्मण आह ! लक्ष्मण, यह कैसी विडम्बना है ! यह कैसा कर्तव्य है !"

(पृ० ७५)

"अब मैं परब्रह्म परमात्मा हो गया हूँ, क्योंकि प्रजा की इच्छा के अनुसार मैंने सब कुछ किया अपने सर्वस्व की आहुति दी। यह मनुष्य हृदय ही विलक्षण वस्तु है।" (पृ० ८८)

'नाथ मैं समझता था कि कर्तव्य पालन से संसार को सुखी करने के संत मनुष्य स्वयं भी सुखी होता है, पर नहीं, यह मेरा भ्रम ही निकला, मैं तो सदा दुख में पीड़ित रहा भगवान।" (पृ० ६४)

सुग्रीव की रक्षा के लिए छलपूर्वक वालि के वध को हिचकिचाते हुए पर अन्त में उस पर दृढ होकर राम कहते हैं—

'अच्छी बात है, लक्ष्मण, यही हो, अपने कर्तव्य की ओर इतना लक्ष्य रखते हुए भी यदि राम के हाथ से पाप ही होना है तो वही हो, लक्ष्मण वही हो।' (पृ० ३६)

कर्तव्य पालन के बाद अपना सर्वस्व निछावर कर पुरुष जितना महान् और उज्ज्वल हो जाता है वह इस नाटक मे नहीं है। राम पश्चात्ताप करते हुए रंगमंच पर दिखाये गये हैं। उनका प्राणहीन शरीर भी रंगमंच पर दर्शक के सामने आता है, वशिष्ठ उनके दाह संस्कार के लिए चिन्तित हैं। नाटक की यह परिसमाप्ति करुण ही नही हीन भी हो गई है। वैसे नाटक सम्पूर्ण रूप में मर्मस्पर्शी है और रामचरित मे एक नयी दृष्टि पैदा करता है।

कृपि-यज्ञ

सेठ जी की दूसरी कृति 'कृपि यज्ञ' एकाकी है जो रामकथा के एक अंश से सम्बन्धित है। यह कथा सेठजी ने वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड मे ली है, और उसे नाटक का रूप दे दिया है। त्रिजट नाम का एक ब्राह्मण वेद के स्वाध्याय के बाद हल चलाकर खेती करने का निश्चय करता है। राम वन गमन के समय ब्राह्मणों को बहुत सा दान देते हैं, यह ब्राह्मण भी वहां पहुँचता है, इसके दूसरे सहपाठी ब्राह्मण इसको दान देने मे मना करते हैं पर राम उसके ब्राह्मणत्व की परीक्षा लेते हैं और प्रसन्न होकर एक हजार गउएं तथा स्वर्ण उसे दान मे देते हैं। इसके बाद राम तो वन गये। इधर त्रिजट ने एक हजार गउओं और स्वर्ण की सहायता से अपनी खेती की अधिक तरक्की कर ली। १४ वर्ष की अवधि में जब राम लंका विजय के बाद अयोध्या लौटे तो त्रिजट के गो वंश का विपुल विस्तार दूर-दूर तक लहलहाती खेती देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। त्रिजट केवल अपने खाने पीने के लिए आवश्यक अन्न

रखकर शेष अन्न को योग्य अधिकारी पात्रों में दान कर देता है। गुरुकुल तथा औषधालय के लिए उसका उपयोग होता है। राम ने यह सब देखा और कहा मेरे राज्य मे इस प्रकार के कृषि यज्ञों की सदा प्रतिष्ठा होगी। एकांकी के दो पक्ष हैं। हलवाहो ब्राह्मण अपनी जाति से च्युत नहीं होता और खेती सहयोग से की जाय और पैदावार को आपस में वितरण करके उसका उपयोग किया जाय। यही रामराज्य का आदर्श है।

इस एकांकी के लिखते समय सेठ जी के सहकारी खेती के आन्दोलन का निश्चित रूप से प्रभाव पड़ा है। राम जब त्रिजट के आश्रम पर पहुँचते हैं तो भरत त्रिजट के यज्ञ का परिचय इस प्रकार देते हैं:—

'हां महाराज! गत चौदह वर्षों मे आपने भूभार उतारा, दुष्टों से पृथ्वी को रहित किया। अवध मे आर्य त्रिजट ने भी कम काम नहीं किया है। आप इन्हें एक सहस गउएं दे गये थे। चौदह वर्षों में उनकी संख्या [illegible] गयी है, जो वृषभ जनमें उनसे योजनों ऊसर भूमि [illegible] है, जहां अन्न, कपास, इक्षु राउ, दाक इत्यादि उत्पन्न किये गये हैं।'

राम ने त्रिजट से कहा—

'तो आर्य त्रिजट, आपने संसार के सामने एक [illegible] उपस्थित किया है। रामराज्य मे सदा इस प्रकार के [illegible] रहेगी।'

शबरी

साथ चलती रहो और इस आश्रम मे आगन्तुको को सच्चा विश्राम मिला तो अतिथि के रूप में ही कभी तुझे भगवद्दर्शन होंगे ।'

बस इतना ही कथा एकांकी मे आ पाती है फिर आगे तो एक पात्री नाटक गीति नाट्य बन गया है और श्रव्य काव्य भी गीति नाट्य है बस उसमें रंगमच और दृश्य का विधान नही है। शबरी अपना अनुराग विविध प्रकार मे राम के प्रति व्यंजित करती है। इस प्रसंग को पढते हुए गुप्त जी के साकेत के नवम-दशम् सर्ग की अनुभूति जाग उठती है।

कहना न होगा कि सेठ जी राम के प्रति शबरी की श्रद्धा को कही-कही राम रसिक सम्प्रदाय की मधुरा भक्ति में परिणत कर देते हैं—

(खडी होकर गभीरता से विचारती हुई) 'क्या ही भला हो जो वे वयस्क मेरे आगे हो जैसी मैं नही हूँ। चाहे चंचल चपल हो। आवें तव बालकों का जीवन ले आवें वे फैलावें वही सर्वत्र मैंने नही देखा जो। यद्यपि मुझे संकोच होता है न जाने क्यों। बालको के साथ खेलने मे सदा सर्वदा किन्तु पाऊं मैं समवयस्क यदि प्रभु को आतिथ्य से ही क्यो रिझाऊ कौतुको से भी।

(कुछ रुककर)

केवल रिझाऊं ही ? स्वय भी मैं न रीझूं क्या ? हा, हा आप रीझूंगी कभी न जैसी रीझी मैं।'

इस कृति के ये प्रसग, और भी दूसरे ऐसे वर्णन शबरी के शबरी-जीवन और राम के वनवासी जीवन एवं उनकी उदात्त भक्त वत्सलता के प्रसग उपस्थित करने मे वे पूर्ण क्षम नही हुए हैं।

श्री सद्गुरुशरण अवस्थी

अवस्थी जी ने 'बालि वध' नाम से रामचरित सम्बन्धी एक एकाकी सन् १६४० में लिखा, जो अप्रैल को १६४० की माधुरी मे प्रकाशित हुआ था। अवस्थी जी का दूसरा नाटक 'मझली रानी' भी सन् १६४० के आस पास ही प्रकाशित हुआ।

बालिवध मे कुल चार दृश्य हैं, इसका दो ही मुख्य पृष्ठभूमि है—(१) अनार्यों को पराजित कर राम द्वारा आर्य संस्कृति का प्रसार (२) बालि को निर्दोष बनाना तथा राम द्वारा छिपकर बालि का वध किए जाने को दूसरा रूप देना।

बालि और उसकी स्त्री तारा अपने आदिवासी जनों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सचेष्ट हैं। तारा कहती है—

'प्रिय प्रजा की रक्षा के लिए अंगद के वात्सल्य के लिए, वानर कुल की मर्यादा के लिए, आदि निवासियों के अक्षुण्ण नेतृत्व के लिए और हमारे सर्वस्व। तारा के सुहाग के लिए इस आगत आपत्ति मे सतर्क रहिए।'

राम ने अपने संवाद मे बालि से स्पष्ट किया है कि मैंने तुम्हें छिपकर नही मारा बल्कि मित्र सुग्रीव की रक्षा में मैं ऐसा आतुर हो उठा कि मेरा बाण अपने आप छूट गया। और उसके लक्ष्य तुम बन गये—

'आपका अन्तिम प्रहार सुग्रीव के मर्मस्थल पर वज्र की भांति बैठने के लिए उत्तेजित हुआ था। मुझे तुरन्त यही किया कि यदि मैं सत्वर आपको इस बाण से आविद्ध करके निष्क्रिय नही कर देता तो मित्र का निधन निश्चय है बस इसी प्रेरणा में यह तीक्ष्ण बाण छूट गया।

मैं भाव था अथवा विचार, यह समझ न पाया।'

वीरधर्म पालन के कारण बालि बड़ी निर्भीकता और आनन्द की अवस्था मे अपना प्राण छोड़ता है और अपने प्रियपुत्र अंगद को आज्ञा देता है कि वह उसके वक्ष में चुभे हुए, तीक्ष्ण बाण को अपने हाथों से खीच ले।

अवस्थी जी ने एकांकी में आर्य और अनार्य संस्कृति के संघर्ष के साथ साथ राम और बालि को मानसिक दशाओ को अंकित करने का भी प्रयत्न किया है। यद्यपि उन्हे उतनी सफलता मिल नहीं सकी है। शेष पात्र लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव आदि कथा के विकास में सहायक मात्र ही हैं।

लेकिन रामचरित पर अभिनव दृष्टिकोण लेकर लिखे जाने के कारण नाटक शिल्प की दृष्टि से असफल होने पर भी विषय की दृष्टि से एकांकी नाटक का पर्याप्त महत्व है। नाट्य शिल्प अत्यन्त शिथिल है। एकाकी के लम्बे संवाद अत्यन्त अस्वाभाविक हैं। उनमे न गति है और न शक्ति।

मझली रानी

अवस्थी जी का 'मझली रानी' नाम से एक नाटक सन् १६४० के आस-पास प्रकाशित हुआ। इस नाटक के द्वारा अवस्थी ने वही भाव और विचार व्यक्त किये हैं जो कुछ वर्ष के बाद केदारनाथ मिश्र प्रभात ने अपने 'कैकेयी' काव्य में व्यापक रूप से अभिव्यक्त किया। इसे नाट्यकृति कहना तो उचित न होगा, न तो नाट्य शिल्प की वह योजना है जो रंगमंच के लिए

आवश्यक है और कथा वस्तु अत्यन्त लम्बी है। राम के जन्म के पहले से कथा का आरम्भ होता है, और समाप्ति रावण-विजय के बाद होती है। ऐसे नाटक का खेला जाना रामलीला नाटकों की पद्धति में ही संभव हो सकता है। पात्रों की संख्या ३३ है।

नाट्यकृति के रूप में तो नहीं, रामकथा में नये विचार के पैदा करने के रूप में इस कृति का विश्लेषण किया जाना चाहिए। लेखक पूरी रामकथा को कैकेयी को मुख्य रूप से दृष्टि में रखते हुए कह तो जाता है, लेखक की दृष्टि से कैकेयी आर्य-संस्कृति के विस्तार की मुख्य सूत्रधार है। राम को वन भेजकर उसने यही कार्य किया है, वह कहती है कि राम को वन भेजने में मुझे यदि अपयश उठाना पड़े तो कोई बात नहीं, पर मैं आर्य-संस्कृति के विस्तार और राक्षसों के विनाश के लिए अवश्य यह कार्य करूँगी और राम को जिस-तिस प्रकार से वन में भेजूँगी :—

'सूर्यकुल ही दुनिया नहीं है। अयोध्या का राज्य विस्तार ही विश्व नहीं है। ब्रह्मांड इससे बहुत बड़ा है। यदि हमारे प्यारे परिवार को मर मिटना भी पड़े और राक्षसों और अनार्यों से शाश्वत विधान बचे रहें तो वह क्रम नहीं। कुल का ध्वंस हो, कैकेयी धिक्कार की चढ़ाई के लिए ढाल बनकर सब आक्रमणों को स्नेह पर अपने परमायुध पुत्र राम को पैना अस्त्र बनाकर मानवता के शत्रुओं पर अवश्य जय करेगी। आततायियों का निधन अवश्य होगा। यह कोई मुझसे कहता है राम विजयी होगा, यह शकुन सामने चल रहा है।······मेरी लीक जाय, मेरा गौरव मुझे, मेरा पुत्र आग में कूदे। मेरा सहयोग मुझे छोड़ दे। देश के लिए क्षत्राणियों का दिल पत्थर का होता है।" (पृ० ६८)

निश्चय ही कैकेयी का यह वक्तव्य राजस्थान के मध्यकाल की क्षत्राणी के उस दृष्टिकोण से मेल खाता है जो वे अपने पुत्र तथा पति के प्रति विधर्मियों से देश की रक्षा में रखती थी।

राम से भी लेखक ऐसे ही विचार प्रकट करवाता है—

'राम—मैं नितान्त अयोग्य हूँ। राक्षसों के शमन के बिना साकेत शासन का गौरव नहीं।···शासक का प्रशांत कार्य तो कोई कर सकता है, आपकी नियंत्रण और वरद हस्त भी रहेगा, पिताजी का अनुभव आदेश देता रहेगा। परन्तु राक्षस युद्ध का अभ्यास थोड़ा बहुत मुझी को है। अतएव यह कार्य आप मुझे सौंपें।

वशिष्ट—'तुम्हारे तर्क में बल है, वत्स।'

रामकथा में ऐसे विचारों की खोज कर उसे आधुनिक युग की सीमाओं में खड़ा करने का प्रयास हिन्दी के लेखक करते रहे हैं। अवस्थीजी का यह कृतित्व भी उसमें योगदान करता है लेकिन रामकथा में पात्रों को युगानुरूप में रहना या गंभीरता को भी छीछल बनाता है।

इस नाट्य कृति मे केवल विचार ही विचार है। भाव तथा रस की अभिव्यक्ति नहीं है, न तो यह नाट्य कृति ही है।

मिश्रबन्धु

मिश्रबन्धुओं ने सन् १९४१ में 'रामचरित्र' नामक एक नाटक लिखा। इसमें राम के किशोर जीवन से लेकर रावण विजय और अयोध्या आगमन तक की कथा को तीन अंकों मे निबद्ध किया गया है। अंक दृश्यों में विभाजित हैं। नाटक में रावण की राजसभा तथा भरत के आश्रम नंदिग्राम दोनों में अप्सरा और गायिका का नृत्यगान होता है जिससे नाट्य शिल्प का लक्ष्य हम भली-भाँति समझ सकते हैं और कई स्थलों पर गायिका के नृत्यगान की योजना रंगमंच पर की गई है। पारसी सिनेमा कम्पनियों के टेकनीक के ढङ्ग पर इस रामचरित्र का नाट्य शिल्प है। न कोई व्यवस्थित कथावस्तु है, न रंगमंच और न नाट्य शिल्प।

हास्य उपस्थित करने के लिए लेखक ने दंडकारण्य में सीता के प्रति राक्षसों के कौतूहल का जो विचार व्यक्त किया है वह भी हास्यास्पद हो गया है—

'अरे हुशियार हो जाओ मारो, एक सोने का चिड़िया नजर आया है।'

नाटक की नवीनता और विशेषता कुछ इन बातों मे है कि उसमें संस्कृति और इतिहास की राजनीति को जहाँ-तहाँ घुमेड़ने का प्रयत्न किया गया है जैसे जब राम का राज्याभिषेक होने लगता है तो वे कहते हैं कि जब तक अपने पूर्वज सम्राट अरण्य का बदला राक्षस-राज रावण से चुका न लूँ तब तक मुझे अयोध्या के युवराज पद का कोई अधिकार नहीं।

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

मिश्र जी हिन्दी नाट्य साहित्य के प्रधान स्तम्भ हैं और उन्होंने उसकी धारा को नया मोड़ प्रदान किया है। प्रायः वे समस्या नाटककार कहे जाते हैं। पाश्चात्य नाटककार इब्सन और बर्नार्डशा की शैली में उन्होंने हिन्दी में

मौलिक सामाजिक समस्यात्मक नाटकों की रचना पहले की थी। सन् १६४० के बाद प्रसाद के नाटकों में चित्रित एवं अभिव्यक्त भारतीय संस्कृति के उनके विचार से विद्रूप की प्रतिक्रिया में उन्होंने भी पौराणिक तथा ऐतिहासिक विषयों पर इस विचार से नाटक लिखना शुरू किया जिसमें भारतीय संस्कृति की सही अभिव्यक्ति नाटकों के माध्यम से हो सके। उन्होंने दर्जन की संख्या में ऐसे नाटक और उतने ही एकांकी इस दिशा में प्रस्तुत किये हैं। इसी प्रसंग में रामकथा पर भी उन्होंने एक एकांकी तथा एक नाटक की रचना की है। एकांकी 'अशोकवन' और नाटक 'चित्रकूट' की रचना में संभवतः १० वर्षों का अन्तर है। वही अन्तर दोनों रचनाओं की अभिव्यक्ति में भी आ गया है। 'अशोकवन' में एक समस्या का जो चित्र अन्तर्भूत है वह तस्वीर 'चित्रकूट' नाटक की कथावस्तु में नहीं है यद्यपि कथा का नवोन्मेष वैसा ही है।

अशोक वन

अशोक वन की कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त है। रामायण-सुन्दरकाण्ड का वह कथा-अंश, जिसमें जानकी रावण द्वारा अपहृत होकर अशोकवन में राक्षसियों से घिरी बंदिनी हैं। रावण छल और शक्ति द्वारा सीता को वशीभूत करने आता है, साथ में उसकी रानी मन्दोदरी है, चित्रांगदा है, पर वह सीता को तिल भर डिगाने में समर्थ नहीं होता और विस्मय में भर कर लौटता है, यही इस एकांकी की कथा है।

मिश्रजी बुद्धिवादी तथा समस्याएँ उद्भावित करने वाले नाटककार हैं। इस संक्षिप्त कथा के एकांकी में भी उन्होंने रामकथा के कई पक्षों की बौद्धिक व्याख्या की है और एक नया प्रकाश डाला है। रावण ने सीता को अशोकवन में क्यों रखा? उसने सीता का हरण न कर सीता का वध ही क्यों न कर दिया? क्या रावण दुश्चरित्र था? सीता के सतीत्व में विचारों का भी बल है, केवल रूढ़ि का ही नहीं? एक पुरुष की एक ही नारी होनी चाहिए और इस सम्बन्ध में रावण नहीं राम आदर्श हैं। शक्ति विचार की बात नहीं, शक्ति भी बात सुनती है। जहाँ भी नारी छली गयी है, किसी न किसी नारी के कारण। माटी का मोल सोना से अधिक है, अयोध्या मिट्टी की है। लंका सोने की बनी है। जब पिता एक ही है तो सतान चाहे विवाहित रानी की हो चाहे दासी की, दोनों का समान अधिकार होना चाहिए। इनके अतिरिक्त और भी कुछ छोटी-छोटी व्याख्याएँ, यद्यपि एकांकी में व्यापार का अभाव अवश्य

खटकता है पर बुद्धि को झकझोर देने वाले, संवाद एकांकी को पाठक की दृष्टि में भी और रंगमंच पर भी समान रूप से सफल रखते हैं।

एकांकी में कुल पाँच पात्र हैं—रावण, सीता, रावण की दो रानियाँ—चित्रांगदा, मन्दोदरी तथा दासी सुकन्या।

एकांकी, सीता के साथ ही रावण के चरित्र को भी बहुत ऊँचा उठाता है। रावण की यह उक्तियाँ सुनिये—जिसमें सीता-हरण के कारणों की ओर और रावण की वीर-मनोवृत्ति की ओर स्पष्ट ही प्रकाश पड़ता है—

जिस शत्रु ने बहन शूर्पणखा के नाक कान काट लिए, जिसने खरदूषण और त्रिशिरा का वध किया, जो पंचवटी में केन्द्र बनाकर मेरे राज में विद्रोह फैला रहा है, उसका क्या उपाय करूँगा। जानकी हरण मैंने नीति के अनुरूप किया। शत्रु की रमणी का अपहरण नीति है और अब जब उसे यहाँ ले आया तो उसके प्रति भी कोई धर्म है या नहीं?

प्रतिहिंसा में उसके नाक कान काट लेना ही साधारण पुरुष का काम होता, तुम जानती हो रावण असाधारण है।'

'रावण राम नारी ग्रहण कभी नहीं करेगा जिसकी आँखें उसका स्वागत न करें, जिसके कपोल उसे देखकर टहटहे लाल न हो जायें।

'अशोकवन' में सीता को रखने का आयोजन और सीता के दृढ सतीत्व की व्याख्या भी मिश्रजी करते हैं—

'यही विस्मय है। जनक की यह कन्या किस धातु की बनी है? अशोक एक वृक्ष की वायु दस दिन में किसी भी रमणी के भीतर पुरुष की कामना जगा देती है। ··· ··· देखो भी प्रिये। तुमने कभी कोई दूसरी स्त्री जिस पर अनुराग के सारे साधन इस तरह से व्यर्थ हुए हों, स्मृति के अमोघ प्रभाव भी जिस पर काम न करें? ··· ··· पर उस राम में कौन सी बात है? पिता ने जिसे वन भेजा, कंदमूल जिसका भोजन है और भूमि जिसकी सेज है, उसमें इस जानकी के प्राण कैसे बँधे हैं?

ऊपर के एक उद्धरण में रावण ने अपने असाधारणत्व की व्याख्या की है लेकिन आर्य जाति के वीर राम के इस शील-चरित्र की बात सुन कर एक पुरुष की एक ही नारी होती है, वह विस्मय मे पड़ता है, और सीता के शील-चरित को तिल भर भी डिगाने मे वह समर्थ नही है। जानकी कहती है—

'यह लाभ लंकापति को न दूँगी। प्रतापी रावण के प्रणय और प्रेम की

सोमा नहो है। वह एक हो माथ कितनी रमणियों से मिलेगा? आर्यपुत्र ने केवल इसी एक अभागिनी को अपना प्रणय दिया था।

रावण यह सुनकर सन्न हो जाता है और आश्चर्य में डूबने लगता है—

'क्या एक पुरुष की एक ही स्त्री य······विस्मय।'

रावण पर घृणा तथा राम पर भक्ति का दृष्टिकोण हटाकर मिश्र जी ने रामायण के इस प्रसंग को निरपेक्ष व्याख्या अपने एकांकी में कर दी है। रावण और राम की राजनीति तथा उनके शील को घृणा तथा भक्ति के परदे को तोड़कर दो विभिन्न जातियों की परम्परा में देखने को पाठक हठात् बाध्य होता है। नारी एक पुरुष की धर्मपत्नी होकर जितनी शक्तिमान है 'अशोकवन' की सीता इसका प्रमाण है—यही तथ्य इस एकांकी में अत्यन्त गहराई के साथ अभिव्यक्त हो रहा है। साथ ही रामायण के कुछ प्रसंगों की व्याख्यात्मक चर्चा भी होती है। 'अशोकवन' के प्रसंग को श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र सर्वथा अपने मौलिक दृष्टिकोण से, यथार्थ रूप से प्रस्तुत करते हैं।

चित्रकूट

मिश्र जी का 'चित्रकूट' नाटक तीन अंकों का है। वस्तुतः इसमें दृश्य भी तीन ही हैं। इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६० में हुआ।

'चित्रकूट' की कथा का आरम्भ दशरथ की मृत्यु के बाद का वह प्रसङ्ग है जब भरत तथा शत्रुघ्न ननिहाल से लौटकर अयोध्या में प्रवेश करते हैं और कथा का अन्त वहाँ होता है जब चित्रकूट में भरत राम के वन से वापस लौटने में असमर्थ होकर राम की खड़ाऊँ लेकर लौटना और उसी को सामने रखकर राज्य का शासन करना स्वीकार करते हैं। राम १४ वर्ष की अवधि की समाप्ति पर तत्काल भरत को दर्शन देने का वचन देते हैं।

इस प्रकार पहले अंक की घटनाएँ अयोध्या के उस भवन में घटती हैं, जहा राजा दशरथ की मृत्यु हुई थी। राम का वनवास और पिता की मृत्यु का समाचार जानकर, उसमें अपनी माता कैकेयी को मूल कारण समझकर भरत जिस वेदना से भर उठते हैं उसकी गहरी अभिव्यक्ति लेखक करता है और उसी प्रवाह में गुरु वशिष्ठ से इस वेदना का समाधान ढूँढते हुए भरत-चित्रकूट चल कर राम को मनाने का निश्चय करते हैं। भरत की दृढ़ प्रतिज्ञा और भाई के साथ उनकी एकात्मकता का प्रमाण यह है कि वे चौदह वर्ष तक अपनी पत्नी के स्पर्श तक को त्यागने के लिए कटिबद्ध हैं। पास में आती माण्डवी से वे कहते हैं—

'वहीं रुको । मेरे धर्म की कसौटी चौदह वर्ष तुम्हें बनना है । तात को लौटाने मैं जाऊंगा पर जो पिता के सत्य-धर्म की रक्षा मे न लौटे तो इस अवधि मे तुम्हें मेरी शपथ है तुम मेरे शरीर का स्पर्श न करो, मुझे देख-कर तुम्हारी आंखो मे अनुराग का रङ्ग न आए, नहीं तो मुझे नरक में भी........'' (पृ० ४८)

इस युग में राम के वनवास को दक्षिण दिशा में आर्य संस्कृति के प्रसार का जो महत्व दिया जाने लगा, 'चित्रकूट' में मिश्रजी भी उसकी चर्चा करते हैं लेकिन अधिक स्वाभाविक रूप में । इसकी स्वाभाविकता यह है कि इसकी भावना या सम्भावना राम के वन जाने के बाद, भरत द्वारा उनको लौटाने के प्रश्न पर गुरु वशिष्ठ करने लगते हैं । राम को बनवास देते समय कैकेयी के मन मे, या वन जाते समय राम के हृदय में ऐसी कोई भावना नही है । भरत कहते हैं—

'कल सवेरे मैं उसी मार्ग पर चल पड़ूंगा जिस पर तात रामचन्द्र, माता जानकी अनुज लक्ष्मण गये हैं ।' वशिष्ठ का उत्तर है :—

'मेरे कथन में जो तुम्हें विश्वास हो तो श्री रामचन्द्र नहीं लौटेंगे । पिता के सत्य की रक्षा उनका प्रधान धर्म है जिसके लिए अयोध्या ही नही देवलोक का राज्य भी मिले तो वे छोड़ देंगे । अयोध्या के राजा राम्चन्द्र को जो कीर्ति नहीं मिलती वह बनवासी रामचन्द्र को मिलेगी । एक राज्य के नायक नही वे लोक-नायक बनेंगे । उनके प्रताप में धर्म राज्य की स्थापना दक्षिण पथ मे भी होगी जिसके लिये मेरे अग्रज अगस्त्य चिरकाल से तप कर रहे हैं ।' (पृ० ३३)

दूसरे अंक की घटनाएँ गङ्गाजी के तट पर निषादराज के निवास पर घटती है । भरत सेना के साथ चित्रकूट जाने के लिए वहाँ पहुंचते है । निषाद-राज सेना के साथ भरत को देखकर अपने आराध्य राम के हित के लिए चिन्तित हो उठता है और अपने अनुचरो को उनका सामना करने के लिए तैयार करता है । भरत के पहुँचने पर उनसे जो प्रश्न करता है उसमे मिश्रजी ने जो विचार अभिव्यक्त किये हैं उनमें मिश्र जी वाल्मीकि रामायण से नहीं, 'रामचरित मानस' से अधिक प्रभावित हैं—दर्शन और भक्ति वहां प्रधान हो उठी है—

'समुद्र जैसी अपार सेना लेकर आप क्यों आये ? अपनी यात्रा का प्रयोजन बताकर पहले आप मेरा समाधान करें । जन्म-जन्म से जो मेरे स्वामी हैं,

पुर, परिवार, परिजन जो मेरे थे अब उनके हैं। हमारी एक-एक साँस में जिनका निवास है उन भगवान···नाम।···सूँगा मैं···आपके बड़े भाई जो वनवासी हैं उनका अनिष्ट कर जो आप इंकटक राज्य चाहें तो फिर कह दें। धर्म की सत्य की शपथ है जो आप छल और कपट के शब्दों का सहारा लें।' निषादराज की राम के प्रति महानिष्ठा भरत को भाव-विभोर कर देती हैं। वे राम को अपना भाई न कह कर निषादराज को प्रभु कहने लगते हैं··· निषादराज को दोनो बाहो मे भर कर छाती से लगाकर कहते हैं—

'तुम्हारे प्रभु के पैर पकड़कर उन्हें मनाकर अयोध्या लौटाने के लिए। उनका अभिषेक कर भगवती जानकी को उन्हें सिंहासन पर बैठा कर दोनों के चरण धोकर उसी जल से अपनी काया को, मन को, प्राण को पवित्र करने के लिए।' (पृ० ७२)

निषादराज की भूमि को मिश्रजी के इस नाटक में बहुत महत्व मिल गया है। भरत सारा राज-परिवार, गुरू वशिष्ठ और समस्त सेना उस भूमि में निवास करती हैं। इंगुदी का पेड़ जहाँ राम लेटे थे, तीर्थ बन जाता है। सभी उसकी प्रदक्षिणा करते हैं। राम को वनवास तथा दशरथ की मृत्यु की घटनाओ को लेकर रामकथा सम्बन्धी अन्य कृतियो मे दर्शन एवं आत्म बोध की, करुणा एवं विराग की जो सरस्वती अयोध्या, विशेषतः चित्रकूट की भूमियो में प्रवाहित हुई है, वह इस 'चित्रकूट' नाटक मे निषादराज की राज्यभूमि मे फूट पड़ती है। नाटक का यह अंग करुणा, शील, विराग, भक्ति तथा कर्तव्यनिष्ठा के गम्भीर प्रसङ्गो से ओतप्रोत है। ऐसे प्रसङ्गो मे मिश्रजी वाल्मीकि रामायण तथा वाल्मीकि रामकथा की धारा से कुछ दूर भी वह गये है। कौशल्या, भरत तथा वशिष्ठ का यह संवाद देखें—

'कौशल्या—यह अवस्था है धर्म की बात सुनने की पर मन तो पुत्र मे लगता है। नारी जीवन के दो छोर होते हैं भगवान। पति और पुत्र

वशिष्ठ—फल है भगवती। इन दो छोर के भीतर नारी जितना निर्भय रहती है उतने निर्भय पुरुष तपस्या और तत्व दर्शन मे भी नहीं हो पाते।···इस वृक्ष का कभी अंकुर फूटता है। धीरे-धीरे बढ़ता है। ··· किसी दिन जागता है। यही इसकी छः स्थितियाँ हैं।

भरत—यही छः स्थितियाँ हम सबकी है।

वशिष्ठ—क्यो न हो। जो वह जगतरूपी वृक्ष है वही हमारी देह मे सात धातुएँ होती हैं भगवती। वही इसकी सात छालें हैं। हमारे भीतर के पंच

महाभूत के साथ मन, बुद्धि और अहंकार इस वृक्ष की आठ शाखा हैं। हमारी देह में भी नौ छन्द हैं वही इसके नौ कोटर हैं। हमारे भीतर दस प्रकार के प्राण कहे गये हैं वही इमके दस पत्ते हैं। इस वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं। जो वृक्ष हम बराबर देखते हैं वही इस जगत का रूपक है।

कौशल्या—दो पक्षी क्या हैं ? …

वशिष्ठ—पहला पक्षी जीव है दूसरा पक्षी ब्रह्म है। जीव इस वृक्ष का भोग उठा रहा है और ब्रह्म साक्षी सब देख रहा है।" (पृ० ९०-९१)

धर्म और तत्व दर्शन के इन प्रसङ्गों को अनावश्यक रूप से विस्तृत कर दिया गया है। साथ ही यह बात भी है कि तत्वदर्शन का यह मसला उपनिषद् तथा भागवत पुराण की सामग्री है, राम कथा में इसे घुमाकर मिश्र जी ने कथा निर्वाध को बोझिल बना दिया है। वशिष्ठ के संवादों में आई तत्वदर्शन की बात संभवतः इन्ही दो श्लोको का अनुवाद है जो वाल्मीकि रामायण अथवा रामकथा काव्य से सम्बन्ध नही रखते :—

एकायनो सौ द्विफल स्त्रिमूलः चतूरसः
पंचविधः षडात्मा,
सप्तत्वगष्टविटयो नवाक्षो दमच्छदी
द्विखगो ह्यादि वृक्षः
(भागवत स्कंध १० अध्या० २।२२)

द्वा सखायौ सुपर्णी समान वृक्षं परिषष्वजा ते
(उपनिषद्)

तीसरे अङ्क की घटनाएँ चित्रकूट में घटती हैं। इन घटनाओं के दो भाग हैं। प्रारम्भ मे चित्रकूट मे बनवासी जीवन की आनंदानुभूति की कल्पना और बाद मे भरत से आगमन पर अयोध्या निवासियों तथा भरत के असाधारण प्रेम की उस समस्या का समाधान जिसमे सभी राम को पुनः अयोध्या को वापस लाना चाहते हैं।

राम के वनवासी जीवन का चित्रण करते हुए मिश्र जी ने लक्ष्मण की भक्ति, सीता के सन्तोष और राम के पराक्रम की अच्छी अभिव्यक्ति की है। लक्ष्मण के प्राण राम पर न्यौछावर हैं। जानकी को अयोध्या के नगर-जीवन से अधिक प्रिय चित्रकूट का सरल प्रिय वन-जीवन है। वे कहती हैं :—

'यहाँ के निवासी अयोध्या के निवासी हैं। यह पर्वत अपनी वृक्ष और जीव-सम्पदा के साथ अयोध्या नगरी हैं। मन्दाकिनी सरयू है ! झुण्ड के झुण्ड

नर-नारी आपके दर्शन के लिए आते हैं जिनके गहने कपड़े अयोध्यावासियों जैसे नहीं हैं पर हृदय तो इनका धर्म, अनुराग और विश्वास में अधिक भरा है। न इनकी हँसी पर कहीं कोई अंकुश है न इनके स्नेह पर इनकी आँखों में इनका हृदय झलकता है। ··· ··· ··· ··· जिधर देखती हूँ पर्वत की शोभा मन हर लेती है। जीवन भर यही दृश्य देखते हो तब भी मेरा मन नहीं भरेगा। ··· ··· ··· मन और धर्म का, कर्म और तन का भी जो विस्तार यहाँ है वह न अयोध्या में है न मिथिला में।' (पृ० ११२)

भरत की सेना का आगमन सुनकर लक्ष्मण के जो उद्गार फूटते हैं वे प्रकारान्तर से भ्रातृ-प्रेम की अभिव्यक्ति हैं—

'विदेह पुत्री जिसके कारण राजभोग से वंचित होकर पथरीली भूमि पर सोती हैं, जब जो मिल जाय वही आहार करती हैं, उस अपकारी का वध मैं *अवश्य करूँगा। ··· ··· ··· आपके शत्रु का वध आपकी अवज्ञा कैसे होगी!* अश्वपति की पुत्री अपनी करनी का फल भोगे। (पृ० ११७)

लक्ष्मण के भ्रातृ-प्रेम को लेखक ने बहुत ऊँचा उठाया है।

इस अंक का उत्तरार्द्ध कौटुम्बिक प्रेम और उनकी समस्याओं के समाधान से ओतप्रोत है। किस प्रकार भरत राम का खड़ाऊँ लेकर अयोध्या लौटने को तैयार हो जाते हैं, इस प्रसङ्ग में अनेक मर्मस्पर्शी चित्र मिश्र जी ने खींचे हैं। पर इन मर्मस्पर्शी चित्रों में रामचंद्र बिल्कुल सावधान हैं, लेखक उनके मुख से कहलाता है—

'जानता हूँ भगवान। हृदय जिधर वह निकले उधर जो हम बढ़ने लगें तब तो राजधर्म और लोक-विधान दोनों का अन्त निश्चित है।'

(पृ० १४४)

प्रासंगिक कथाओं का भी समावेश संवादों में हो गया है जैसे श्रवणकुमार की कथा का नाटक की दृष्टि से कार्य व्यापार का प्रभाव तीसरे अंक में खटकता है।

संक्षेप में 'चित्रकूट' नाटक वाल्मीकीय रामायण का एक अंश और भागवत और उपनिषद् के जीवन सम्बन्धी तत्व दर्शनों की व्यावहारिक व्याख्या है और इस दृष्टि से मिश्र जी की यह रचना हिन्दी में अभिनव है।

श्री सर्वदानन्द वर्मा

सर्वदानन्दजी ने १९५६ में 'भूमिजा' नाम का नाटक सीता के उत्तर

चरित्र को लेकर लिखा, जिसमें नर-नारी के कुछ समस्याओं को प्रस्तुत और विवेचित किया गया है। इसमें दो अंक और दो ही दृश्य हैं। पहले अंक मे राम द्वारा सीता के त्याग का दृश्य है, जिसमे लक्ष्मण सीता को वाल्मीकि आश्रम मे छोड़ने के लिए ले जाते हैं और दूसरे अंक मे वह दृश्य हैं जिसमें राम वाल्मीकि आश्रम मे आकर सीता का पुनः दर्शन करते हैं लेकिन सीता राम के साथ पुनः अयोध्या जाने को तैयार नही होती।

क्योंकि लेखक को नारी-समस्या और नारी की सहानुभूति मे ही समस्त भाव-योजना प्रस्तुत करनी थी। अतः इन्होंने लवकुश के उस अद्भुत शौर्य प्रकाश की घटना को नाटक में नही लिया है। लवकुश को वीरता से सीता मां का गौरव स्वतः इस कथानक में बहुत ऊंचा उठ जाता है लेकिन प्रस्तुत नाटक में इसे प्रस्तुत नहीं किया गया।

इस नाटक मे लेखक का मुख्य दृष्टिकोण यह रहा है कि राम ने सीता का त्याग कर मानव धर्म के विपरीत कार्य किया उनमें मिथ्या बड़प्पन और अहं जागा। दूसरे अंक में सीता राम को उलाहना देती हैं—

'सूर्य वंश का इतिहास नारी के रक्त से लिखा जायगा और वह नारी के के होगी सीता वह दिन भूल गए महाराज! नर की मर्यादा रक्षा लिए जिस दिन राजा रामचन्द्र ने मां के आंसुओं की शपथ को ठुकरा दिया था। स्त्री के समर्पण की ओर से आँखे बन्दकर ली थी? वही राजा हैं, वही प्रजा है और वही मर्यादा की लिप्सा है। वही मानव का अहं है।' (पृ० ८६)

नाटक मे राम का चरित्र उदात्त नहीं रह गया है। वह प्रथम अंक से ही अपनी विवशता के लिए विलाप कर रहे हैं, उनमे स्थिर बुद्धि का तो नाम निशान नही है। वाल्मीकि रामायण के वीर राम की आधुनिक युग के नारी-प्रेम परायणमात्र किसी नर का रूप दे दिया गया है। पहले अंक में राम की विवशता देखिए—

'राम (रोते हुए)—किन्तु राम के जीवन मे धिक्कार की होली सदा धू-धू कर जलती रहेगी। राम का परिचय क्या होगा देवी? एक कातर जो मिथ्या निन्दा से डर गया। लोकापवाद ने जिसे भयभीत कर दिया।'

राम का वह रोना तो किसी प्रकार उचित कहा जा सकता है, लेकिन दूसरे अंक के अंत मे कथा के अंतिम निर्वहार में राम जब अर्द्ध-विक्षिप्त हो उठते हैं और कहते हैं—

'प्रकृति का यह उन्माद, प्रलय का ताण्डव क्या शंकर का तीसरा नेत्र

जाग उठा है। ध्वंस का यह अंधकार'''सीता'''कहा तो तुम ! राम को मार्ग दिखाओ सीते। ''' मेरी सीता चली गयी, राम को असहाय ही छोड़ गई ! ''' राम को नाम की मंत्रणा मे तड़पने दो। (पृ० ६२)

राम ने जिस महान लोक धर्म से अभिभूत होकर सीता का त्याग किया था, उसकी झांकी नाटक मे कही नही है ? यह निश्चित है कि राम को सीता के त्याग की महान् हार्दिक वेदना थी, लेकिन भारतीय इतिहास को वह अप्रतिम पुरुष इस प्रकार विक्षिप्त अवस्था मे अपने कर्तव्य पालन के साथ अपनी निजी हानि मे रोता हुआ दिखाया जाय साहित्य मे अशोभनीय है।

डा० रामकुमार वर्मा

डा० वर्मा ने 'राजरानी सीता' नाम से एक एकाकी लिखा है। इसकी भी वही कथा है जो श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'अशोकवन' की है। पर कथा मे कोई नया उन्मेष नही है। परम्परागत राम, रावण की मान्यताएं, सीता का पतिव्रता धर्म-यही इस एकाकी की मूल प्रेरणाएं हैं। मिश्रजी के एकांकी मे जो गंभीरता, विवेचन, शील-चरित की व्याख्या तथा कथा की अन्तर्दृष्टि है वह प्रस्तुत एकाकी में नही है पर, हा, लोक-बोध की दृष्टि से 'राजरानी-सीता' एकाकी मे एक नयापन है। एकाकी के कथानक का अंत वहा होता है जहा रावण के ठीक चले जाने के बाद आग के लिए विह्वल सीता को राम की अंगूठी गिराकर हनुमान आश्वस्त करते है। रामचरित मानस के सुन्दरकाण्ड को पूरी कथा ऐसी ही है।

'राजरानी सीता' का रावण परम्परा से पालित पोषित कामुक और राक्षस कर्मा रावण ही है जो सीता के सामने अट्टहास करता है और जो इसके पहले भी अशोकवृक्ष के नीचे बैठी सीता के श्रृंगार के लिए राक्षसनियों को भेज चुका है। सीता को श्रृंगार-रहित देखकर जो कामुकता-पूर्ण बातें और अपनी शिव भक्ति का बखान करता है। यह न्याय-अन्याय की चिन्ता नही करता। सीता के अनुसुनी करने पर उनका मस्तक चन्द्रहास से काटने के के लिए तैयार हो जाता है। वस्तुतः परम्परागत रावण का यही रूप है। डा० वर्मा ने इसमे कोई नयी अन्तर्दृष्टि नही प्राप्त की है। उसे नयी शैली में प्रस्तुत अवश्य किया है कुछ उदाहरण पर्याप्त होगे—

रावण के वाक्य हैं—

'ये आंसू—। ये आंसू आपके सौन्दर्य के अनुरूप नही हैं, महारानी सीता.

और आपके सिर पर केशों की एक वेणी, यह मैली सारी, ये भूमि पर गड़े हुए नेत्र, उदासी जैसे चन्द्र के साथ अंधकार हो।'

'महारानी (सीता), मैं अपने प्रस्ताव की स्वीकृति चाहता हूँ। मैं कब से महादेवी मन्दोदरी को आपकी सेवा में नियोजित कर दूं।'

महादेवी मन्दोदरी! तुम रावण को शान्त नही कर सकतीं! आज पिछले दस महीनों से वह तिल-तिल जल रहा है। उसने देवाधिदेव शंकर के दस महोत्सव किये हैं, दस वार प्रार्थनाएं की हैं कि महारानी सीता मुझ पर अनुकूल हो।'

'मेरा अपमान करने वाले के शरीर में यही चन्द्रहास एक क्षण मे चमककर मेरे सम्मान का आदर्श त्रैलोक्य में स्थापित करता है। यह चन्द्रहास देखती हो। इसने कितने अपराधियो के सिर काटकर सारे ब्रह्मांड में बिखरा दिये हैं।'

मन्दोदरी का रावण से कोई अलग व्यक्तित्व नही है। वह भी कहती है—

'मैं भी जा रही हूँ महारानी सीता। पतिदेव रुष्ट हो गये। यह त्रिजटा दासी तुम्हारे समीप रहेगी।

राम का परब्रह्म रूप ही इस एकांकी में भी चित्रित हुआ है। सीता स्वतः उस परम ब्रह्मरूप पर ही निछावर हैं। परम विक्रमी पावन रूपधारी राम पर नहीं। सीता कहती हैं—

'संसार जिनके पीछे दौड़ता है वे मेरे प्रभु कंचन मृग के पीछे दौड़े। मेरे कारण···? ओह प्रभु, तुम कैसे हो और मैं कैसी हूँ।'

रावण भी अट्टहास करते हुए सीता से सीता की मान्यता पर व्यंग्य करता है—

'त्रैलोक्य में मेरी शक्ति से लड़ने का साहस किसमें हो सकता है। जिसके हृदय में दंडी, मुंडी और जटाधारी ही निवास करते हैं उस निगुणी···' अर्थात् राम की बात ही क्या की जाय।

एकांकी के अन्त मे मुद्रिका गिराकर हनुमान का प्रवेश कथा को यथार्थ मोड़ नही देता वस्तुत: राजरानी सीता की जिस कक्ष का आरम्भ एकांकी के आदि में सूचित किया गया वह वही समाप्त हो जाती है जहाँ रावण के भय और अट्टहास अविचलित सीता अपने प्रण पर अडिग बनी रहती हैं और राम के गुण गाती रहती हैं। डा० वर्मा ने आगे सीता द्वारा अशोक से आग की कामना करवाई जिसमें वे चिता मे जल सकें—इसी समय हनुमानजी

मुद्रिका गिराते हैं और कथानक आगे बढ़ जाता है। हनुमान वानरों मे राम की मैत्री की कथा कहते है और सीता को आश्वासन देते हैं—

'आप कुछ दिन और धैर्य धारण करें, कपि-सेना के साथ श्रीराम यहाँ आवेंगे और रावण को मारकर आपका उद्धार करेंगे।

'राजरानी सीता' एकांकी न केवल कथा में, संवादों में भी अपने पूर्व रचित ग्रन्थों विशेषतः रामचरित मानस और रामचन्द्रिका का अनेक अंशों में अनुवाद करता है। केवल रावण के उन संवादों को छोड़कर जिसमे वह अपने आतंक का अतिशयोक्ति मर्यादाहीन वर्णन मात्र है, सीता के संवादों के अनेक अंश तो अनूदित प्रतीत होते हैं। देखिए यह अंश—

'आकाश मे इतने अंगारे फैले हुए है। इनमे से कोई भी नीचे गिर जाता। यह चन्द्रमा भी ज्वालाओं से जल रहा है—वृक्ष अशोक तुम्ही मुझ पर दया करो। अपने नाम को सार्थक करते हुए मुझे भी अशोक बना दो। फिर—

रामचरित मानस की ये चौपाइयां देखिए—

> देखियत प्रकट गगन अंगारान
> अवनि न आवत एकउ तारा।
>
> \+ \+ \+ \+
>
> सुनिय विनय मम विटप अशोका।
> सत्य नाम करु हरु मम सोका। (सुन्दर काण्ड)

मुद्रिका को देखकर सीता कहती हैं :—

'तूने प्रभु को कैसे छोड़ दिया? ओह, उन्हें सब छोड़ देते हैं। नगर लक्ष्मी ने उन्हें छोड़ दिया, वन के बीच मे मैंने उन्हें छोड़ दिया और अब मेरी दिशा के मार्ग में तूने उन्हें छोड़ दिया। अब आज से नारियों पर कौन विश्वास करेगा? मेरे प्रभु की मुद्रिका—'

उक्त संवाद 'रामचंद्रिका के इस दोहे का अविकल अनुवाद है:—

> श्रीपुर में बन मध्य तू, हौं बन करी प्रतीति,
> कहु मुद्रिके अब तियनि की को करि है प्रतीति (रामचंद्रिका)

रामचंद्रिका के ऐसे अनुवाद इस एकाकी मे और भी हैं। संक्षेप मे राज-रानी सीता एकांकी मुख्यतः परम्परागत रामकथा के एक अंश का नवीन शैली मे गुम्फन है।

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

चतुर्वेदीजी नाट्य शास्त्र के निष्णात पंडित, नाट्यकार तथा कुशल अभिनेता हैं। इन्होंने रामकथा के अङ्गभूत शबरी के चरित को लेकर 'शबरी' नाम से एक नाटक संवत् २००६ में लिखा।

इस नाटक की कथा पद्मपुराण से ली गयी हैं जिसमें एक अभिमानी आर्य द्वारा शबरी को शूद्रा कह कर अपमान करने से पम्पासर का जल रक्तमय हो जाता है। फिर राम के आने पर और अपने भक्ति की अवज्ञा का रहस्य बताने पर पुनः शबरी के स्पर्श करने पर सरोवर का जल निर्मल हो जाता है। इसी कथा को लेकर श्रीमती मायादेवी शर्मा ने भी 'शबरी' नाम से खण्ड काव्य लिखा है। पद्मपुराण की यह कल्पना भक्ति आन्दोलन के युग की परिणति है। वाल्मीकि रामायण मे कथा को यह विस्तार नहीं दिया गया है। शबरी की श्रद्धा-भक्ति को आदर-भावना राम ने दिया है, उसके शबर तथा जंगली जाति के होने पर भी, जैसे उन्होंने गङ्गातटवासी निषादों का किया था।

चतुर्वेदी जी का यह नाटक तीन अङ्को में समाप्त हुआ है। अंक दृश्यों में विभाजित हैं। स्पष्ट है कि नाटक की शैली भारतीय न होकर शेक्सपियर की नाट्य शैली है। चतुर्वेदी जी का पांडित्य इसमें परिलक्षित हुआ है कि उन्होंने शबरी की कथा को लेकर जो कथा केवल एकांकी के लिए पर्याप्त थी, पूरा तीन अंकों का नाटक बना दिया है। सम्पूर्ण नाटक में रोचकता एक क्रम से बनी हुई है। इस रोचकता का आधार शबर-जीवन और उसकी दैनन्दिन चर्या, शबरी की ऋषि तथा राम के प्रति श्रद्धा सम्बन्धी घटनाओ पर आधारित है। शबरी शबरो से विरोध होने पर अज्ञात हो जाती है, ऋषि आश्रम मे रहती है। वहां शूद्रा कहकर अपमान किये जाने पर फिर अज्ञात हो जाती है। शबर ऋषियों का बलि चढाना चाहते हैं। शबरी उनकी रक्षा करती है, ऐसे प्रसंगों से कथा का विस्तार किया गया है और स्पष्ट है कि तृतीय अंक के अंत में ही जाकर कथा का मुख्य भाग आता है।

शास्त्रीय दृष्टि से यदि विचार किया जाय और अर्थ-प्रकृति को देखा जाय तो कथा वस्तु का उचित गठन नाटक मे परिलक्षित नहीं हुआ है। प्रत्येक दृश्य अलग-अलग अत्यन्त रोचक हैं, लेकिन सब मिलकर क्या है, सामूहिक प्रभाव दर्शक या पाठक पर क्या पड़ेगा, इसके सम्बन्ध में शबरी का कृतित्व मौन है।

शबरी और राम की पहली भेंट तीसरे अंक के पांचवें दृश्य में होती है।

उसमें शबरी की जिस अगाध श्रद्धा का चित्र घटनाओं तथा संवादों में नाट्यकार को खींचना चाहिए था, वह उसमें सफल नहीं हुआ। वह राम का पैर धोती है और माला पहनाती है। उनके चरणों पर सिर झुकाती है और फिर एक-एक बेर निकालते हुए देती है तथा कहती है—

यह लीजिए भगवन्! यह पहाड़ी पर के झाड़ का है, सबसे मीठा है। मैंने एक-एक बेर काट-काट कर इनके लिए रखा है।'

राम—(शबरी से) यह तो बड़ा मीठा बेर है, कहां से लाई हो?

यह सब रामलीला नाटक मंडलियों से कुछ विशेष नहीं दिखाई पड़ता।

लेखक ने रामकथा को भक्ति युग की परिकल्पना में देखा है, मूलरूप में नहीं। मतंग ऋषि मुद्गल से कहते हैं—

'तुमने भगवान राम की इस भक्ता पर जो हाथ लगाया उसी पाप से पंपासर का जल रक्त बन गया है जाओ जाकर सवा लाख गायत्री मंत्र का जप करो। तुमने बड़ा अनर्थ कर डाला। (शबरी से) देखो हमारे आश्रम का प्रायश्चित तुम्हारे निवास से ही पूरा होगा।'

नाटक को रामकथा का मर्म नहीं मिल सका है, एकमात्र मनोविनोद में सिमटकर सारा प्रयास रह गया है और राष्ट्रीयता के नाम पर जो संवाद राम से कहलाया गया है, वह भी उपहासजनक है–राम कहते हैं—

'किन्तु सीता के हरण का अर्थ है भारत की लक्ष्मी का हरण। यह सम्पूर्ण भारत को चुनौती दी गई है। सम्पूर्ण भारत के पौरुष को ललकारा गया है। इसीलिए आज मेरा धैर्य भी विचलित हो उठा है। यहां मेरी मर्यादा का नहीं भारत की मर्यादा का प्रश्न है।' (पृ० ६०)

राम का अपने मुंह से सीता को भारत की लक्ष्मी का कहना, अपने को प्रकारान्तर से भारत अभिव्यक्त करना, छोटी बात है, उनके गौरव तथा वीरता के अनुरूप नहीं है और हमारे विचार से आज के युग में भी कोई भारत राष्ट्र का विधाता अपनी पत्नी को इस रूप में कहने में गौरव का अनुभव नहीं करेगा, जन-हृदय इसे कहे तभी इस कथन का गौरव है।

नाट्य-शिल्प-संवाद, अभिनयपूर्णता सब कुछ होने पर भी नाटक में प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हो पाई है। रामकथा के प्रति नाटककार का कोई प्राणवान उद्देश्य भी सामने नहीं आता और न रामकथा के किसी अप्रकटित पक्ष का उद्घाटन ही इसमें हो पाता है। शबर जीवन की दिनचर्या, जीवन-विधि के कुछ प्रसंग ही प्रकट करने का कौशल नाटककार के हाथ लगा है।

श्री चन्द्रप्रकाश वर्मा

वर्माजी का सन् १९६२ मे 'त्रेता' नाम का तीन अङ्कों का नाटक प्रकाशित हुआ। अंक दृश्यों मे विभाजित हैं। पाश्चात्य नाट्य शैली से लिखा गया रामकथा पर यह एक सफल नाटक है जिसमें राम-रावण के युद्ध को आधुनिक विचारों के धरातल पर युद्ध-शान्ति समस्या के रूप में देखा गया है।

नाटक का आरम्भ समुद्र पर पुल निर्माण से चकित रावण सभा से होता है और अन्त कुंभकर्ण तथा मेघनाद की पत्नियों-वज्रज्वाला एवं सुनेत्रा के द्वारा की गयी युद्ध भर्त्सना से वज्रज्वाला कहती है–

'सत्य है सुनेत्रा। युद्ध सुख छीनता है। स्वप्न छीनता है। वह आशा और अभिलाषा छीनता है। वह चरणों से गति, अधरो से मुस्कान, कंठ से संगीत और हृदय से स्नेह छीनता है। वह भूमि से हरीत्तिमा और आकाश से नीलिमा छीनता है। विश्व में क्षुद्री अभिलाषाओं की दौड-धूप मची है। आओ सुनेत्रा। हम जीवन के चिरन्तन मूल्यों की पहचान करें। आओ। इस युद्ध के विरुद्ध हम स्वर में स्वर मिलावें। (पृ० १२६)

भाषा में नाटकीयता और स्वाभाविकता कम, काव्यात्मकता अधिक है। परम्परागत आती रामकथा और उसमें मार्मिक प्रसंगो को लेखक ने हलके ढंग से भी जहाँ तहाँ प्रयुक्त किया है जैसे केशव की रामचन्द्रिका में रावण की अंगद के प्रति कही गयी राजनीति की यह उक्ति :–

> नील सुखेन हनू उनके बल और सबै कपि पुंज तिहारे।
> आठहु आठ दिशा बलि दै, अपुनो पदु लैं, पितु जा लग मारे॥
> तोसे सपूतहि जायकै बालि अपूतहि को पदवी पगु धारे।
> अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हते बपु मारे॥१५॥

(१६वां प्रकाश)

इस त्रेता' नाटक में इस प्रकार से आती है—

'इन्द्रजीत के सहायक बनकर। लंका की राज्यवाहिनी में सहायक सेनाध्यक्ष के पद पर तुम्हारी नियुक्ति की घोषणा मैं अविलम्ब कर सकता हूँ। यह अशोभन न होगा। तुम मित्रात्मज हो, मेरे आत्मीय हो।'

(पृ० ४१)

भला लका की सेना में सहायक सेनाध्यक्ष का पद दूसरे राज्य का युवराज कभी स्वीकार करेगा।

उसी प्रकार राम की सेना की गतिविधि देखने के लिए छिपकर रावण समुद्र तट पर जाता है। वहाँ राम से भेंट हो जाती है और दर्शन, भक्ति तथा संस्कृति की बातें होने लगती हैं। लेखक को जानना चाहिये था कि यह आपसी संघर्ष नहीं, दो जातियों का संघर्ष था, जिसमें इतनी आत्मीयता से दोनों शत्रु युद्ध काल में बात नहीं कर सकते। और जब लेखक रावण के मुँह से यह बात कहवा देता है कि–

'श्रीराम! देवी सीता मेरी आराध्या और आप मेरे आराध्य हैं। आप चकित न हों। यह मर्म केवल एक लंकेश्वरी को छोड़ अन्य कोई नहीं जानता।'

(पृ० १०७)

तब युद्ध-शान्ति की समस्या नाटक में प्रस्तुत करने का कोई प्रसग ही नहीं होता।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल

डा० लाल ने एक 'रावण' नाम से एकांकी नाटक लिखा है जो उनके 'नाटक बहुरूपी' में संगृहीत है। इसका प्रकाशन सन् १९६४ में हुआ। ऐसा मालूम होता है कि यह एकांकी रेडियो वार्ता के रूप में जल्दी-जल्दी में लिखा गया होगा और बाद में एकांकी संकलन में रख दिया गया। नाट्य-शिल्प की बात तो दूर की वस्तु है, भाषा तथा विषय की दृष्टि से यह रचना नितान्त हास्यास्पद है।

संक्षिप्त कथा यों है—राम समुद्र तट पर बैठे हैं, पुल निर्माण हो रहा है। रात्रि का प्रथम प्रहर है। अस्वस्थ लक्ष्मण की दवा करने लंका से सुखेन आया है। राम को समुद्र गर्जन, शिव ताण्डव की स्तुति के साथ रावण की जयकार सुनाई पड़ती है। वे चिन्ता मग्न हैं। जाम्बवान् से राम अपनी चिन्तन शक्ति का निष्कर्ष बताते हैं—रावण द्वारा की गई स्तुति शिव मय आकाश में व्याप्त शक्ति की आराधना है, जिसमें वह शक्तिमान् रावण को विजय करने के लिए शिव जी की स्थापना और उपासना का विचार करते हैं। किन्तु शिवजी की उपासना का यज्ञ कैसे पूरा होगा। यज्ञ में धर्मपत्नी का रहना अनिवार्य है। सीता यहाँ है नहीं। पता नहीं शिव की प्रेरणा हुई या स्वयं शक्तिमती सीता की प्रेरणा हुई या रावण ही स्वयं जानकी को लेकर तट पर पहुँचता है, यह सीता राम की मर्यादा बनकर धर्म कार्य से आयी हैं और जगत-व्यवहार तथा वाणी से निष्क्रिय हैं। राम को वे प्रणाम नहीं करती। लक्ष्मण

उनकी पहचान के लिए आगे बढते हैं और वे अन्तर्ध्यान हो जाती हैं। लक्ष्मण हतप्रभ हो जाते हैं। राम उन्हे समझाते हैं—'वह जानकी नही थी, लक्ष्मण, वह कृत्रिम जानकी रावण की माया-रचना थी।' चलता हुआ कथा प्रसंग यहीं समाप्त हो जाता है। आगे रामेश्वर की जय के साथ पूजा उपक्रम मे नाटक समाप्त हो जाता है।

यहा कथा पौराणिक आख्यान पर आधारित है। वाल्मीकि रामायण से इसका कोई सम्बन्ध नही है। पर जो कथा इस एकांकी मे दी गयी है पौराणिक आधार पर होते हुए भी, केवल बीच की एक कथामात्र है, न इसका चरण है न इसका मुख है। एकाकी का अंतिम लक्ष्य क्या था-रावण की माया का निदर्शन, उसका अन्तःकलुष, तब राम की उदात्तता में उसका पर्यासान भी दिखाना चाहिए था, इस एकांकी में राम उसके सामने बिल्कुल हतप्रभ हैं और रावण भी निष्प्रयोजन प्रभाहन दृष्टिगत होता है। एकांकी में साकार क्या किया गया इसका पता नही चलता।

भाषा और अर्थ बोध के सम्बन्ध में तो एकांकी बिल्कुल खिलवाड हो गया है। लक्ष्मण बीसवी शताब्दी के आचार-शब्दों में रावण से बात करते हैं—'धन्यवाद रावण।' फिर उस युग की आचार शैली भी प्रयुक्त की गयी है—'आर्य श्रेष्ठ।' सुषेन और जाम्ववान् बार-बार माता जानकी के स्थान पर 'मातु जानकी' का प्रयोग करते हैं।

राम का यह स्वागत-वाक्य भी देखिए—'आओ तुम्हारा स्वागत है श्री दशकंध।'

अस्तु, ऐसी रचना को राम साहित्य की विवेचना मे ले आने का एक मात्र लक्ष्य यह दिखाने का था कि राम कथा के नाम पर किस प्रकार अनाप-शनाप कथा प्रयोग भी किए जा रहे हैं तथा राम-साहित्य के स्रष्टा बनने के लोभी लेखक किस प्रकार काल, कथा तथा भाषा की व्यवस्था तोड़ कर हिन्दी में नाट्य-साहित्य लिखने का अनर्थ कर रहे हैं।

रामकथा पर लिखे उपन्यास

उपन्यास शैली और रामकथा

साहित्य मे उपन्यास की शैली हिन्दी के लिए नई कला थी, जिसका आविर्भाव, और प्रशस्त विकास तब हुआ, जब हिन्दी खड़ी बोली का कविता क्षेत्र रामकथा के यशोगान से भरपूर हो रहा था, और कुछ लोग रामकथा

को नाटक शैली में उतार रहे थे। उपन्यास में विशेषकर सामाजिक चित्रण की कथावस्तु और ऐतिहासिक कथावस्तु का आधार बनाया जाता था। पौराणिक उपन्यासों की शुरुआत भी बहुत बाद में हुई जबकि हिन्दी में आधुनिक युग के लिए रामकथा पिष्टपेषण मात्र रह गई। फिर उसे लेखकों के लिए उपन्यास का विषय बनाना कल्पना और बुद्धि की कसौटी थी जिसे बहुत वर्ष पीछे सन् १९५५ में आचार्य चतुरसेन 'वयं रक्षामः' में पूरा किया।

इसके पूर्व हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री प्रेमचन्द ने 'रामचर्चा' नाम से एक राम-कहानी लिखी जो उपन्यास नहीं, साधारण लोगों के लिए राम की गूढ़ कथा का सरलीकरण था। लेकिन यह प्रथम प्रयास उपन्यास भी बन गया और रामकथा की साधारण व्याख्या भी।

श्री प्रेमचन्द

राम-चर्चा

'रामचर्चा' का प्रथम प्रकाशन सन् १९३८ में हुआ, इसमें लेखक ने श्री रामचन्द्र की अमर कहानी व्यक्त की है। सात काण्डों के क्रम से ३४ प्रकरणों में यह राम कहानी कही गई हैं। इस कहानी को पौराणिक कल्पनाओं और मान्यताओं से नीचे ले आने का प्रयत्न लेखक ने किया है। सहज मानव की कहानी के रूप में चित्रित करने का लेखक का प्रयास उसके अपने शब्दों में है,।

उसकी अभिव्यक्ति सही है, ऐसी अभिव्यक्ति जिसे पाठक सहज स्वीकार कर लें। वानर, भालू, मानवों की जाति कहे गये हैं, पर उनकी भूमिका नहीं आती जिसे साधारण पाठक स्वतः स्वीकार कर लेगा। लेकिन इस प्रकार का प्रथम प्रयास लेखक का स्तुत्य कार्य था।

लेखक ने इसे सरल और प्रायः हिन्दुस्तानी मिली भाषा में लिखने का दृष्टिकोण भी रखा है।

लेखक 'रामचर्चा' को यथार्थ और आदर्श के रूप में रखना चाहा है। राम की कहानी जो सम्पूर्ण देश में श्रद्धा की दृष्टि से देखी जाती है, उसके माध्यम से सच्चे कर्तव्य का उपदेश देना लेखक का उद्देश्य है। अन्त में लेखक कहता है—

'यह है रामचन्द्र के जीवन की संक्षिप्त कहानी। उनके जीवन का अर्थ केवल एक शब्द है और उसका नाम है कर्तव्य। उन्होंने सदैव कर्तव्य को प्रधान समझा। जीवन पर कर्तव्य के रास्ते से कभी भी नहीं हटे। कर्तव्य ही के लिए

चौदह वर्ष तक जंगलों में रहे, अपनी जान से प्यारी पत्नी को कर्तव्य पर बलिदान कर दिया और अन्त में अपने प्रियतम भाई लक्ष्मण से भी हाथ धोया। प्रेम पक्षपात और शील को कभी कर्तव्य के मार्ग में नहीं आने दिया। यह उनकी कर्तव्यपरायणता का प्रसाद है कि सारा भारत देश उनका नाम रटता है और उनके अस्तित्व को पवित्र समझता है। इसी कर्तव्य परायणता ने उन्हें आदमियों के ऊपर से उठाकर देवताओं के समकक्ष बैठा दिया है।[१]

प्रेमचन्द ने 'रामचर्चा' की कहानी की कथा तुलसीदास के 'रामचरित मानस' के आधार पर नहीं, वाल्मीकि रामायण को भी आधार बनाकर लिखा है। इस में उनका दृष्टिकोण कथा की बहुत छानबीन करना नहीं था, जो कथा सामने थी, उसे ही यथा सम्भव यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर देना, कहानी का सही रूप अपने दृष्टिकोण से पाठकों के सामने रखना ध्येय था।

श्री चतुरसेन शास्त्री

वयं रक्षामः

रामचरित को लेकर हिन्दी में उपन्यास साहित्य केवल 'वयं रक्षामः' ही है। चक्रवर्ती राजा गोपालाचारी का 'दशरथनन्दन श्रीराम' सस्ता साहित्य मण्डल द्वारा अनूदित होकर हिन्दी में आया है, इसे भी किसी सीमा तक उपन्यास ही कहेंगे लेकिन मूल रूप से हिन्दी की रचना वह नहीं है, इसीलिए रामचरित पर उपन्यास-साहित्य का प्रसङ्ग जब हमारे सामने आता है तो 'वयं रक्षामः' एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना के रूप में हमारे सामने उपस्थित होता है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री हिन्दी के माने-जाने उपन्यासकार हैं, उपन्यास क्षेत्र में उनकी कृतियां विश्रुत हैं। अतीत के इतिहास-रस की जैसी अभिव्यक्ति उनके उपन्यासों में हुई है, हिन्दी के अन्य उपन्यासकार वैसी सफलता नहीं प्राप्त कर सके हैं। 'वैशाली की नगरवधू' उनकी रचना अतीत के इतिहास का अत्यन्त विख्यात उपन्यास है। रामकथा का इतिहास लेकर वैसा ही यह दूसरा उपन्यास चतुरसेन शास्त्री ने प्रस्तुत किया जो कई दृष्टियों से रामकथा में वाल्मीकीय रामायण, रघुवंश, पउम चरिउ, रामचरित मानस के बाद अपना स्थान रखता है।

'वयं रक्षामः' में जिस ऐतिहासिक दृष्टि, राष्ट्रीय मान्यता तथा विराट्

१-रामचर्चा, पृ० १६८।

चरितों की कल्पना का सामंजस्य हुआ है वह नितान्त अभिनव अनुप्रेरक तथा रामकथा का सहज बोध कराने वाला प्रयास है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है—पौराणिक अन्धानुसरण से युक्त मानवीय इतिहास के धरातल पर राम और उसके शत्रु रावण तथा उनके पूर्वज और सहयोगियों को ऐतिहासिक सामाजिक विवेचना का सविस्तार मानवीय सभ्यता के वनखण्ड की तस्वीर, जिसे चतुरसेन ने 'वयं रक्षाम:' मे चित्रित किया। और उपन्यास समाप्त होते-होते यह बहुरङ्गी तस्वीर, जिसे लेखक सवा सौ अध्यायों में सजाता-संवारता आ रहा था, एकाएक भारतीय संस्कृति की ज्योति शिखा मानव-वरेण्य राम को रावण पर असंभावित विजय से एक ही भारतीय नर की महिमा मे अनुरञ्जित हो उठती है।

'राम-रावण के इस महायुद्ध मे लगभग सम्पूर्ण दैत्य-दानव नागवशी राजा और राज प्रतिनिधि रावण के सहायतार्थ आये थे। रावण सप्तद्वीप पति था जो उस काल लङ्का के चारों ओर फैले थे। आजकल की भौगोलिक स्थिति यद्यपि बदल चुकी है, परन्तु वे द्वीप आज आस्ट्रेलिया, जावा, सुमात्रा मैडागास्कर, अफ्रीका आदि नाम से प्रसिद्ध हैं। ऐसे प्रबल शत्रु को मारना आसान न था। तिमिध्वज, शंबर और वर्चिन की समाप्ति के बाद रावण का यह निधन ऐसा था जिसने सम्पूर्ण अनार्य बल तोड़ दिया था। इसी से राम का नाम और यश इन द्वीपों में फैल गया और भूमण्डल मे विख्यात हो गये। लोग महादेव और जगदीश्वर की भांति रावण के स्थान पर राम की ही पूजा करने लगे। चम्पा, कम्बोडिया, थाईलैण्ड, बरमा में भी राम प्रताप व्याप गया। योरोप की जातियां किसी न किसी राम प्रभावित प्राचीन जाति से ही सम्बन्धित हैं। अतः योरोप की सभी प्रमुख जातियों में-जैसे इगलैण्ड, स्पेन, स्वीडन, नार्वे, स्कैन्डीनेविया, ग्रीस और इटली भी राम प्रभाव से रहित न रह गये। इस प्रकार आज की उपस्थित सब जातियों में इस आर्य नेता विजेता मर्यादा पुरुषोत्तम राम का किसी न किसी रूप में सांस्कृतिक मिश्रण है[1]।'

मानव इतिहास के पृष्ठ में किस पंक्ति में राम गाथा का तारतम्य है इसे स्पष्ट करने में लेखक को अभूतपूर्व सफलता मिली है। उनके शब्दों मे जगदीश्वर रावण का प्रताप ही कान्त होकर राम की महिमा में परिणित हो गया। मानव इतिहास की ऐसी विचित्र घटना जिसने हजारों वर्षों के बाद भी अपने

१-वयं रक्षाम : (प्रथम संस्करण) पृ० ७६६-७६७।

प्रभाव में कोई न्यूनता नहीं आने दी, एक ही है। लेखक ने ग्रन्थ की समाप्ति पर अपना इतिहास और अतीत की मान्यताओं को स्पष्ट करने के लिए २८५ पृष्ठों की सप्रमाण भूमिका देकर रामगाथा की इस कृति को सर्वथा मौलिक, अभिनव और अनवद्य बना दिया है। 'रामचरितमानस' के बाद हिन्दी में रामकथा पर इतनी महत्वपूर्ण कृति कदाचित् दूसरी नही है। ग्रन्थ के कुल अध्यायों की संख्या १२८ है। इसका प्रकाशन पहली बार १९५५ में हुआ।

रावण और राम के पूर्वजो के इतिहास पर जो एक तीक्ष्ण सिंहावलोकन आचार्य चतुरसेन ने अपने 'वयंरक्षामः' में किया है, वह कहीं गलत, अपूर्ण और कहीं नितान्त सत्य–तीनों हो सकता है लेकिन उनके विपरीत अपने पूर्वजों की पूर्व-परम्परा का यह अनुसंधान अतीत रस का यह साधारणीकरण रामचरितमानस की भाँति राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति की आज की संस्कृति का अपरितोष अपने सुरभित शीतल रसौघ में निमज्जित करने वाला है, जिसमें कल्पना भी है, कटु सत्य की कसौटी भी है, काव्य भी है, इतिहास भी है, धर्म की व्याख्या भी है, सांस्कृतिक परीक्षण भी है। इसमें भाव और विचार दोनों की गहराइयां और विस्तार हैं। रामायण में भरत की भक्ति तथा राम की पितृ-भक्ति एवं रावण के अत्याचार के अतिरिक्त और बहुत कुछ सोचने और देखने की सामग्री है जिसे लेखक ने अपने पूर्व 'निवेदन' में कहा है।

'वयं रक्षामः' में कई संवादों में सरल संस्कृत भाषा का भी प्रयोग लेखक ने किया है। ग्रन्थ का नाम ही संस्कृत में है। रावण स्वयं संस्कृत का, वेद-विद्या का प्रकाण्ड पण्डित था। अतीत रस के साधारणीकरण में एक प्रायोगिक चमत्कार अवश्य हुआ है। पर वह बहुत संगत नही प्रतीत होता। वैसे भाषा की दृष्टि से यह ग्रन्थ काव्य भी है, उपन्यास भी है, इतिहास भी है। जैसे वाल्मीकिय रामायण और महाभारत में वाल्मकि और व्यास की भाषा कहीं-कहीं साहित्यक प्रांजलता से ओत-प्रोत होकर चलती है, कहीं-कहीं सरल, प्रसादपूर्ण होकर केवल तथ्य चयन या घटनाओं का इतिहास प्रस्तुत करता है। कहीं व्याख्या परक होकर अर्थ गम्भीर बन जाती है, ठीक भाषा का यही क्रम 'वयं रक्षामः' मे भी है। इस उपन्यास की तीनों प्रकार की भाषा का एक-एक उदाहरण प्रस्तुत किया जारहा है। साहित्य की प्रांजल भाषा देखिए—

'भरतंगत सूर्य की रक्तिम रश्मियाँ वनश्री को रंजित करने लगी। राम ने धीरे से रमणी को शिलाखण्ड पर बैठाकर अधोवस्त्र वेनी की बन्धन किया। स्वयं वटिवन्ध पहना···मृगाजिन धारण किया, फिर उसके लाक्षारञ्जित चरण युगल गोद में लेकर कच्चार-निर्मित उपानत् चरणों में डाल चर्म रज्जु बांधने लगा[१]।"

(२) प्रमाद पूर्ण इतिहास की यह भाषा भी देखिए—

'परन्तु भाग्य की बात देखिए—यहाँ भी इनका एक प्रबल प्रतिस्पर्धी उत्पन्न हो गया। यह काव्य-उशना-शुक्र थे जो दैत्यगुरु भृगु-पुत्र थे। भृगु का वंश प्रजापति का वंश होने के कारण अधिक प्रतिष्ठित था और शुक्र तो दैत्यपति बलि और दानवेन्द्र वृष पर्वा के याजक तथा चक्रवर्ती पौरव ययाति के श्वसुर थे ही। उनका बड़ा मान था—बड़ा नाम था। अतः अरब-शाक द्वीप में भी वशिष्ठ का प्रताप भी वहीं रहा। भृगुवंशियों का तेज; प्रताप वहाँ बढ़ता गया। पीछे भार्गव और्व के यहाँ आ जाने से द्वीप का नाम ही अरब पड़ गया[२]।'

(३) तीसरी प्रकार की भाषा का नमूना यह है—

'इसी प्रकार रावण भी सम्पन्न रहे। अब ये ही तो दो सम्पन्न वंश रह गये, जो प्राचीन नृवंशों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी से मैं इन पर सदय हूँ। रावण जो आर्य-अनार्य का भेद मिटा कर समूचे नृवंश की एक वैदिक संस्कृति स्थापन करना चाहता है सो बुरा क्या है! क्या पृथ्वी के स्वामी ये आदित्य ही रहेंगे! ··· ··· ··· आदित्यों ने इलावर्त में देवलोक स्थापित कर लिया और भारतवर्ष में आर्यावर्त[३]।'

भाषा की इस छटा के अतिरिक्त इस उपन्यास में भावों और रसों की अच्छी अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, विशेषतः शृङ्गार, वीर, रौद्र, करुण रसों की तथा इनसे सम्बन्धित भावों की। और अन्त में पूरा उपन्यास एक तरह से रामकाव्य की नूतन विधा ही बन जाता है। रामकथा पर केवल यही एक उपन्यास महत्वपूर्ण होकर सामने आता है, दूसरे उपन्यास यदि लिखे भी गये हों तो उनका रामकथा में कोई नया योग नहीं है, जैसा कि पहले

१—वयं रक्षामः, पृ० ६।
२—वही, पृ० ३३३।
३—" पृ० ७२१।

कहा गया है रामकथा विशेषतः काव्य शैली की कहानी बन गयी थी और इसके बाद रामलीला के माध्यम से उसे नाटक शैली की अभिव्यक्ति भी मिली, इसीलिए उपन्यास शैली में इस महत्वपूर्ण उपजीव्य कथा पर लेखकों की कलम नहीं चली। साथ ही उपन्यास शैली की जैसे-जैसे हिन्दी में उन्नति हुई, काव्य शैली में लिखी रामकथा की रचनाओं की इतनी भरमार हो गयी कि कोई समर्थ लेखक ही अभिनव दृष्टि की स्थापना से उपन्यास शैली में रामकथा पर कुछ लिख सकता था जैसा कि आचार्य चतुरसेन ने किया।

श्री अक्षयकुमार जैन

रामकथा को कहानियों के रूप में लिखने का प्रयास भी किया गया जिसमें रामकथा के मार्मिक प्रसङ्गों को शीर्षक देकर अलग-अलग रोचक और मर्मस्पर्शी और प्रेरणाप्रद घटनाओं को चित्रित किया गया। जैन जी ने सन् १९५४ में 'युग पुरुष राम' नाम से रामकथा को क्रमबद्ध कहानियों के रूप में रखा है। लेखक ने इस रचना के सम्बन्ध में अपना उद्देश्य प्रस्तावना में व्यक्त किया है—

'इस कथा में एक लेखक के नाते मैंने थोड़ी स्वतन्त्रता बरती है, यद्यपि मूल कथा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। अपि वाल्मीकि की रामायण, तुलसी का रामचरित मानस', कम्ब रामायण और श्री मैथिलीशरण का 'साकेत' मुझे प्राप्त है और मैं उनका अध्ययन कर सका। इस पुस्तक की कथा में इन सबका समावेश हो सकता है। वैसे कथा के जो उपेक्षित स्थल मुझे अच्छे लगे कल्पना के आधार पर मैंने लिख डालने का यत्न किया है।'

इसमें कुल ३८ कहानियाँ हैं। इनमें कई कहानियाँ पुराण में उल्लिखित रामकथा के आधार पर जैसे 'विदेह की धरती की भेंट', 'वन को प्रस्थान और शवरी का आतिथ्य', 'महापण्डित रावण आचार्य के रूप में', 'रावण की अंतिम अपूर्ण कामना', 'धरती धरती की गोद में लय' आदि।

इन कहानियों की भाषा बड़ी सुगठित है। इनकी अपनी एक शैली है। सुबोध तथा मार्मिक ढङ्ग से रामकथा के प्रसंग पाठकों के सम्मुख रखे गये हैं। लेखक ने अनेक स्थलों पर रामकथा को मौलिक ढङ्ग से प्रस्तुत किया है और रामकथा में सांस्कृतिक प्रतिमानों को खोजने का स्तुत्य प्रयास किया है। भगवान किस प्रकार से युग पुरुष हैं तथा लोक के मर्यादा पुरुषोत्तम हैं—यह इन कहानियों में भलीभाँति व्यक्त हुआ है। कहानियाँ केवल ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथामात्र नहीं हैं। बल्कि उनमें आधुनिक

कहानी-शिल्प का प्रकृति और भाव का संघटन किया गया है। कई कहानियों में लेखक ने अपनी नयी मान्यताएँ भी स्थापित की हैं जैसे 'राजतिलक नहीं वनवास' कहानी में कैकेयी द्वारा राम के वनवास के लिए वर माँगना—एक महान् राजनीतिक उद्देश्य से गर्भित है। कैकेयी दशरथ से कहती है—

'कैकेयी—नाटक जाने पहला था या अब है। पर महाराज यह सुनिश्चित है कि राम को *वनवासी होना पड़ेगा। वह अयोध्या से बाँधा जाना* नहीं चाहिए, वह जम्बू द्वीप का महापुरुष है। आप उसे वन में भेज दीजिए।'
(पृ० २१)

जैन जी की कहानियाँ पहले स्फुट रूप से पत्रों में प्रकाशित होती रही हैं इसलिए यह हो सकता है कि यह कहानी पुस्तक में आने के बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी हो। कैकेयी के लाछन के सम्बन्ध में जैसे उत्कट विचार जैन जी ने प्रकट किये हैं ऐसे ही विचार 'मणि रायपुरी' के 'कैकेयी' काव्य में भी आये हैं और इनका पहला प्रेरक शान्तिप्रिय द्विवेदी का निबन्ध है। इन विचारों का पहला उद्भावक कौन है, नहीं कहा जा सकता। लेकिन जैन जी ने इन विचारों को सशक्त शैली में व्यक्त किया है। पीछे लिखे गये केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' के 'कैकेयी' काव्य में ये विचार भारी उड़ानें भरने के कारण निष्प्रभ हो गये हैं।

इस पुस्तक की एक विशिष्ट कहानी है 'महापण्डित रावण आचार्य के रूप में'। इस कहानी में रावण राम द्वारा शिव की स्थापना के यज्ञ का आचार्य बनता है जिस यज्ञ का उद्देश्य ही है रावण की विजय करना। रावण यह जानकर भी ब्राह्मण होने के नाते यज्ञ का आचार्यत्व स्वीकार करता है यद्यपि इस कहानी को मूल रूप में जैन जी ने पुराणों से प्राप्त किया है पर उनकी अभिव्यक्ति सर्वथा अपनी है। एक तरह से यह कहानी राम साहित्य की प्रतिस्पर्द्धी रचना है। इसके अन्त में लेखक ने लिखा है—'सबके हृदय में भाव था कि रावण क्या मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं ?'

श्री रघुनाथ सिंह

एक दूसरी कृति श्री रघुनाथ सिंह, संसद सदस्य वाराणसी की 'रामायण कथा' है जिसे उपन्यास न कहकर रामकथा के-क्रम में आधारित कहानियों का संकलन ही कहना चाहिए। श्री रघुनाथ सिंह की रामायण कथा का प्रका-

शन सन् १९६३ में हुआ। परन्तु ये कहानियाँ तब से २० वर्ष पूर्व लिखी जा चुकी थी। केवल उनमें ७६ संशोधन और परिवर्धन ही लेखक ने किया है। प्रारम्भ में लेखक ने स्वयं इसे स्पष्ट कर दिया है।

'पुरानी संशोधित पाण्डुलिपि की भाषा शैली २० वर्ष पुरानी थी। उसे सँवारना सुधारना आरम्भ किया। इन २० वर्षों में विचारों तथा शैली में यथेष्ट अन्तर पड़ गया। सुधार कुछ अधिक हो गया था। पाण्डुलिपि को हिन्दी में टाइप कराया गया और पाण्डुलिपि पुस्तकाकार हो गयी।'

(भूमिका भाग पृ० १४)

इस रामायण कथा में ७ काण्ड के क्रम से कुल ५० कहानियाँ हैं। इन कहानियों का आधार केवल वाल्मीकि रामायण ही नहीं है बल्कि अनेक इतर ग्रन्थों-पुराणों में वर्णित-रामकथा को आधार बनाकर कहानियों का गुम्फन लेखक ने किया है। वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त महाभारत, पद्म पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, वायु पुराण, स्कन्द पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, मत्स्य पुराण, देवी भागवत, अध्यात्म रामायण जैसे ग्रन्थों में कहानियों का चयन लेखक ने किया है। इसमें एक नई बात यह हुई है कि रामकथा के विविध प्रसंगों की अनेकता कथावस्तु का बहुत कुछ संचयन इस ग्रन्थ में हो गया है। सामान्यतः रामायण-कथा के जो पात्र अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, उन्हीं के सम्बन्ध में लोग अब तक लिखते आये हैं लेकिन श्री आचार्य चतुरसेन शास्त्री और श्री रघुनाथ सिंह ने रामायण की प्रासंगिक कथाओं के चरित्रों को भी सामने रखा, यह एक नयी बात हुई। चतुरसेन शास्त्री की दृष्टि सर्वथा अभिनव एवं विश्लेषणात्मक है और रघुनाथ सिंह ने पुराणकार की बात को ही यथा तथा अपनी हिन्दी की शैली में कह दिया है। इस रामायण कथा में रामायण के प्रसिद्ध पात्रों के अतिरिक्त जिनके चरित्रों की अलग कहानी के रूप में चर्चा हुई है, वे हैं—शान्त, वामन, कुशनाभ, कार्तिकेय, सागर, असमंजस, भगीरथ, इन्द्र, अम्बरीष, मेनका, रम्भा, परशुराम, वातापि, वेगवती, मरुत, कुम्भीनसी, नलकूवर, सहस्रार्जुन, नृगनिमि, ययाति, इल।

स्पष्ट है कि लेखक ने रामकथा से सम्बन्धित पौराणिक आख्यानों को रोचक शैली की कहानियों में अवतरित किया है। पर इन कहानियों में पौराणिक मान्यताओं को ज्यों का त्यों रख दिया गया है, इनका कोई विवेचन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इनमें देखने को न मिलेगा। दो उदाहरण लीजिये—

'देवताओ का निवेदन ऋषि जह्नु ने सुना। वे प्रसन्न हुए। उन्होने कान से गगा की जलधारा निकाल दी। गंगा भगीरथ के दिव्य रथ के पीछे-पीछे पुन: चल पडी।' (पृ० ६१)

पूर्व काल मे मयूर का पंख नीला होता था। सुन्दर नही था। इन्द्र के वरदान के पश्चात् पंखो पर नेत्र बन गये। स्वरूप मनोहर हो गया।'

(पृ० २०७)

पुराण की ये मान्यताएँ धार्मिक विश्वास से मौन पाठक के लिए ही स्वीकार होगी। बुद्धिशील आज का पाठक इनसे कुछ न प्राप्त करेगा।

रामायण कथा को कहानियों की शैली हिन्दी की कहानियो की शैली है,. उनमे सस्कृत के छोटे ग्राख्यानो की शैली का अनुसरण नही किया गया है परन्तु इस शैली मे कथाएँ चमत्कृत नही हो सकी हैं।

इस ग्रन्थ से इस क्षेत्र के उत्तर ग्रन्थों का ध्यान जा सकता है कि रामकथा साहित्य की सीमाएँ कहां तक जाती है। अनेक पुराण और महाभारत रामकथा के आख्यानो के विविध रूपो की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं जिनके कई छायाचित्र भी रघुनाथ सिह ने रामायण कथा मे उतारे हैं।

सिस्टर निवेदिता

आयरलैण्ड की भारतभक्त तरुणी सिस्टर निवेदिता ने **रामायण कथाचक्र** की रचना अंग्रेजी मे की थी। उसका एक अनुवाद श्री ओंकार शरद ने प्रस्तुत किया है। अभिनव भारती सम्मेलन मार्ग इलाहाबाद से उसका प्रकाशन हुआ है। इस पुस्तक मे एक विदेशी महिला के रामकथा के प्रति अनुराग और विचार के दर्शन होते हैं। निवेदिता ने विशेष रूप से सीता के चरित का विस्तार इस पुस्तक में किया है। *सीता हरण, लंका-विजय और सीता की सत्य* परीक्षा का विशेष मार्मिक प्रस्तुतीकरण इसमे है।

६

राम-कथा पर मनोविश्लेषणात्मक चिन्तन से अनुप्रेरित साहित्य

इधर हिन्दी के आधुनिक युग मे परिचय से जो अनेक प्रवाह और वाद आये, उन्होने शैली शिल्प और अभिव्यक्ति मे विचार तथा चिन्तन को अत्यधिक प्रश्रय दिया यहाँ तक कि साहित्य की अधिकांश रचना-क्या काव्य, क्या नाटक, क्या उपन्यास, क्या कहानी तथा अन्य विधायें सभी मे भाव की अपेक्षा विचार तत्वों का मूल्य अधिक आका जाने लगा। कविता पर इसका बुरा-अच्छा दोनों प्रभाव पड़ा, भाव-योजना के स्थान पर कविता दर्शन की वस्तु बन गयी, अनेक कवियों ने विचार तो किया ही, कविता में दर्शन की मीमांसा करने में अपने को कृतकृत्य समझा है छायावाद युग का प्रसिद्ध काव्य 'कामायनी' कविता से अधिक दर्शन ही है। अन्य काव्य जैसे प्रिय प्रवास, साकेत, कुरुक्षेत्र, अंगराज भी दर्शन तो नहीं, किन्तु विचारों की श्रृङ्खला से संकुचित हो गये हैं, रस और भाव की अभिव्यक्ति इस युग के साहित्य में निरन्तर गौड़ होती जा रही है और चिन्तन प्रधान होता जा रहा है।

इस दार्शनिक चिन्तन के साथ ही साथ मनोवैज्ञानिक चिन्तन का भी साहित्य के क्षेत्र में आविर्भाव हुआ जिसके फलस्वरूप प्राचीन-अर्वाचीन पौराणिक युग अथवा वैज्ञानिक युग के चरितों में, अथवा तत्कालीन घटनाओं के परिवेश मे उसके मूल की खोज की जिज्ञासा-वश या घटनाओं के बीच संचरित होने वाली मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमियों को प्रस्तुत करने के कौतूहल मे साहित्य को एक नई दिशा प्रस्तुत हुई।

इस दिशा, दृष्टिकोण और शिल्प में रामकथा को प्रस्तुत करने का काम ही कुछ साहित्यकारों ने किया, यद्यपि उनकी रचनाएँ लोकप्रिय नहीं हो सकी हैं किन्तु उनके महत्व और वस्तु आकलन से इनकार नहीं किया जा सकता, आज न सही कल उनका मूल्यांकन हो सकता है।

३-चित्रकूट का पहाडी अंचल—जिसमें सीता वनवासिनी होकर, राजरानी पद से वंचित होकर जीवन बिता रही हैं।

४-लङ्का की अशोक वाटिका—जहाँ रावण द्वारा अपहृत सीता बदी है।

५-अयोध्या का प्रान्तर—लोकापवाद से भीत राम द्वारा सीता के निर्वासित हो जाने से सीता से शून्य अयोध्या मे सीता की माँ का शोक विह्वल भ्रमण।

रूपक के रूप मे एक संतान-वंचित मां के हृदय को उद्गारो की अभिव्यक्ति विचार और चिंतन की पृष्ठभूमि मे हुई है। अंतिम दृश्य मे सीता को लोकापवाद के भय से निर्वासित करने की टेम जो माँ पर लग सकती है उसका चित्रण कवि अपने शब्दो मे और भी रोष के साथ कहता है—

'सिर्फ दस महीने तक मेरी बेटी तुमसे दूर रही थी उस राक्षस पुरी लंका मे रही थी और इतने ही छोटे अर्से में तुम्हारा इतना बड़ा अविश्वास कि उसे अग्नि परीक्षा के लिए तुमने चुनौती दी।

मेरी सीता लंकापुरी मे किस तरह रही, तुमने सोचा भी नही। और लकापुरी मे वह रही ही क्यो? क्यो तुमने उसकी बहन की नाक कटवायी जिस रावण ने तुम्हारी पत्नी का हरण किया। फिर यह तो तुम्हारी नपुंसकता थी राम, कि कोई तुम्हारी पत्नी का हरण कर ले। अपनी कायरता का प्रायश्चित तुम्हें करना था कि मेरी सीता को। (पृ० ५७)

इसी प्रकार दूसरे दृश्य में राजकुमार राम के साथ सीता का अनुराग के वशीभूत होना देखकर सीता की मां के ये उद्गार नितान्त मन की बात है—

'ओहो! उधर राजकुमार खड़ा है, इधर मेरी बेटी खडी है।

यह कहा से पुरानी बात आ गयी? मालूम हुआ, जहाँ वह राजकुमार खड़ा है, वहाँ मेरे देवता खडे हैं और अपनी बेटी की जगह मैं खड़ी हूँ।

हाँ-हाँ मैंने भी इसी तरह देखा था उन्हें?

राजकुमार, कहीं तुम भी कोई देवता तो नही हो मेरी बेटी यह देव कया है राजकुमार, देवकया?

इसे राजकन्या समझो। देवकन्या तो किसी देवकुमार को ही मिल सकती है। नहीं देवकन्या की दृष्टि देवकुमार पर ही स्थिर हो सकती है जिसकी दृष्टि सबके लिए सह्य भी तो थी।

मैंने राजकुमार की आंखों को देखा, फिर मैंने अपनी बेटी की आंखें देखो वे ही पुरानी बातें मानो घटना दुहरा रही है।

इसी समय मेरा मातृत्व बोल उठा—

'पगली, तू आखें बन्द कर तो। ऐसे अवसरों पर माताएं""हां, हां, ऐसे अवसरों पर माताएं आँखें मूंद लेती हैं।' (पृ० २४-२५)

स्त्री का कितना सच्चा अन्तर्द्वन्द बेनीपुरी जी ने प्रस्तुत प्रसंग मे चित्रित किया है, **काले टाईप के** वाक्य इस अभिव्यक्ति के प्राण हैं।

इसके साथ जब हम यह ध्यान रखते हैं कि यह अन्तर्वेदना सीता की उस मा की है जो जीवन में, अपनी पुत्री सीता के सामने प्रत्यक्ष न हो सकी, दामाद राम से दो शब्द बोल न सकी, तब इसकी मार्मिकता में हमारा हृदय डूब जाता है। चित्रकूट के अंचल का यह चित्र देखिए—

'मेरी सीता रसोई बनाने बैठी। लक्ष्मण, लक्ष्मण, तुममे इतना शऊर नही कि किस लकड़ी का ईंधन होता है कैसी लकड़ी का ईंधन होता है। सब धान बाइस पसेरी तौलिए। ऐसी लकड़ी तोड़, लाया तू, कि मेरी बेटी परेशान, परेशान हो गई, लेकिन आग न धधकी। धुआं, धुआ। फूंक पर फूंक दी। आंचल से विजन किया फिर तालपत्र से हवा की। किन्तु कांचन कामिनी मेरी बेटी की गुलाबी आखें सुर्मई बन गईं। हार कर वह कुटिया से बाहर गई, आंखें पोछी, लम्बी सांस ली और खिन्न होकर आकाश की ओर देखा-आह दिन चढ आया, वे आते ही होंगे। रसोई अब तक न बना सकी मैं। इच्छा हुई कि अब प्रकट होऊं ही। जाऊं रसोई बना दूं, दामाद को खिलाऊं, बेटों को खिलाऊं-जन्म सार्थक करूं कि इतने में वही आवाज-'सीते! सीते! अरी, छोड़ रसोई, देखो ये फल ढेर के ढेर।' (पृ० ३६-३७)

पुत्री के स्नेह के प्रति माता की सहज निष्ठा को स्वोक्ति रूपक के शिल्प मे उतार कर और उसी माध्यम से सामाजिक तथ्यों को नंगा कर बेनीपुरी जी ने इस विधा का नया आदर्श प्रस्तुत किया है। यद्यपि रामकथा पर ऐसे साहित्य की अपेक्षा आवश्यकता इस देश के संस्कृत निष्ठ पाठक नही चाहते तो भी लेखक अपने क्रान्तदर्शी विचारो को उस सबसे तिरोहित नही करता, बेनीपुरी जी ने यही किया।

श्री जयशंकर त्रिपाठी

आजनेय

श्री जयशकर त्रिपाठी ने इसी शिल्प मे, चिंतन, विश्लेषण की इसी विधा मे रामकथा के एक अंश को लेकर १९५६ में 'आंजनेय' नाम से एक खंड-काव्य प्रस्तुत किया।

इस खंड काव्य की कथा-भूमि अत्यन्त स्वल्प है। वालि के डर से सुग्रीव अपने दल के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर भ्रमण कर रहा था कि इतने में हरण की जाती एक औरत ने कुछ आभूषण और वस्त्र नीचे गिरा दिये। यह औरत सीता थी। वानरदल नहीं जानता था कि इस प्रकार से नारी को बलात् हरण करने की घटना क्यों हुई, नारी कौन थी? हरणकर्ता कौन था? वैसे वे स्वतः परेशान थे। सुग्रीव की स्त्री वालि ने हरण कर लिया था। आभूषण वस्त्र तो रख लिये पर वानर दल उस घटना को संध्या तक में ही भूल गया। उनके बीच वीर हनुमान् भी थे। रात के समय चांदनी में जब वे बैठे तो दिन की वह घटना उनके मस्तिष्क और हृदय को झकझोरने लगी। मनोविश्लेषण की पृष्ठ-भूमि पर हनुमान ने जो कुछ उस समय अपने आप अपने से कहा, आजनेय काव्य का वही प्रतिपाद्य अनेक अंश में है। आगे इसी आधार पर सीता की खोज में प्रस्तुत राम लक्ष्मण को देखकर हनुमान सुग्रीव की तरह विचलित नहीं होते कि उन्हें हमारे बंधु वालि ने हमारा वध करने को भेजा होगा। उसी चिन्तन के आधार पर हनुमान में इतनी सामर्थ्य आती है कि वे पहचान जाते हैं, ये राम साधारण मानव नहीं अतिक्रान्त मानव है। ये इसी युग के नहीं अनेक युगों के लिए विराट् पुरुष बनकर आज हम लोगों के सामने खड़े हैं। हनुमान इसी प्रेरणा से सुग्रीव से उनकी मैत्री करा देते हैं और भविष्य के संघर्ष के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं।

कथा वाल्मीकि रामायण से ली गयी है। सीताहरण और सुग्रीव-राम की मैत्री ही इस कथा की पृष्ठभूमि है जिस पर तरुण कवि ने पाँच सर्गों का एक प्रभावशाली काव्य लिख डाला है। इसका प्रभाव शैली-भाषा के अतिरिक्त इसके चिंतन और विचारों में है।

डा० बल्देवप्रसाद मिश्र ने इस काव्य की भूमिका में लिखा है—

'श्री जयशंकर त्रिपाठी का आजनेय काव्य भी जयशंकर प्रसाद की कामायनी की परम्परा में लिखा गया है संक्षिप्त कथा-सूत्र का आधार लेकर ज्ञान-विज्ञान के किसी चिरंतन तथ्य का विश्लेषण (रहस्यमय विश्लेषण) करना ही इस परम्परा की विशेषता है। ......इस परम्परा के काव्य स्वभावतः चिन्तन प्रधान हो जाया करते हैं। ......उनका एक अपूर्व आकर्षण रहता है जो प्रतिभावान् पाठक को बार-बार अपनी ओर खींचता रहता है। ...

'आजनेय' काव्य पांच सर्गों में विभक्त है। जिनके नाम भी अपूर्व और रहस्यमय हैं। प्रथम सर्ग का नाम है– शून्य सर्ग जिसमें विश्वकाव्य और उसके

आदि कवि का रहस्यमय वर्णन है। मानो यह हुई शून्य देश की बात। दूसरे सर्ग का नाम है पूर्व सर्ग, जिसमे कथानक का पूर्व इतिहास है। दक्षिण की राक्षसी गुरता से सुग्रीव चिन्तित था। इतमें मे ही राक्षस-राज ने सीता का अपहरण करके करुणा का एक नया प्रसंग उपस्थित किया। तीसरे सर्ग का नाम है दक्षिण सर्ग, जिसमें इस प्रबन्ध काव्य का दायित्व है। उसमें आंजनेय की चितना और उनके निर्णय की सूचना है। चतुर्थ सर्ग का नाम है पश्चिम सर्ग जिसमे राम-लक्ष्मण को आते देखकर सुग्रीव की घबराहट और आंजनेय द्वारा उसको दिया हुआ आश्वासन वर्णित है। मानो यह कथा-क्रम की पिछडी कड़ी है। पाँचवें सर्ग का नाम है उत्तर सर्ग, जिसमें वाणी की चिरन्तन समस्या का उत्तर सन्निहित है। इसमें कवि और पाठक का, ज्ञान और क्रिया का, सिद्धान्त और भावना का, सम्मेलन कराया गया है। ...

वाणी के चिरन्तन सत्य को जो चिर-पुरातन होकर भी चिरनवीन है, समस्या और साधान के रूप मे उपयुक्त कथानक के साथ संश्लिष्ट करके श्री त्रिपाठी जी ने उत्तम काव्य चातुर्य दिखाया है।' (पृ० २-६)

वस्तुतः यह काव्य चिन्तन प्रधान अधिक है, मनोविश्लेषणात्मक कम। पात्रों के मनोविश्लेषण की ओर कवि कम गया है। तथ्यो के चिन्तन और तर्क वितर्क मे, उनके समाधान मे स्वयं अग्रसर हो उठा है। 'सीता की मा' से वह भिन्न विधा की रचना होते हुए भी इसके आन्तरिक शिल्प में चित्र नही हैं।

कवि ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए गुम्फन मे भिन्न है—

'वह योगी, वीरों के वीर, सृष्टि के कवि राम भगवान् बनकर जन-जन के हृदय मे ही नही, भारत के पर्वतो की चट्टानों मे, नदियों के कल कल में और मिट्टी के कण-कण मे प्रतिष्ठित हो गये किन्तु अभी इस प्रतिष्ठा का श्री गणेश प्रथम आंजनेय की उस चेतना में हुआ था जिसने धरती-बाला (सीता) के रुदन के साथ धरती का करुण विलाप श्रवण किया था, जिसने अनुमान किया था कि धरती के इस पुकार पर यहाँ सूर्य और चन्द्र उतरेंगे तथा इस प्रकार जिसके हृदय मे भगवान् की प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित हो गयी थी। आदि कवि के महाकाव्य में भी यह एक मुख्य घटना है और यही आंजनेय की रचना है।' (पृ० १७)

कवि ने काव्य में इस विचार को भावों के माध्यम से उतारा है, और अपने इस चिन्तन से, जो कि काव्य में आंजनेय हनुमान का चिन्तन है हमारे अन्तःकरण को झकझोर दिया है। रात में बैठे-बैठे हनुमान सोचते हैं, आज नारी का जो हरण हमारी आँखों के सामने हुआ है यह अवश्यमेव युग की करवट है—

इस खंड काव्य की कथा-भूमि अत्यन्त स्वल्प है। बालि के डर से सुग्रीव अपने दल के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर भ्रमण कर रहा था कि इतने में हरण की जाती एक औरत ने कुछ आभूषण और वस्त्र नीचे गिरा दिये। यह औरत सीता थी। वानरदल नहीं जानता था कि इस प्रकार से नारी को बलात् हरण करने की घटना क्यों हुई, नारी कौन थी? हरणकर्ता कौन था? वैसे वे स्वतः परेशान थे। सुग्रीव की स्त्री बालि ने हरण कर लिया था। आभूषण वस्त्र तो रख लिये पर वानर दल उस घटना को संध्या तक में ही भूल गया। उनके बीच वीर हनुमान् भी थे। रात के समय चांदनी में जब वे बैठे तो दिन की वह घटना उनके मस्तिष्क और हृदय को झकझोरने लगी। मनोविश्लेषण की पृष्ठ-भूमि पर हनुमान ने जो कुछ उस समय अपने आप अपने से कहा, आजनेय काव्य का वही प्रतिपाद्य अनेक अंश में है। आगे इसी आधार पर सीता की खोज में प्रस्तुत राम लक्ष्मण को देखकर हनुमान सुग्रीव की तरह विचलित नहीं होते कि उन्हें हमारे बंधु बालि ने हमारा वध करने को भेजा होगा। उसी चिन्तन के आधार पर हनुमान में इतनी सामर्थ्य आती है कि वे पहचान जाते हैं, ये राम साधारण मानव नहीं अतिक्रान्त मानव हैं। ये इसी युग के नहीं अनेक युगों के लिए विराट् पुरुष बनकर आज हम लोगों के सामने खड़े हैं। हनुमान इसी प्रेरणा से सुग्रीव से उनकी मैत्री करा देते हैं और भविष्य के संघर्ष के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं।

कथा वाल्मीकि रामायण से ली गयी है। सीताहरण और सुग्रीव-राम की मैत्री ही इस कथा की पृष्ठभूमि है जिस पर तरुण कवि ने पांच सर्गों का एक प्रभावशाली काव्य लिख डाला है। इसका प्रभाव शैली-भाषा के अतिरिक्त इसके चिंतन और विचारों में है।

डा० बल्देवप्रसाद मिश्र ने इस काव्य की भूमिका में लिखा है—

'श्री जयशंकर त्रिपाठी का आजनेय काव्य श्री जयशंकर प्रसाद की कामायनी की परम्परा में लिखा गया है संक्षिप्त कथा-सूत्र का आधार लेकर ज्ञान-विज्ञान के किसी चिरंतन तथ्य का विश्लेषण (रहस्यमय विश्लेषण) करना ही इस परम्परा की विशेषता है। ······इस परम्परा के काव्य स्वाभावतः चिन्तन प्रधान हो जाया करते हैं। ······उनका एक अपूर्व आकर्षण रहता है जो प्रति-भावान् पाठक को बार-बार अपनी ओर खींचता रहता है। ···

'आजनेय' काव्य पांच सर्गों में विभक्त है। जिनके नाम भी अपूर्व और रहस्यमय हैं। प्रथम सर्ग का नाम है— शून्य सर्ग जिसमें विश्वकाव्य और उसके

आदि कवि का रहस्यमय वर्णन है। मानो यह हुई शून्य देश की बात। दूसरे सर्ग का नाम है पूर्व सर्ग, जिसमे कथानक का पूर्व इतिहास है। दक्षिण की राक्षसी गुरुता से सुग्रीव चिन्तित था। इतमे मे ही राक्षस-राज ने सीता का अपहरण करके करुणा का एक नया प्रसंग उपस्थित किया। तीसरे सर्ग का नाम है दक्षिण सर्ग, जिसमे इस प्रबन्ध काव्य का दायित्व है। उसमें आंजनेय की चितना और उनके निर्णय की सूचना है। चतुर्थ सर्ग का नाम है पश्चिम सर्ग जिसमे राम-लक्ष्मण को आते देखकर सुग्रीव की घबराहट और आंजनेय द्वारा उसको दिया हुआ आश्वासन वर्णित है। मानों यह कथा-क्रम की पिछड़ी कड़ी है। पांचवें सर्ग का नाम है उत्तर सर्ग, जिसमें वाणी की चिरन्तन समस्या का उत्तर सन्निहित है। इसमें कवि और पाठक का, ज्ञान और क्रिया का, सिद्धान्त और भावना का, सम्मेलन कराया गया है। ...

वाणी के चिरन्तन सत्य को जो चिर-पुरातन होकर भी चिरनवीन है, समस्या और साधान के रूप में उपयुक्त कथानक के साथ संश्लिष्ट करके श्री त्रिपाठी जी ने उत्तम काव्य चातुर्य दिखाया है।' (पृ० २-६)

वस्तुत: यह काव्य चिन्तन प्रधान अधिक है, मनोविश्लेषणात्मक कम। पात्रो के मनोविश्लेषण की ओर कवि कम गया है। तथ्यो के चिन्तन और तर्क वितर्क मे, उनके समाधान में स्वयं अग्रसर हो उठा है। 'सीता की मां' से वह भिन्न विधा की रचना होते हुए भी इसके आन्तरिक शिल्प मे चित्र नही हैं।

कवि ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए गुम्फन मे भिन्न है—

'वह योगी, वीरों के वीर, सृष्टि के कवि राम भगवान् बनकर जन-जन के हृदय मे ही नहीं, भारत के पर्वतो की चट्टानों में, नदियों के कल कल मे और मिट्टी के कण-कण में प्रतिष्ठित हो गये किन्तु अभी इस प्रतिष्ठा का श्री गणेश प्रथम आंजनेय की उस चेतना मे हुआ था जिसने धरती-बाला (सीता) के रुदन के साथ धरती का करुण विलाप श्रवण किया था, जिसने अनुमान किया था कि धरती के इस पुकार पर यहाँ सूर्य और चन्द्र उतरेंगे तथा इस प्रकार जिसके हृदय मे भगवान् की प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित हो गयी थी। आदि कवि के महाकाव्य में भी यह एक मुख्य घटना है और यही आंजनेय की रचना है।' (पृ० १७)

कवि ने काव्य में इस विचार को भावों के माध्यम से उतारा है, और अपने इस चिन्तन से, जो कि काव्य में आजनेय हनुमान का चिन्तन है हमारे अन्तःकरण को झकझोर दिया है। रात में बैठे-बैठे हनुमान सोचते है, आज नारी का जो हरण हमारी आँखों के सामने हुआ है यह अवश्यमेव युग की करवट है—

अनैतिकता पशुता के राग ।
जहां पर शोणित की बरसात
कर चुकी तर गिरिकम तरु-पात,
पाप की मेघ घटा के बीच
यहां होगा ज्योतिसंघात । (पृ० ८०)

इसी चिन्तन का परिणाम तब वहीं साकार हो उठता है जब सुग्रीव धनुष-धारी राम-लक्ष्मण को देखकर भय से काप उठता है और हनुमान् उससे आश्वस्त होकर कहते हैं—

जटाओं पर ले भू का भार
दीनता-दुख-बुभुक्षा-क्षार
ढहाते अन्धकार का दुर्ग
तोड़ते कल्मषमय युग द्वार।
नापते पृथ्वी औ आकाश
धनुष तरकस के स्वप्न विलास,
जग रहे अटवी में युग ज्योति
हंस रहे चन्द्र हास के हास। (पृ० ९१)

हनुमान ने जब चिन्तन की उलझनों को राम के सामने रखा, तब कर्तव्य में दृढ और विपत्तियों से लड़नेवाले राम ने जन्मभूमि से सुदूर वनवासी वानर-भानु-मित्रों के बीच एकाकी पड़े रहकर भी दृढता से अपना यह उत्तर दिया जो वीर और दृढ पुरुष का सहजात मनोविज्ञान, है तरुण कवि ने इसे आकने में बड़ी सफलता प्राप्त की है—

न इसको आदि न इसका अंत
यहां पर ग्रीष्म और अ-वसन्त
यहां पर युद्ध, व्यलीक व अशांति
तीसरा नहीं पन्थ हा हन्त !
सेव्य-सेवक की गुरुता व्यर्थ
मित्र ही रख सकता कुछ अर्थ
दे सकेगा कुछ पावन शक्ति
यहां पर आंजनेय संघर्ष ।

और इसके साथ ही—

धरा का पाकर ज्योतिप्रकाश
विजय कर सकते हो आकाश
इसी पथ पर राघव के अंघ्रि
अभी बन गये ज्योति-संकाश। (पृ० ११२)

ऐसा तेजस्वी वीर राम उस हनुमान से मित्रता के लिए आकुल है जिसका बहुत बडा सहयोग जगत् के संघर्ष मे मिल सकता है, उसके मित्रता को स्वीकृति उसके मित्रता का मूल्यांकन तथा अपने आपको उसे समर्पित करने की क्रिया राम द्वारा किस सहज हृदय मे सम्पन्न होती है, वह इन शब्दों में देखिए—

हमारे ये लम्बे धनुतीर
नापते रहे वेणु-वानीर
दिखे तुम कौन ज्योति के दूत
शैल पर अतुल सिन्धु गम्भीर ?
अरे मारुति ! तुम वह पायोधि
घिरे जिससे भू सिन्धु अवाध,
तुम्हारे चरण, हमारे हाथ
भरेंगे इस पृथ्वी की साध। (पृ० १११)

संक्षेप में चिन्तन-प्रधान यह काव्य धरती के विभव आकलन और वीर की महिमा की अभिव्यक्ति से ओतप्रोत होकर हृदय और बुद्धि को एक साथ रमा देने वाला राम-कथा का कवि-शिल्प है।

श्री नरेश मेहता

संशय की एक रात

श्री नरेश मेहता की प्रस्तुत कृति का प्रकाशन सन् १६६२ मे हुआ। यह तो ४ सर्गों का काव्य है किन्तु ग्रन्थ में कुछ निर्देश ऐसे दिये गये हैं जिसके कारण इसे काव्य-रूपक भी कहा जायगा।

कवि ने काव्य आरम्भ के पूर्व 'शीर्ष' में लिखा है—

'प्रस्तुत कृति में राम, आधुनिक प्रज्ञा का प्रतिनिधित्व करते हैं। युद्ध आज की प्रमुख समस्या है। संभवतः सभी युग की, इस विभीषिका को सामाजिक एवं वैयक्तिक धरातल पर सभी युगों में भोगा जाता रहा और इसलिए राम

को भी ऐसा ही एकत्व देकर प्रश्न उठाये गये। जिस प्रकार कुछ प्रश्न सनातन होते हैं उसी प्रकार कुछ प्रज्ञा पुरुष भी सनातन प्रतीक होते हैं।' (पृ० १०)

इस प्रकार राम को प्रज्ञा प्रतीक मानकर मनोविश्लेषणात्मक शिल्प और उसकी समस्या का निदान ढूँढने का प्रयत्न कवि ने किया है। कथा इतनी है—

सागर पर सेतु का बनना पूर्ण हो गया है। रात्रि के समय राम चिन्तन में व्यग्र हैं। वे युद्ध के पक्ष में नहीं हैं। लक्ष्मण से उनकी बात होती है, पर वे सतुष्ट नहीं होते। तब तक नील ने आकर खबर दी कि सेतु के बुर्ज के पीछे एक छाया घूम रही है, शायद रावण की कोई माया है। राम उसे देखने को पहुँचते हैं छाया के हाथ में पक्षी के पंख हैं। वह राम से एकान्त में वार्ता करती है। छाया पिता दशरथ की और पंख के रूप में दूसरी छाया जटायु की है। दोनों राम को असत्य से लड़ने के लिए सलाह देती हैं। छाया की यह वार्ता पूरा एक सर्ग ले लेती है और प्रयोगवादी कविता के शिल्प में अनास्था तथा अहं के विश्लेषण में पूरा सर्ग समाप्त हो जाता है केवल अन्तिम निष्कर्ष यह निकलता है कि राम तुम्हें असत्य से लड़ना है। इस वार्ता से राम का संशय और बढ़ जाता है, जिसका रात्रि के प्रारम्भ में हुआ था। वे युद्ध करने से डिगते हैं पर हनुमान का प्रबोध उन्हें पुनः युद्ध करने की स्थिति में लाता है, विभीषण की देश-शत्रुता भी उनके हृदय को कुरेदने लगती है पर देश की दुर्दशा के साथ वह युद्ध की अनिवार्यता को भी स्वीकार करते हैं। मध्य रात्रि के बाद अन्त में पार्थिव पूजन और युद्ध के अभियान का निर्णय हो जाता है। सवेरे राम युद्ध के निर्णय को यह कह कर स्वीकार करते हैं कि—

> अब मैं निर्णय दूँ
> अपना सबका नहीं

और पार्थिव पूजन के पश्चात युद्ध का अभियान होता है।

स्पष्ट है कि काव्य की कथा केवल नाम मात्र की है। सब कुछ अनास्था, अहं, टूटते व्यक्तित्व संशय और निर्णय के चिन्तन का समाकुल शब्दार्थ हैं। राम किस प्रकार हनुमान, लक्ष्मण, विभीषण की प्रेरणाओं से युद्ध स्वीकृति प्रदान करते हैं। अकेला व्यक्ति किसी अकारण नहीं होता जैसे यही सब कुछ कवि का प्रतिपाद्य है और आज के प्रज्ञा मानव राम मानो यही कह रहे हैं कि युद्ध सम्पूर्ण समाज का दायित्व है।

रात मे छायाओं मे बात होने पर जब राम युद्ध के लिए संशयाकुल हो उटे तब लक्ष्मण कहते हैं—

सुनते हो
हनुमत प्रवीर ! सुनते हो
प्रभु के निर्णय को ?
परितापित वाणी को ?
कहते हैं रघुकुल के दुःखों का मैं कारण हूँ
सरयू से लेकर सागर तक
जो कुछ भी हुआ
या कि हो रहा है
उसका मैं
अपयशी निमित हूँ ।' (पृ० ७३)

हनुमान का उत्तर है—

'सम्भव था
सब कुछ सम्भव था
यदि यह राम की ही
व्यक्तिगत समस्या होती ।
रघुकुल के सारे दुखों के कारण राम
यदि इनका आवाहन करते
तो
सम्भव था
जो कुछ कहते हैं
सब सम्भव था ।' (पृ० ७४)

इतिहास में एक लक्ष्य व्यक्ति ही होता है जो इस प्रकार सबको प्रेरित करता है और वाध्य करता है युद्ध करने के लिए—और वही इतिहास व्यक्ति राम हैं। हनुमान कहते है—

'ये छोटे-छोटे बौने
किस आवाहन पर
महा सेतु निर्माण कर रहे ?
वह महासेतु

रामचरित की प्रतिस्पर्द्धी रचनाएँ

तुलसीदास के रामचरित मानस की रचना के बाद भगवान राम की परम-ब्रह्म रूप में जो प्रतिष्ठा लोकमानस में स्थिर हुई, उसे अतिक्रान्त करने का साहस विरले कवि में ही हो सकता था। परमब्रह्म राम के गुणगान की तुलना में रावण के यथार्थ पराक्रम, उसके मानवतुल्य शील, उसकी अपनी जातिगत राष्ट्रनिष्ठा का गाने की हिम्मत किस कवि में होती। क्योंकि इधर एक हजार वर्षों में रावण अत्याचार का प्रतीक हो मान लिया गया था। और तुलसीदास के बाद तो जबसे उसका पुतला जलाया जाने लगा, रामचरित के प्रसंग में प्रत्येक कवि कथावाचक एवं विचारक के लिए रावण के कुकृत्यों की खोज एक रूढ़ि परम्परा हो गयी।

पर यहाँ एक विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है, क्या वाल्मीकि रामायण भी जो रामचरित पर आदि रचना है रावण को इसी रूप में ग्रहण करता है? क्या उसमें भी रावण अत्याचार और पाप का ही प्रतीक है? संभवतः वाल्मीकि रामायण में ऐसा दृष्टिकोण आदिकवि का नहीं है। इसमें एक प्रतिनायक के रूप में रावण का चित्रण है, यद्यपि प्रधान रूप से राम गुणगायन ही कवि का उद्देश्य है पर रावण के गुण, विक्रम और विभव को भी आदि कवि ने स्मरण किया है। हनुमानजी मेघनाद के ब्रह्मास्त्र से बंधकर जब रावण की सभा में पहुँचते हैं, जब उसके स्वरूप, विभव और प्रभाव को अपनी आँखों से देखते हैं तब महान विक्रमी ज्ञानी वानरेन्द्र हनुमान के मन से ये विचार फूट पड़ते हैं—

> अपश्यद् राक्षसपतिं हनूमानतितेजसम् ।
> *वेष्टितं मेरुशिखरे सतोयमिव तोयदम्* ॥
> स तैः सम्पीड्यमानोऽपि रक्षोभिर्भीमविक्रमैः ।
> विस्मयं परमं गत्वा रक्षो ऽध्यपमवैक्षत ॥

भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनुमान् राक्षसेश्वरम् ।
मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः ॥
अहोरूपमहो धैर्यमहो सत्यमहो द्युतिः ।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता ॥
यद्यधर्मो न बलवान स्यादयं राक्षसेश्वरः ।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ॥
अस्य क्रूरैः नृशंसैश्च कर्मभिलोककुत्सितैः ।
सर्वे बिभ्यति खल्व स्माल्लोकाः सामरदानवाः ॥
अयं ह्युत्सहते क्रुद्धं कर्तुमेकार्णवं जगत्
इति चिन्तां बहुविधामकरोन्मतिमान् कविः ।
दृष्ट्वा राक्षसराजस्य प्रभावममितौजसः ॥
(वा० सु० कं० ४६ । १४-२० ।)

(अर्थात् इस प्रकार हनुमान ने मंत्रियो से घिरे अत्यन्त तेजस्वी स्वर्णसिंहासनासीन राक्षसराज रावण को मेरु शिखर पर स्थित सजल बादल के समान देखा। यद्यपि हनुमान राक्षसो द्वारा पीड़ित किए गए थे तो भी वे रावण को विस्मय मे भर कर गौर से देखते रहे। तेजस्वी रावण को अच्छी तरह देखकर हनुमान स्वयं उसके प्रभाव से मोहित हो गये और मन ही मन इस प्रकार सोचने लगे—अहो! इस राक्षसराज रावण का रूप कैसा सुहावना है! धैर्य क्या ही अद्भुत है! कैसी अप्रतिम शक्ति है! और क्या ही विस्मय में भर देने वाला तेज है! इस राक्षसराज रावण का सम्राटों के उपयुक्त सभी लक्षणों से युक्त होना एक आश्चर्य की बात है। क्या पूछना है? यदि इस रावण में अधर्म की प्रवृत्ति बलवान न होती तो यह निश्चय ही इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवलोक का संरक्षक हो सकता था। इसके नृशंसतापूर्ण क्रूर कर्मों के कारण देव और दानव दोनो के लोक डर से कापते रहते हैं। यह रावण क्रुद्ध होने पर संपूर्ण जगत को एक समुद्र मे डुबा सकता है। मतिमान हनुमान राक्षसराज रावण के अमित प्रभाव तेज को देखकर ऐसी ही अनेक प्रकार की बातें सोचने लगे।)

आदि कवि ने हनुमान से रावण के सम्बन्ध मे जो कुछ कहवाया है उसमे ऐतिहासिक तथ्य है पिछले कवियो ने हनुमान से रावण के प्रथम दर्शन के समय ऐसी बातें नही कहवाई हैं। वाल्मीकि को रावण की वास्तविक महिमा का पता था और वे उसे सत्य रूप में हनुमान द्वारा उद्घाटित करवा देते हैं।

मही बात तो यही है कि देव और दानव दोनों जातियों के ऊपर, जो उस समय संसार को बड़ी-बड़ी जातियाँ थी, राक्षस जाति के वीर रावण की विजय पताका का आतंक छाया था। रावण की जाति ही राक्षस थी अथवा यो कहना चाहिए कि राक्षस जाति का सूर्य उस समय मध्याह्न मे तप रहा था। राक्षसो मे देव-दानव जातियो के पराजित हो जाने पर मानव, वानर, जैसी जातियो के अस्तित्व को गणना उस युग के लोग क्या करते? पर हुआ उलटा ही, देवों और दानवो पर विजयी राक्षस मानव और वानर जातियो से पराजित हो गये। न केवल राक्षस जाति पराजित हुई। कलान्तर मे लङ्का के समुद्र में डूब जाने से राक्षसों की सपूर्ण सस्कृति, उनका साहित्य सभी लुप्त हो गया और उसका परिणाम यह हुआ कि लङ्का और रावण का नाम, राक्षस की जाति केवल अत्याचार के प्रतीक बन गये। वाल्मीकि के बाद बीसवी शताब्दी के पूर्व किसी क्रान्तदर्शी कवि ने रावण के वास्तविक गुण शील को अपनी अन्तर्दृष्टि से खोजने की चेष्टा नही की।

बीसवी शताब्दी मे भी इस तथ्य की ओर ध्यान देने वाले कनिष्टि-काधिष्ठित कवि ही है। नही तो रामचरित पर काव्य रचना करने वाले श्री मैथिलीशरण गुप्त से लेकर छायावादी निराला पंत, तक सभी अत्याचारी रावण को कल्पना से आवेष्टित हैं। डा० बल्देवप्रसाद मिश्र सरीखे विद्वान दार्शनिक भी रावण और राक्षस जाति के वास्तविक स्वरूप को आँकने मे रुचि न ले सके। इस प्रकार के लेखा-जोखा का महत्वपूर्ण कार्य आचार्य चतुरसेन ने अपने उपन्यास 'वयरक्षामः' मे किया।

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

अशोक-वन

रावण की राक्षसी सस्कृति के साथ उसमे अर्जित पराक्रम की एक अमिट झांकी, जिसमे राम और रावण को गुण रेखाएँ निरपेक्ष भाव से शब्द के चित्र में खींच दी गयी। श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने 'अशोकवन' मे प्रस्तुत की। इस रचना को हम प्रतिस्पर्द्धी रचना तो नही कह सकते, क्योकि राक्षस-संस्कृति मे आर्य सस्कृति की श्रेष्ठता ही इस एकाकी का उद्देश्य है परन्तु राक्षस-राज रावण के निर्मल पराक्रम की जो खोज मिश्रजी ने प्रस्तुत की है, उसमे पाप का, अन्याय का, दुश्चरित का, हेयवृत्ति का नाम नहीं है। रावण की राजनीति मिश्र जी के विचारों मे बहुत ऊँची उठी है, इसलिए प्रतिस्पर्द्धी रचनाओं

की चर्चा करते हुए पहले मिश्र जी के 'अशोक वन' में चित्रित रावण के चरितपर एक दृष्टि हमें देनी चाहिए।

सीता का हरण रावण ने कामुकतावश नहीं किया था, उसमें उसने अपनी ऊँची राजनीति और भावना का परिचय दिया है, देखिए 'अशोक वन' में मन्दोदरी और रावण का यह उत्तर-प्रत्युत्तर—

'मन्दोदरी—उसका अनुराग छोड़ दो नाथ। संसार में सुन्दरियों की कमी नहीं है।

रावण—जिस शत्रु ने बहन सूर्पणखा के नाक-कान काट लिए, जिसने खरदूषण और त्रिशिरा का वध किया, जो पंचवटी में केन्द्र बनाकर मेरे राज्य में विद्रोह फैला रहा है, उसका क्या उपाय करूँगा। जानकीहरण मैंने नीति के अनुरूप किया। शत्रु की रमणी का अपहरण नीति है और अब जब उसे यहाँ ले आया तो उसके प्रति भी कोई धर्म है या नहीं ? प्रतिहिंसा में उसके नाक-कान काट लेना ही साधारण पुरुष का काम होता, तुम जानती हो रावण असाधारण है।'

रावण की महानता का दूसरा पक्ष देखिए—

'और फिर रथ से उतार कर अपने भवन में—नहीं प्रिये, यह अनीति होगी। रावण उस नारी को ग्रहण कभी नहीं करेगा, जिसकी आँखें उसका स्वागत न करें, जिसके कपोल उसे देखकर टहटहे लाल न हो जांय, जिसके हर साँस में अनुराग की रागिनी न हो।'

'यदि राम में बल होगा तो मुझे हराकर उसे ले जायगा। निराशा मेरे लिए नहीं है प्रिये! चलने दो यह द्वन्द्व। विश्वविजयी रावण एक ओर और यह जानकी, मोहिनी जानकी दूसरी ओर। संसार का सबसे प्रतापी पुरुष और संसार की सबसे सुन्दर रमणी।'

'शत्रु की रमणी को इतना मान कब किसने दिया होगा, प्रिये !'

'नीति और मर्यादा के विचार में आज यह सुनना पड़ता, नहीं तो फिर इसे अशोक वन में रख कर अपने अन्तःपुर में रखता।'

रावण की इस असाधारण दृष्टि-उन्मेषी चित्रण पहली बार लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'अशोक वन' में देखने को मिला। मिश्र जी स्वभावतः बौद्धिक नाटककार हैं, जो किसी घटना के मूल की ओर अधिक जाते हैं, जिनकी अधिक दृष्टि समस्याओं के आकलन में रहती है। उन्होंने रावण के सत्य स्वरूप को बहुत कुछ अपने एकांकी में रख दिया है।

श्री चतुरसेन शास्त्री

मेघनाद

चतुरसेन शास्त्री का १६६१ में 'मेघनाद' नाटक प्रकाशित हुआ। इस नाटक में पाँच अंक हैं। अंक दृश्यों में विभाजित हैं। नाटक का शिल्प पारम्परिक है। नाटक की कथावस्तु सुगठित नहीं है फिर भी आकर्षक और प्रेरणाप्रद है। इस नाटक का आधार माइकेल मधुसूदनदत्त का प्रसिद्ध महाकाव्य 'मेघनाद वध' है जिसमें पूरी कथा ही नाटकीय ढङ्ग से प्रस्तुत की गई है। चतुरसेन शास्त्री ने अपने प्रवचन में इसे स्वयं स्वीकार किये है।

इस रचना का महत्त्व हमारे लिए इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इसमें राक्षस संस्कृति का उदात्त रूप हमारे सम्मुख रखा गया है। कथानक का आरम्भ रावण द्वारा अपने वीर पुत्र वीरबाहु के निधन के शोक से आरम्भ होता है और अंत भी मेघनाद के वध के शोक में होता है। बीच में अपने राष्ट्र और जाति संस्कृति की रक्षा के लिए मेघनाद और उसकी धर्मपत्नी सुलोचना द्वारा उत्साह एवं युद्ध कौशल का उदात्त रूप सामने आता है। इस प्रकार नाटक वीर और करुण भावों से ओत-प्रोत है।

इस नाटक में विभीषण का चरित्र जातीय दृष्टि से हीन दिखाया गया है लेकिन वह भी मेघनाद के वध पर आत्मीय स्नेह से रो पड़ता है। रामकथा में भक्ति और भगवान की सीमा, दानव और देव वृत्ति की महिमा इस नाटक में दूर हटा दी गयी है।

सुलोचना के चरित्र को उदात्त रूप में रखने का प्रयत्न किया गया है। सुलोचना के साथ उसकी सखियाँ सैनिक वेश में सजकर राघव सेना से लड़ने के लिए तैयार हो जाती हैं और सुलोचना उनका उद्बोधन करती हुई कहती है—

'वीर दैत्य बालाओ, मैं यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि निजभुज बल से राघव के विकट कटक को पराजित करके मैं नगर में प्रवेश करूँगी और वीरेन्द्र के पास जाऊँगी। हम दानव बालाएँ हैं। शत्रु का वध करना अथवा शत्रु शोणित नद में डूब मरना दानव कुल का नियम है। हमारे अधर में मधु और लोचन में गरल है। चलो, तनिक राम का बल देखें। अरी, मैं क्षणभर उस रूप को देखूँगी जिसे देखकर सूर्पणखा पंचवटी में मोहित हो गयी थी। उस यति लक्ष्मण को देखूँगी जिसने लंका को भयाकुल कर रखा है। मैं उस राक्षस कुलांगार विभीषण को नागपाश में बाँध लाऊँगी। जैसे हथिनी कमल-वन को

कुचलती है, उसी भांति मैं उस भिक्षुक राम के सैन्य को आज कुचल डालूंगी।' (पृ० ४८)

श्री हरदयालु सिंह 'हरिनाथ'

रावण महाकाव्य

राम के प्रतिस्पर्द्धी नायक रावण के चरित्र को लेकर 'रावण महाकाव्य नाम से विस्तृत रचना श्री हरदयालुसिंह की सन् १९५२ में प्रकाशित हुई। दैत्य संस्कृति की कविता का विषय बनाने की ओर श्री हरदयालुसिंह का ध्यान प्रारम्भ से रहा है। वे संस्कृत आचार्यों को इस मान्यता को चुनौती देने पर उतारू थे कि महाकाव्यों का नायक कोई देवचरित मानवकुल का सम्राट ही हो सकता है। रावण महाकाव्य के पूर्व उन्होंने दैत्यराज बलि को नायक बनाकर दैत्यवंश नाम से एक ललित महाकाव्य ब्रजभाषा में लिखा है, जो वस्तुतः कालिदास के रघुवंश के जोड़ में की गई रचना है। दैत्यवंश के बाद रामचरित की प्रतिस्पर्द्धा में उन्होंने रावण महाकाव्य लिखा।

यद्यपि रावण महाकाव्य में अपेक्षित गंभीरता, रावण के चरित का अन्त-र्विश्लेषण और राक्षस संस्कृति की यथार्थ विभूति का चित्रण नहीं हुआ है, फिर भी कवि ने अपनी कल्पना और पौराणिक कथाओं का आधार लेकर एक मनो-रम अभिरुचिपूर्ण और अभिनव काव्य, प्रस्तुत किया है। कम से कम रावण की लोकप्रियता, नीतिकता तथा सत्य विक्रम का वर्णन कवि करता है। रामचरित की अतिशयोक्तियों के सामने इस रावण महाकाव्य का प्रस्तुत किया जाना दुरा-ग्रह नहीं, एक सत्य साहस है, इसमें इस वैज्ञानिक युग में, जबकि इतिहास की परतों को समुद्र की तह से निकाल कर उलटा जा रहा है। अतिशयोक्तिपूर्ण राम की विजयगाथा, राम के यश को हल्का बनाती है—ऐसी प्रतिस्पर्द्धी रचनाओं ने विचारवानों की दृष्टि में राम के यश को ही ऊंचा किया है।

'रावण महाकाव्य' ब्रजभाषा में है। इसमें कवित्त, सवैया, दोहा, चौपाई हरिगीतिका, रूपमाला–विविध छंदों का प्रयोग हुआ है। कुल १७ सर्ग इसमें हैं। कथा का आरम्भ रावण जन्म से होता है। पहले सर्ग में विन्ध्याटवी का वर्णन है, जहाँ सुमाली, केतुमती, प्रहस्त, कैकसी अपने वंश की वृद्धि की बात सोचते हैं। कैकसी लंकापति कुबेर के पिता विश्रवा के पास पुत्र-कामना से जाती है। और मुनि के आशीर्वाद से उसे तीन पुत्र और एक पुत्री पैदा होती है। इसके बाद रावण के उत्कर्ष की वही कथा चलती है जो वाल्मीकि रामायण

उत्तरकाण्ड में वर्णित है। कथा को पौराणिक मान्यताओं में कवि ने कोई नया मोड़ नहीं उपस्थित किया है। कुछ कौतूहलपूर्ण कल्पनाएं अवश्य की हैं। रावण कुम्भकरण और विभीषण की उग्र तपस्या, ब्रह्मा से वर प्राप्ति, पिता विश्रवा की सहायता से लंका के राज्य की वापसी, मय दानव द्वारा लंका का निर्माण और फिर उसकी पुत्री मन्दोदरी से रावण का विवाह—यहाँ, कथा पौराणिक आधारों पर ज्यों की त्यों चलती रहती है। फिर कवि कथा में नया प्रसंग उपस्थित करता है, अर्थात् रावण को देवों की विजय करने के लिए विचार क्यों पैदा हुआ, उसे मुनि पुलस्त्य से पता चला कि देवों ने विष्णु को उकसा कर मेरे नाना माली का संहार करवाया था। यद्यपि रावण अपने लंका के राज्य में ही पूर्ण सन्तुष्ट था पर देवों की इन अनीतियों का कुचक्र उसे हठात् देवों की विजय करने के लिए प्रेरित करने लगा। साथ ही उसके पिता के ही दूसरे पुत्र कुबेर जो अपने को यक्ष कह कर रावण आदि को राक्षस कहकर उपेक्षित करते थे, यह भी रावण को सह्य नहीं था—

> कह्यो दसमुख, मोहि है निज भाग्य पै संतोष।
> देव ही को दोष सो सुनि होत मोहि न रोष।
> कहत मोको रच्छ कुस यह है कहावत जच्छ
> सकल सो वृतान्त मुनिवर कहहु तह परतच्छ।

सर्ग ८।११।

> लग्यो करन हिय माहि विचारा
> नानहिं समर विष्णु संहारा
> देव न मिति उनकों उकसायो
> अस अति प्रबल वैर बंधवायो
> देवहिं सब आपति के कारन
> इनहीं को अब करो संहारन।

सर्ग ४।

देवों की विजय के बाद राम के विरोध की बात आती है। राम दण्डकारण में निवास कर रहे थे। रावण वहां अपना उपनिवेश स्थापितकर सूर्पणखा को उसका प्रशासक तथा खरदूषण और त्रिशिरा को उसका सहायक नियुक्त किया था। यहां कवि पौराणिक मान्यताओं से एवं रामचरित मानस की मान्यताओं से बचकर इधर-उधर नहीं होता, उसी को परिवर्द्धित कर देता है। कथा यों चलती है कि रावण का आदेश है कोई आर्य मुनि यज्ञ, जप न करने पावें

क्योंकि इसके द्वारा ये राक्षस साम्राज्य के विनाश का अभिचार करते हैं। मुनि इससे संतप्त हो उठते हैं, शरभंग इस शोक से अनल मे प्रवेश कर जाते हैं। ऋषि लोग प्रवाद फैला देते हैं कि राक्षसों को शरभंग ने जीवित जला दिया। राम को जब यह कथा सुनाई पड़ती है वे ऋषियो की दशा पर तरस खाते हैं और राक्षसों के विनाश की प्रतिज्ञा करते हैं आगे फिर वही कथा चलती है जो राम-रावण विग्रह की प्रसिद्ध राम कहानी है। राम उसी रोष से सूर्पणखा के नाक कान काटने का आदेश देते हैं। रावण सीता का हरण करता है। विभीषण रावण से असन्तुष्ट है, वह राज छोड़कर शत्रु राम से मिल जाता है। लंका राज्य राम विभीषण को देते हैं और स्वयं अयोध्या आ जाते है। इस प्रकार काव्य में राम-रावण की विग्रह कथा को कवि ने राम के माध्यम से न कहकर रावण के माध्यम से प्रस्तुत किया है और उसमें एक नवीनता आती है, हम रावण की परिस्थितियो के बीच इस महान् विग्रह को समझने की चेष्टा करते हैं।

रावण की पराजय पर ही काव्य की कथा नही समाप्त होती, ऐसा होने पर कवि का रावण को काव्य का नायक बनाना ही निष्फल होता। रावण की पराजय के बाद विभीषण ने राज्य प्राप्त कर लिया। रावण की पत्नियां विधवा हो गयी। उसकी विधवा पत्नी धालमालिनी को एक लड़का इस महा-समर के बाद पैदा हुआ। उसका नाम अरिमर्दन रखा गया, अरिमर्दन बड़ा हुआ। अस्त्र-शस्त्र की विद्या प्राप्त करने के बाद युवा अरिमर्दन पिता का योग्य उत्तराधिकारी सिद्ध हुआ। प्रसंगवश उसने अपने पिता के जीवन के विषय मे जब जिज्ञासा व्यक्त की तो माता ने विभीषण के राजद्रोह की सारी कहानी एवं पिता के पराजय का इतिहास बताया। विभीषण इस समय लंका का राजा था। अरिमर्दन यह सुनकर अमर्ष से भर गया और लंका को विजय करने की प्रतिज्ञा की—

> या विधि मातु वचन दुख पागे
> अरिमर्दन उर सर सम लागे
> अबलौं कहा प्रसंग दुरायो
> पहिलेहि काहे न मोहि बतायो
> बीतो इतो वयस यहि भांतो
> जीवत मोहि अघन आराती।

अखिल अरातिन चक्र को, जो नहिं करौं विनास।
कोटि जनम लगि तो लहौं, घोर नरक में वास। सर्ग १६।

अरिमर्दन का चरित अत्यन्त निर्मल और प्रेरणाप्रद है जो शत्रु की मुट्ठी से, राष्ट्रद्रोही विभीषण के शासन में अपनी जाति और राष्ट्रभूमि को स्वतंत्र करता है। अरिमर्दन ने लंका पर चढ़ायी कर दी, विभीषण परास्त हो गया तो उसने भागकर अयोध्या से सहायता मांगी कुश सेना लेकर पहुँचे। घनघोर युद्ध हुआ परन्तु विजय किसी पक्ष की नहीं हुई। प्रजा पीड़ित होने लगी तब उसने कुश में आकर निवेदन किया कि अब युद्ध बन्दकर दिया जाय नहीं तो प्रजा का ध्वंस हो जायगा। लाचार प्रजा को अरिमर्दन के पक्ष में देखकर कुश ने युद्ध बन्द कर दिया और अरिमर्दन को प्रजा का प्रतिनिधि स्वीकार किया। यह रावण के पुत्र की सच्ची विजय थी। इससे प्रकट होता था कि अपने सर्व-सत्ता सम्पन्न प्रभु रावण और उनके वंशज के प्रति प्रजा के प्रेम में कोई अन्तर नहीं आया था। प्रजा ने ही अपनी सहमति प्रकट कर युद्ध बन्द करवा दिया और प्रजासत्तात्मक-राज्य की स्थापना कर रावण-पुत्र को अपना प्रति-निधि चुनकर जाति और राष्ट्र के प्रति अपनी प्रगाढ़ भक्ति का परिचय दिया और इस प्रकार रावण को लेकर लिखा गया यह महाकाव्य एक नूतन, युग-मंगल एवं कथा-विश्लेषणात्मक प्रेरणा के साथ संपूर्ण होता है —

इमि घोर युद्ध निवारि कुस ने सभा आयोजन कियो
अस चन्द्र के सुकुमार ने तेहि मांहि निज भाषन दियो
आजु तें लंकापुरी स्वाधीन तो ह्वै जाइहै
निज करन सो सासन-व्यवस्था प्रजा आपु बनाइहै।

\+ \+ \+

कर पकरि तरनीसेन को अरिमर्दनहु प्रमुदित हियो
धारा सभा को ताहि पुनि अध्यक्ष निर्वाचित कियो।

सर्ग १७।

बीच-बीच में कथा को आवश्यक मोड़ भी कवि अपनी कल्पना में देता रहा है और उसे रावण की महिमा के पक्ष में उल्टा-पल्टा है। लक्ष्मण को शक्ति मूर्च्छा होने पर रामदूत जब सुखेन वैद्य को लेने लंका पहुंचते है तब वैद्य रावण से राम के औषध करने हेतु वहां जाने की अनुमति मांगता है और रावण तुरन्त आदेश देता है। यह रावण के हृदय की विशेषता है—

आये वैद्य लंकपति पासा
कियो वचन यहि भांति प्रकासा
भेज्यो दूत राम मोहिं ल्यावन
'तुरत जाहु तहां, कह रावन।
+ + +
आवत वैद्य सुखेन किन्ही सफल उपाय।
दै संजीवनी लखन के कीन्हों तुरत बचाय।। सर्ग-१३।

जहां-तहां कथा के दो प्रसङ्गों को संक्षिप्त कर एक भी कर दिया है क्योंकि सर्ग महाकाव्य में पौराणिक शैली के कथा विस्तार का अवकाश नहीं था। उपर्युक्त लक्ष्मण शक्ति की घटना को नागपाश की घटना के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। लंका का वर्णन करते समय कवि ने आधुनिक वैज्ञानिक समृद्धि की परिपूर्णता का भी पुट उसमें दिया है और लंका को वैज्ञानिक ढङ्ग से सुदृढ राष्ट्र का रूप कल्पित किया है।

चहुँ दिसि लंकपुरी के लौह चक्र विसाल
भ्रमत जो अति वेग सौ जल रासि में सब काल
पुहुपमान कुबेर को खगपतिहि जु मैं उड़ान
जान चाहैं पार तिनको लेत खेंचि डुबाय। सर्ग-५।

विभीषण की रामभक्ति की जितनी प्रशंसा रामचरित मानस मे की गयी है उतनी ही निन्दा उसके राष्ट्र के प्रति इस रावण महाकाव्य मे है। मन्दोदरी कहती है—

सो कर कैसे गहे जेहि ने
अरि को पतिघात उपाय बतायो
त्यों घननाद से सूर-सपूत को
जाने खड़े-खड़े सीस कटाये।
कै छल बैरिन को दै सहाय
भलो विधि बंस को पार करायो
देस औ राह औ जाति को गौरव
जाने सबै निज हेतु नसायो। - सर्ग-१४।

कवि की ये पंक्तियां हमारे हृदय को झकझोर देती हैं और विभीषण की रामभक्ति का पर्दाफाश हो जाता है।

कवि ने राक्षसदल के वीरों और उनकी रमणियों का जो चित्र खींचा है, उससे परम्परागत यह रूढ़ि समाप्त हो जाती है कि राक्षसनियाँ कुरूप ही होती थीं, उनका कोई रूप नहीं था। राक्षस जाति को वास्तविक रूप प्रस्तुत करने का एक सफल प्रयत्न कवि का रहा है—रावण की माता का यह चित्र देखिए, जब यह विश्रवा के पास जाती है—

> श्वेत रंग सारी अरु रंग मिल गई ऐसी
> भेद जामें रंचहु न परत लखाई है।
> तापै पीतधार या सुधा की सरसाई चन्द
> चकरी भरत मानो व्योम सौं जुन्हाई है।
> दमकत दिव्य कान्ता स्वच्छ चन्द्रकान्ति की
> निकरी परत सब गात सौं गुराई है,
> सेत कौल-दाम सी, लिपी है परिधानी जाति
> अन्तर ऊपर नहीं परत दिखाई है। सर्ग १८/४६।

संक्षेप में रावण महाकाव्य उस परम्परा को एक नयी मोड़ देता है जो पिटी-पिटाई लकीर पर रामकथा को कहने के अभ्यस्त हो गये थे, यद्यपि पौराणिक लकीर ही इस महाकाव्य की भी रीढ़ है पर युग-अनुरूप उसमें कई नई उद्भावनाएँ हरदयालु सिंह ने की है, विशेषतः अरिमर्दन का उत्कर्ष, जिसने पिता रावण का बदला राष्ट्रद्रोही विभीषण से चुकाया, जो लंका की प्रजा का इतना प्यारा हुआ कि प्रजा ने स्वयं राम-पुत्र कुश से मिलकर अरिमर्दन को अपना शासक स्वीकार कर राम-पुत्र का प्रकारान्तर से तिरस्कार कर दिया। यह लंका की राष्ट्र-जागृति तथा स्वदेश जागृति का संकेत है। और इन्हीं अनेक दृष्टियों से रामकथा परम्परा में रावण महाकाव्य का एक अनोखा स्थान है।

प्रतिस्पर्द्धी रचनाओं में इस प्रकार की अन्य साहित्यिक कृतियाँ नहीं हैं। लेकिन दो अन्य ग्रन्थों का नाम इस सिलसिले में अवश्य लेना चाहिए।

श्री कृष्ण हसरत

रावण राज्य

एक है सन् १९२३ की प्रकाशित श्री कृष्ण हसरत का लिखा हुआ उपन्यास इसका नाम है 'रावण राज्य'। यद्यपि इसमें रावण के उत्थान और पतन की कहानी मात्र ही है और पतन की कहानी के साथ राम की विजय गाथा गायी जाती है लेकिन लेखक का दृष्टिकोण अत्यन्त स्पष्ट है कि वह रावण के सही चित्र को सामने रखना चाहता है—जैसा कि उसने भूमिका में लिखा है—

'कविकुल चूडामणि महर्षि वाल्मीकि ने रावण के चरित चित्रण मे कोई कमी नहीं रखी किन्तु इसके उपरान्त भाषा काव्य मे कविवर तुलसीदास आदि ने रावण को हर तरह से नीचा दिखाया है। पहले तो बहुत संक्षेप में रावण के राजत्व काल का वर्णन, दूसरे उस वर्णन मे भी मूढ़, कुटिल, कुकर्मी राक्षस आदि हीन कर्म को दिखाकर उसे समाज की दृष्टि मे पतित कर देने का प्रयास किया है जिससे लोग रावण को वास्तव मे राक्षस और नीचकर्मा मानने लगे।

पाठक इसे धर्म पुस्तक नही वरन् रावण के चरित्र के सिलसिले मे बनी मनोरंजक पुस्तक समझें।' भूमिका १-५।

यद्यपि यह उपन्यास बहुत पहले सन् १९२३ मे लिखा गया। श्री प्रेमचंद की रामचर्चा भी इसके बाद की रचना है पर लेखक राक्षस-संस्कृति की स्वतंत्र ऐतिहासिक उद्भावना में पाठक को उद्बुद्ध करता है। इतने पहले ऐसे विश्लेषण की आशा नही की जा सकती थी, इसके लिए लेखक को भूरि-भूरि प्रशंसा की जानी चाहिए—

'इसीलिए मेरे प्रतिनिधियो! तुम इस प्रकार का राजकाज चलाओ जिसमें फिर पीछे पछताना न पड़े। जहां तक बन पड़े अपने धर्म का प्रचार करो। राजा और प्रजा का एक धर्म हो जाने से राज्य की नींव बहुत पक्की हो जाती है। विद्यार्थी से प्रजा बिदती है। इसलिए युक्तिपूर्वक राज्य-परिचालन कर तुम लोग सबसे पहले इसका प्रयत्न करो जिससे देवता और ब्राह्मणों के चलाये लोक धर्म से घृणा कर प्रजा हमारे राक्षस-धर्म को पसन्द करे। इसके बाद लंकेश की जय-जय करके सभा भवन गूंज उठा। सब लोगों ने रावण को प्रशंसा की कि ऐसी नीति कभी किसी ने नहीं चलायी। पृ० ११८-११९।

उपन्यास में कुल ४० परिच्छेद हैं। २० परिच्छेदो में रावण का उत्कर्ष और अन्त के २० परिच्छेदो में विभीषण से द्रोह राम से विग्रह तथा राम विजय की कहानी है। अन्त में उपसंहार करते हुए लेखक ने लिखा है।

'इस प्रकार रावण के साथ-साथ एक समय उनके शुभ कर्मों से उसका उत्थान और दूसरे समय उसके अशुभ कर्मों से उसका पतन हुआ। रावण ने प्रथम अपने चरित्र मे जितना उद्योग किया, उतना ही उन्नत हुआ, अन्त में जितना अन्याय और अभिमान किया उतना ही पतनावस्था को प्राप्त हुआ।'

लेखक ने इस उपन्यास द्वारा रावण को रामचरित मानस तथा अन्य ऐसे रामकथा काव्यों में वर्णित रावण से ऊँचे उठाया है। इसमें सन्देह नहीं लेखक का दृष्टिकोण रावण के विभूतिमय चरित्र को ही सामने रखना है, अतः इस रचना को हमने प्रतिस्पर्द्धी रचनाओं में विचारार्थ लिया।

अक्षयकुमार जैन के 'युगपुरुष राम' में संगृहीत कहानी 'महापण्डित रावण आचार्य के रूप में' भी रामकथा की प्रतिस्पर्द्धी-रचना की कोटि में आती है, कहानी का अन्त ही इस वाक्य से हुआ है—'सबके हृदय में यह भाव था कि रावण क्या मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं !'

८

तुलसीदास के परवर्ती राम साहित्य में रामभक्ति का निदर्शन

भारतीय भक्तिमार्ग के तीन स्रोत कहे जाते हैं—वेद, तन्त्र शास्त्र और पुराण। वेद को निगम तथा तन्त्र शास्त्र को आगम कहते हैं, तुलसीदास ने रामचरितमानस मे इनको अपने 'रामचरित मानस' की रचना की पृष्ठ-भूमि बताया है—'नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्'। अतः रामचरित मानस काव्य तथा भक्ति का निदर्शन दोनो साथ-साथ है। और जैसा कि पहले कहा जा चुका है तुलसीदास के रामचरित मानस तथा राम-साहित्य की अन्य रचनाओ मे राम के विभिन्न ईश्वरीय रूप की उपासना तथा उनकी नवधा भक्ति अनुस्यूत रही, और परब्रह्म की अवतार भावना उनकी भूमिका रही।

आधुनिक युग में खड़ी बोली में रामचरित उपाध्याय ने जब प्रथम 'रामचरित चिन्तामणि' नाम से बड़ा प्रबन्ध काव्य रामकथा पर लिखा तो भक्ति की मान्यता का वह मार्ग कुछ परिवर्तित हुआ और वह परिवर्तन सामान्य रूप से मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत', पंचवटी', और 'प्रदक्षिणा', श्याम नारायण पांडेय के 'तुमुल' और 'जय हनुमान', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के 'उर्मिला' काव्य तथा हरिऔध के 'वैदेही-वनवास' एवं ऐसी प्रकार अन्य कवियो की कृतियों में बना रहा—उसका रूप इस प्रकार था-—

(१) एक ओर तो इन कवियों ने रामभक्ति की परंपरागत मान्यताओं को एकमात्र अद्वैत विचारधारा मे परिणत कर दिया। सर्वत्र उस एक सृष्टि नियन्ता के रूप मे राम की भावना का और उस भावना में अपना सहज अर्पण उनकी भक्ति का प्रमुख स्वरूप रहा।

(२) राम को मानव-धर्म और राष्ट्र का प्रतोक मानकर रामकथा का परिष्कार हुआ।

तुलसीदास के बाद राम साहित्य में रामभक्ति का सर्वथा विलक्षण स्वरूप रसिक-सम्प्रदाय के साहित्य में आया जिसमें राम वीर-धर्म, मानव धर्म, राष्ट्र धर्म आदि अनेक दिव्य गुणों से पृथक् केवल विलासी राम के रूप में चित्रित हुए। इस स्वरूप के चित्रण में रसिक साहित्य के सैकड़ों कवियों ने दास्य-भाव, सखा भाव और आचार्य भाव की जो विशिष्ट भक्ति प्रणालियाँ विकसित की उनकी परम्परा रामचरित मानस से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर कृष्ण भक्ति से अपना सम्बन्ध जोड़ती है[१]। उन भक्तों के द्वारा सीताराम के विलास का जो उत्कट वर्णन हुआ उससे राम भक्ति की मान्यताओं पर भी लोक-दृष्टि की श्रद्धा में स्वभावतः कमी आ गयी है। इस सम्प्रदाय ने एक और नयी बात की, वह यह है कि राम के स्थान पर कहीं-कहीं सीता और उनकी भक्ति को ही अधिक महत्त्व दिया है।

इसके अतिरिक्त तुलसीदासोत्तर राम साहित्य में रामकथा के अग्रभूत चरितों की भक्ति का भी राम भक्ति के साथ विकास हुआ और उनकी भक्ति पद्धति की विवेचना भी हुई। रामभक्त-हनुमान, लक्ष्मण, शबरी, भरत की भक्ति-भावना भी कवियों ने प्रस्तुत की। इनमें हनुमान-भक्ति का व्यापक प्रचार रामभक्ति की भांति हुआ।

इस प्रकार तुलसीदास के बाद रामभक्ति का एक निश्चित और सुव्यवस्थित रूप नहीं रहा—विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, अद्वैत, मधुरभाव, मानवीयता तथा राष्ट्रीयता आदि अनेक रूपों में रामभक्ति के प्रति अपने भावों का निदर्शन हिन्दी के कुशल कवि करते रहे हैं। इनके मूल में अवतारवाद, केलिविलास की नित्यता तथा राष्ट्रधर्म का जागरण क्रमशः कारण स्वरूप रहे हैं।

इसीलिए भक्ति और दर्शन के निरूपण में तथा राष्ट्रीयता के निदर्शन में तो यत्किंचित् मात्रा में और मधुर छवि के चित्रण में तो सर्वथा रामकथा का मूल रूप ही तिरोहित होता हुआ दीख पड़ता है।

रामचरित मानस के उत्तरवर्ती राम-साहित्य में तुलसीदास के समकालीन केशवदास की रामचन्द्रिका एक प्रमुख कृति है। यद्यपि इसमें पाण्डित्य, कवित्व और शैली का प्रदर्शन ही अधिक है लेकिन उस युग में रामभक्ति का जो प्रभाव बढ़ा, तथा चित्रकूट के समीप बसे ओरछा पर उसकी जो लहर गई, शृंगारी कवि केशवदास ने उससे प्रभावित होकर राम-काव्य सृजन की प्रेरणा

१—रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ९५-९६।

प्राप्त की। अवतारवाद तथा प्रभु के सगुण रूप की पूजा, एवं उसके निर्गुण रूप की विराटता का ज्ञान रामचन्द्रिका का लक्ष्य रहा है। साथ ही केशवदास प्रतिज्ञा करते है—

जिनको यह हंसा जगत प्रशंसा मुनि जन मानस-रता,
लोचन अनुरूपनि श्याम स्वरूपनि अंजन अन्जित संता।
कालत्रयदर्शी निर्गुणपर्शी होत बिलम्ब न लागें।
तिनके गुन कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागें।

पहिला प्रकाश।२०।

अपने पाप का नाश और परमपद की प्राप्ति केशव की भक्ति का उद्देश्य है। इसी को वे अपने लिए मुनि वाल्मीकि से उपदेश रूप में प्राप्त करते हैं—

मुनी एक रूपो ? सुनो वेद जावैं
महादेव जाकों सदा चित्त लावैं
बिरंचि गुण देखें, गिरा गुण न लेखें।
अनंत मुख गावैं। विशेषहिं नचावैं।

* * *

मन लोभ मोह मद काम वश
भये न केशवदास भणि
सोई परब्रह्म श्रीराम हैं
अवतारी अवतार मणि।

पहला प्रकाश १४-१७।

रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध में कवि ने भगवत-आराधन तथा आत्म-साक्षात्कार के उपायों का वर्णन किया है। उसमे रामचन्द्र स्वयं वशिष्ठ से जीव की मुक्ति का रहस्य पूछते हैं। वशिष्ठ के उत्तरों मे योग वाशिष्ठ तथा गीता के विषयों की गहरी छाप है। काम की प्रबलता तथा जीवन-मुक्ति, भक्ति के मार्ग में उसके गहरे अवरोध का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

भूलत है कुल धर्म सबैं तबहीं
जबही यह आनि ग्रसे जू
केशव वेद पुराणनि को न सुनै
समझै तत्र में तहं मैं जू।
देवनि ते नरदेवनि ते नर ते
वर बानर ज्यों बिलसै जू।

यंत्र न मंत्र न मूरि गनै जग
योवन काम पिशाच डसे जू।

इसी प्रकार संसार के मोह की करुण ध्वनि में हृदयस्पर्शी निन्दा केशवदास जी ने रावण-अङ्गद-संवाद के प्रसङ्ग में की है—

पेट चढ़्यो पलना पलिका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ्यो मढ़्यो रे,
चौक चढ़्यो चित्रसारी चढ़्यो गजबाजि चढ़्यो गढ़ गर्व चढ़्यो रे।
व्योम विमान चढ़्यो ही रह्यो कहि केशव सो कबहूँ न चढ़्यो रे,
चेतत नाहिं अजहू चित अन्तर चाहत मूढ़ चिताइ चढ़्यो रे।
(१६वां प्रकाश-२४)

लेकिन रामभक्ति तथा दर्शन के क्षेत्र में केशवदासजी की ऐसी कोई उपलब्धि नहीं जो श्रेयस्कर कही जा सके। एक जगह वे राम को सच्चिदानन्द कहते हैं तथा उनके जप की महिमा का गान करते हैं—

जहाँ सच्चिदानन्द रूपैं धरेंगे,
सुत्रैलोक्य को ताप ताकों हरेंगे।
कहेंगो सबै नाम श्री राम ताको,
सदा सिद्ध है शुद्ध उच्चार जाको।
कहे नाम आधो सो आधो नसावै
कहे नाम पूरो सो बैकुन्ठ पावै
सुधारै दुइं लोक को वर्ण दोऊ
हिये छद्म छाड़ैं कहै वर्ण कोऊ।

दूसरी जगह राम को ईश तथा राजाओं का राजा दोनों मानकर रावण को उनके चरणों पर गिरने की शिक्षा देते हैं—

राम राजान के राज आये यहां
धाम तेरे महाभाग जागे अबै
देव मंदोदरी कुम्भकर्णादि दै
मित्र मंत्र जिते पूंछि देखो सबै।
राखिए जाति को पाति को वंश को
गोत को साधिए लोक पर लोक को।
जानि कै पां परो देतु ले कोप ले,
आसुरी ईश सीता पले ओक को।

स्पष्ट है तुलसीदास की भांति गहरी पैठ इस दिशा में केशवदास की नही है। वे केवल वस्तुवर्णन करने वाले कवि हैं। न उनमे भक्ति रस है और न भक्ति का व्यवस्थित चित्रण। उनके ये सब वर्णन और भी अधिक शिथिल बन जाते हैं जब आगे चलकर राम भक्ति, विरक्ति, जीव-धर्म आदि के सम्बन्ध मे वशिष्ठ जी से प्रश्न करते हैं—

राम—ज्योति निरीह निरंजन मातो
तामह क्यों ऋषि इच्छ बखानी।
वशिष्ठ—सकल शक्ति अनुमानिए अद्भुत ज्योति प्रकाश
जाते जग को होत है, उत्पति थिति अरुनाश
राम—जीव बधे सब आपनि माया।
कीन्हे कुकर्म मनो व काया।
जीवन चितप्रबोधन आनो
जीवन मुक्त के भेद बखानों।
वशिष्ठ—बहिरहं अति शुद्ध हियेहूँ।
जाहि न लागत कर्म कियेहूं
बाहेर मूढ़ सों अन्त सवानो
तामहं जीवन मुक्त बखानो॥
अगुन सों अवलोकिये सबही मुक्तामुक्त
अंहभाव मिटि जाहि जो कौन बद्ध को मुक्त

— — —

जानि सबै गुन दोषन छड़ै
जीवन मुक्तन के पद मड़ै॥

गीता के स्थिरधी तथा कर्मयोग के लक्षणो को ही ऊपर केशवदास ने दुहराया है।

'खड़ी बोली के पूर्व के कवियों ने भक्ति और दर्शन का जो वर्णन किया है उसे शास्त्र-सम्मत बनाकर ही। उनका इस विषय का अध्ययन संस्कृत के माध्यम से अच्छा था। भक्ति और दर्शन के विषय का सबसे अधिक विषद वर्णन रुद्र प्रताप के राम खण्ड में मिलता है, यद्यपि वह एक सुव्यवस्थित रूप मे नही है लेकिन शास्त्रानुसार है। ज्ञान का वर्णन करते हुए कवि अद्वैत सिद्धांत के प्रतिपादन का उपक्रम करता है किन्तु साथ ही प्रकृति पुरुष की महिमा गाते हुए सांख्य सिद्धान्त का पोषक भी बन जाता है—

यह विश्राम त्रिमार्ग की खंडन मंडन कारि
कहिहौं सब सिद्धान्त मत तेहि सिद्धान्त विचारि।
(बालकांड पृ० ६६)

स्पष्ट है कि रामकथा का आश्रय कर दर्शन तथा भक्ति के खंडन मंडन का उद्देश्य ही कवि ने किया है—

राम अखंड अनाथ भगवाना । विनारहित अचिंत निरवाना ।
जासु अविद्या केर विकारा । प्रगट होत है यह संसारा
जल के माहिं का धाक घुमीना । गुन बस प्रगटहिं नित्य नवीना
तैसेहि ब्रह्म सप्त निःकामा । रचत अविद्या विद्या धामा ।
अवनारी अवतरि जहां लों । सकल सृष्टि कर सर्ग तहां लों।
मिथ्या स्वप्न सरिस दरसाई । गये प्रात तेहि साव न पाई ।
तैसेहि ग्यान प्रभात बिलोई। स्वप्न सरिस फिर रहन न कोई
मोह क्षोभ-अरु लोभ सरंभा । क्रोध बहुरि हंकार अरंभा ।
माया केर विकार यह इन्द्रजाल समहोइ
जाने तें नहिं सत्यकछु तिमि जग-प्रन्थन सोइ।
जीवहिं ब्रह्म न भेद कछु, ब्रह्म जीव सिद्धान्त।
वारि पात्र जिनि भानुगत तिमि आभास प्रसांत।
जीव ब्रह्म सोधन को, बोधत कर मित सांत।
ब्रह्म निर्जहि अनभेद केरि यह यादत वेदांत।
ग्यान करम दोउ मोक्षकर दाता। काम ग्यान भगवान विधाता।
दोउ उत्तम नहिं कछु लघुताई । ग्यानहिं तें अजोनि पद पाई ।
जहां देह तहं छाया, जहं जल तहां तरंग।
जहां ब्रह्म तहं माया, प्रकृति पुरुष को अङ्ग॥
बालकांड पृ० १६-१७।

अन्तिम चार पंक्तियों मे गीता के सिद्धान्त का उल्लेख है। ज्ञान भोग और कर्म योग दोनो ही साधक को मोक्ष प्रदान करते हैं। फिर कवि का लक्ष्य गीतोक्त ब्रह्म तथा माया पुरुष और प्रकृति सम्बन्धी सिद्धान्तो को उतार देने का ही ज्ञात होता है। रामकथा मे वे कहाँ उपयुक्त लगते है, इसकी चिन्ता उसे नही है।

बृहदारण्यक उपनिषद् के आधार पर अन्तरिक्ष अक्षर ब्रह्म मे लीन है। इस तथ्य को कवि इस प्रकार प्रकट करता है—

गगन ब्रह्म तें भेद नहिं भेद वेद करि देत ।
गगन सून्यता तत्व हुइ, ब्रह्म सत्य ही हेत ।

उत्तरकाण्ड ७१६

प्रसिद्ध कवि सेनापति ने तुलसीदास की परम्परा में ही रामभक्ति का वर्णन तन्मयता के साथ किया है। उनके वर्णनों का स्वरूप वही है जो तुलसीदास की कवितावली (उत्तरकांड) तथा विनय पत्रिका में पाया जाता है। तीर्थाटन, तप, योग, दान आदि सबसे बढ़कर भक्ति की महिमा का बखान करते हुए कवि सेनापति कहते हैं—

कोई परलोक रंचक भीति भीत वीत राग
तीरथ के तीर बास पी रहत नीरही ।
कोई तपकाल बाल ही तें तजि नेह-गेह ।
आगि करि आसपास जारत सरीर ही
कोइ छाड़ि भोग जोग धार नासों मन जीति
प्रीति सुखदुखइ में साधत समीर ही
सोवै सुख सेनापति सीतापति के प्रताप
जाकी सब लागे पीर ताही रघुवीर की ।

कवितावली की निम्नलिखित पंक्तियों से ये तुलनीय हैं—

समया कछु हानि न औरन की जु पै जानकीनाथ कृपा करिहैं।
तुलसी यह जानि हिये अपने सपने नहिं कालहुँ ते डरिहैं ।।

सेनापति पर रसिक सम्प्रदाय की भक्ति भावना की भी छाप पड़ी हुई मालूम पड़ती है। इसका कारण शायद यह हो कि राजस्थान की गलता गद्दी के महात्मा पयहारी रसिक सम्प्रदाय प्रवर्तक आचार्यों मे हैं। सेनापति ब्रजभूमि मे रहे हैं इसका कारण इस विचारधारा से उनका सम्पर्क हुआ होगा और उन्होंने वैसे वर्णन भी कर दिए हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इनमे मधुर भावना की उपासना के प्रति निष्ठा है—

आनन्द मगन चन्द महामनि मन्दिर में
रमैं सियाराम सुख सों महिं ।
+ + +
दोऊ विहसत बिलसत दुख सेनापति
सुरति करत छीर सागर विहार की।

रघुराज सिंह का राम स्वयंवर राम साहित्य की एक बृहद् रचना है। राम भक्ति का गुणगान इसमे व्यवस्थित रूप से हुआ है। लेकिन कोई ऐसी मौलिक

उद्भावना कवि की नहीं है जो उल्लेखनीय हो। जो तुलसीदास कह गये हैं तथा उनके परवर्ती कवियों ने जो कहा उसे ही रघुराज सिंह दुहराते हैं। जैसा पहले उल्लेख किया गया, यह रचना विशुद्ध रूप से रघुराज सिंह की नहीं है। उसकी रचना में उनके दरबारी पंडितों तथा कवियों ने सहयोग दिया है। उसी प्रकार स्वभावतः रसिक सम्प्रदाय की भावना का भी प्रभाव रचना में जहा-तहा दिखाई पड जाता है यद्यपि कवि विशुद्ध भाव से भगवान राम की सगुण मूर्ति, तथा उसकी उपासना और ध्यान को प्रतिज्ञा ग्रन्थ के आरम्भ में करता हैं :—

> मुक्ति, मिलत हरि रूप ध्यान सब यामें नहिं सन्देहू ।
> पै सुख रामकृष्ण ध्यावे जस तस नहि और सनेहू ।
> ताहू पर जे भाव के पूरे ते दुख सुख सुनि गाया ।
> दुखो सुखी अति होत भाव उर करि उदोत सत साथा ॥
>
> —पृ० ३—

यही पर रसिक मधुर भाव के भक्तों की चर्चा भी कवि करता है—

> जाकी रुचि जेहि रूप नाम में सो जन तासु उपासी ।
> सो तोंने रस रसिक रंग्यो रंग विरले सब रस रासी ॥
>
> \+ \+ \+
>
> पै तिन महं जे रसिक उपासक अतिशय मृदुल स्वभाऊ ।
> करहिं भावना विविध भांति को राखि भेद नहिं काऊ ॥

प्रकृति-पुरुष के विवेचन की दृष्टि से सांख्य मत की तथा ब्रह्म माया के विवेचन की दृष्टि से अद्वैत मत को प्रतिष्ठा कवि के इस छन्द में देखी जा सकती है—

> राम के प्रेम को रूप मनो सिय,
> सिय के प्रेम को रूप सुराम है ।
> राम ही हैं सति कै सिय के जिय
> राम को जीव सिया अभिराम है ।
> श्री रघुराज सनेस नहे दोउ
> बोतत आनन्द में वसुयाम है ।
> द्वैतन में मनो एक ही मातम
> दंपत्ति दीसैं त्रिलोक ललाम है ।
>
> रा० स्वयं (पृ० ७३६):

तुलसीदास ने भी यही भाव व्यक्त किया है—

गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीताराम पद, जिन्हें परम पद खिन्न ॥

तुलसीदास की ही भाँति केवल भक्ति प्रचारार्थ राम का गुण-गान रघुनाथ दास राम सनेही ने विश्रामसागर में किया। पद्माकर के राम रसायन में भक्ति निरूपण नहीं है, भक्ति भावना से ओत-प्रोत रामकथा है। बन्दीदीन दीक्षित का 'विजयराघो खंड' कथा-वैचित्र्य की दृष्टि से उल्लेखनीय है, भक्ति की गहराई न तो उसमें है और न काव्य की गरिमा ही उसमें आ पाई है। गोकुल नाथ का 'सीताराम गुणार्णव' अवश्य भक्तिपूर्ण काव्य है। रामचन्द्र ज्योतिषी ने रामचन्द्रोदय में केवल वर्णन तथा वाणी की विचित्रता में अपनी प्रतिभा खपाई है। उसमें भी न तो भक्ति है और न काव्यत्व। नवलसिंह कायस्थ की तीन रचनाएँ आल्हा रामायण, रूपक रामायण तथा रामचन्द्र विलास में परम-पद की आकांक्षा ही रचना की मूल प्रेरणा के रूप में बतलाई गई है—

सार राम जस गान सदाही सज्जन सन्त आदरहिं ताहि।
+ + +
आला के लालच सौं जो जन पढ़िहैं स्रवन कराहिं।
गावैं वही राह सौं नीकै ते सब अन्त परम पद जाहिं ॥

आधुनिक काल में प्राचीन परिपाटी पर जिन्होंने रामकथा पर रचना की है उनमें तुलसीदास का अनुकरण ही प्रधान है। रामभक्ति की चर्चा तथा अपने काव्य की विदग्धता का परिचय उसका साध्य है। बिहारी लाल शर्मा अपनी रचना 'कोशलेन्द्र कौतुक' के लिए कहते हैं :—

कछुक प्रभूति करतूति है न मेरी यह
कोशलेन्द्र कौतुक प्रसाद तुलसी को है।

लक्ष्मीनारायण सिंह 'ईश' अपने 'लंकादहन' में तुलसीदास की भाँति ही वेद धर्म की रक्षा तथा प्रसार के लिए रामकथा का गायन करते हैं—

सोइ अवतार सरकार को सराहौं सदा
जासौं श्रु निसार का प्रसार होय जग में
जाके पक्षपात के पिछौर परलोक बीच
पावै गति ग्रोघ ना विमूढ़ गूढ़ मग में।

इसी प्रकार के विचार रामकथा के अंशभूत चरित—हनुमान तथा लक्ष्मण

से ऊपर काव्य रचना करने वाले अन्य कवियों ने भी काम किये हैं। सत्याश्रम के 'हनुमान हृदय' में कवि का स्वर देखिए—

> काहू में न है शिक्षा औ विवेक, बुद्धि, बोध, ख्याति,
> देह, गेह, सिद्धि, धन, मान-बड़ाई को।
> शत्रु, मित्र, पुत्र और कलत्र दुख जीवन के
> जानत उद्धार-हेतु तेरी प्रभुताई को।
> कृपा कटाक्ष तेरो पाइ शुद्ध जीवन में
> कोटिन हजार और पाई भलाई को?
> काहू सों छिपी ना एक अंजनी-कुमार! तोसों
> अन्तराम अन्त करि माधो-गुन गाई को।
>
> छं० १६, पृ० २० ।

रसिक सम्प्रदाय ने तो रामभक्ति के स्वरूप का ही परिवर्तन कर दिया। उन्होंने राम के प्रति जिस तल्लीनता का परिचय दिया है वह दशरथनंदन, रावण विजयी राम, वनवासी राम, मर्यादाशील राम के प्रति नहीं बल्कि कनक भवन, आनन्दपूर्ण, विलास चरित वातावरण में सीता तथा उनकी सखियों के साथ विराजमान मंजुल मोहन छविधाम राम के प्रति भक्ति की उनकी तल्लीनता है। वस्तुतः यहाँ भक्ति का यह स्वरूप सम्प्रदायगत है, भगवान की महिमा के प्रति उसका अभिनिवेश नहीं है। अष्टयाम की रचनाओं से लेकर कोशल खण्ड, युगल विहार पदावली तक यही एक भावना इन कवियों की दृष्टि में प्रधान रूप से है। अष्टयाम में नाभादास कहते हैं—

> पुनि तहं षोडश सहचरी
> गाइ उठीं प्रीतम रंगभरी।
> तिन ते अलि नवपञ्च सुहाई
> निज निज थल गावत छवि छाई।

कहीं-कहीं रसिक सम्प्रदाय के कवियों ने सम्प्रदायगत अपनी इस मधुर भाव की भक्ति को जबर्दस्ती केवल 'प्रीतम' के सम्बोधन के सहारे कहने का प्रयत्न किया है। वस्तुतः वह तुलसीदास कवि द्वारा गायी गई भक्ति भाव की राशि है जिसे रसिक कवि 'प्रीतम' शब्द का प्रयोग कर मधुर भाव का विषय बनाना चाहता है। उदाहरणतया नीचे उद्धृत छंद केवल 'प्रीतम' तथा 'भाग' शब्द यदि हटा दिये जाएँ तो वह भक्ति का सरल गान बन जायगा—

लगन निवाहे ही बनि आवै।
भाय कुभाव खराब जानके नेही नाम कहावै।
दृग अटके मन सौंपि दियो जब पीतम हाथ बिकावै।
अपनो मन न रह्यो भयो परवस को ही न्याव चुकावै।
तब रहु द्रवन पवन हँसि उघरे तदपि लगन ललकावै।
शशि उतारि चरण पकरावै तब निज भाग सिहावै।

कहीं-कहीं इन्होंने अपने मधुर भाव की अभिव्यक्ति में कृष्ण की रामलीला का अनुकरण किया है और राम भक्ति परम्परा से उसे पृथक् कर दिया है।

शरत ऋतु जानि के सारी
रच्यो सुख रास प्रभु प्यारी
धरे मणि मोति की माला
सोहें संग सुन्दरी बाला
नचत बर नागरी राजे
मधुर धुनि नूपुरे बाजे। —रामनारायन दास।

रसिक सम्प्रदाय के कवियों में वैजनाथ कुरमी की रचना में तुलसीदास की परम्परा की रामभक्ति तथा रसिक सम्प्रदाय की मधुरभाव की अभिव्यक्ति दोनों का मिश्रित रूप मिलता है। इन्होंने जो कई टीका ग्रन्थ लिखे हैं उनमें राम के प्रति जो भाव प्रदर्शित किए हैं वे तुलसीदास की भक्ति से प्रेरित हैं और स्फुट रचनाओं में रसिकों की मधुर भावना में इनका 'सीताराम योग पदावली' में सीताराम के विवाह का वर्णन है और कवि ने अपनी राम-दर्शन की लालसा तथा राम के विरह में अपनी तड़पने का जो वर्णन किया है उसे हम केवल रसिकों की मधुर भावना ही नहीं कह सकते। उदाहरणतया—

सखी री आजु राजत सिय संग राम
दिव्य कनक मणि जणित सिंहासन सुख को धाम।
+ + +
वैजनाथ यह देखि माधुरी वारौं मैं रति शत काकर।
+ + +
रघुवर रूप देखि मनभावत।
सुन्दर श्याम सरोज वदन पर मदन अनेक देखि छवि पावत।
चंदन खोरि मोर शिर अपर कुंडल श्रवण अलक भलकावत।

मणिमाला छवि दमक ज्योति पुर कंटक देखि सकुचावत।
पीत वसन कटि तरित विनिंदित चलति मस्त मतंग लजावत।
पान खाति मुस्क्यानि माधुरी दृग चितवति उर कहर जनावत।
बैजनाथ मोहिं सुध न रहत तन मन वसुयाम राम गुण गावत।

रसिकों के मधुर भाव की अभिव्यक्ति पाँच प्रकार से हुई है—दासी भाव, सखी भाव, दास्य भाव, सखा भाव और आचार्य भाव। इनमें आचार्य भाव की मधुर भक्ति केवल दो-एक कवियों की है। इनमें पं० उमापति त्रिपाठी 'कोविद' का नाम ही लिया जा सकता है। सखा भाव से उपासना करने वाले कवियों की संख्या अधिक है। इनमें शीलमणि जी, राम दोउ मणि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

रसिक सम्प्रदाय में दासी भाव अथवा दासी निष्ठा के रूप में राम-सीता की उपासना करने वाले भक्तों की संख्या कम ही समझना चाहिये। दासी भाव के समकक्ष ही दास्य भाव की उपासना भी है। दास्यभाव के भक्तों की संख्या अधिक है। दासी भाव के भक्तों में रूपकलाजी का एक विशिष्ट स्थान है। वे अपने को सीता की सेविका कह कर राम का अनुराग चाहते हैं—

रूपकला सिय किंकरि विनवै होउ प्रिय देग दयाल रामा।

दासी भाव की उपासना करने वाले इन कवियों ने राम और सीता को अपना स्वामी और स्वामिनी माना है और उन्हीं की कृपा के लिए संयोग और वियोग के गीत गाए हैं, जानकीवर शरण 'प्रीतिलता' का यह गीत देखिए—

चित ले गयो चोराय जुल्फोंमे लला।
हम जानी वे कृपासिंधु हैं तब उनसे भई प्रीति भला।
विरहो जन हिय दुख उपजावत करत नये नये अजब कला।
प्रीतिलता प्रीतम बेदरदी छांड हमें कित गयो चला।

इसी प्रकार सरयूदास 'सुधामुखी' संयोग के इस भाव में मस्त हैं—

प्यारे झूलन पधारो झुकि आये बदरा।
सजि भूषन बसन अखियन कजरा।
मान कीजिये काहे पै सुख लीजिए अली।
तू तो परम सयानी मिथिलेश की लली।
देखो अवध ललन पिया आप ही खरे।
रोष खोल्यो सुधामुखी जब पायन परे।

इसी प्रकार स्वामी और स्वामिनी के आनंद समारोह में दासियों की भाँति मगन होने का भाव भी इन कवियों के गीतों में है। जैसे प्रीतिलता का यह गीत द्रष्टव्य है—

> वर्ष महोत्सव श्री स्वामिनि की।
> श्री मिथिलेश द्वार पर सुरतिय चमकत घन दामिनि की ॥
> गावत गीत मनोहर भावत सुख पावत नवमी जामिनी की।
> जानकी वर की जीवनि सीता गावत मंगल अभिरामिनी की।

दास्यभाव के उपासकों की संख्या अधिक है जैसा कि मैंने पहले कहा है। दास्य भाव के प्रमुख कवियों के नाम हैं—बालानन्द, मामा, प्रयागदास, रामचरण दास, रामगुलाम द्विवेदी, बैजनाथ कुरमी, वनादास, काष्ठजिह्वा स्वामी, रामा जी! बालानंद जी ने दास्य भाव से रामचन्द्र जी के ऐश्वर्य और माधुर्य भाव का गान किया है। उदाहरण—

> भवन गवन प्रभु कीजै सेज बिछी, भवन गवन प्रभु कीजै।
> परिश्रम भये सभा सब बैठे, सबको आयसु दीजै।
> रामदूत हनुमान पवनसुत संग चौकि को लीजै।
> कमल मुखी कमला, मुख हेरे, प्रेम प्रीति रस भीजै।
> मन क्रम वचन तुम्हें प्रभु सेवै, चपला अचल करीजै।
> मंद मंद मुसकान छबीले, बोलत वचन रसीले।
> बालानन्द को देहे किंकरी, श्रीपति ऐसे सुसीले।

दास्य भाव में भी इन कवियों ने राम के उस चरित्र को गाना प्रारम्भ किया है जिसमें उन्हें माधुर्य भाव का रस मिलता है। इस भाव का रामचरण दास का यह उदाहरण लीजिए। रामचन्द्र जी की रामलीला का वर्णन करते हुए कामना करते हैं कि राम का यह समाज हमारे हृदय में विराजमान रहे :—

> उघटन संगीत राग ताल मुर्च्छनादि जाग,
> हाव भाव पानि मुरनि नयन खंजनी
> राम चरण सुत समाज मेरे हिय में विराज,
> यह विहार नित अखण्ड रसिक मंजनी ॥

सबसे बड़ी संख्या सखी भाव के कवियों की है। इनमें इन सखी भाव के कवियों की कई विधाएँ हैं। कोई अपने को सीता की सहोदरा बहन कहता है और राम की कृपा पाना चाहता है और कोई सीता की सखी अपने को मानता है। प्रायः इन कवियों ने अपना सम्बन्ध किसी प्रकार मिथिला से जोड़ा है।

इस प्रकार सीता की सखी के रूप में प्रीतम राम की उपासना, के गीत गाए हैं। इन कवियों में प्रमुख हैं-रामप्रिया शरण 'प्रेमकली', रामप्रपन्न 'मधुरप्रिया', प्रेमसखी, जीवाराम युगल प्रिया, सियासखी, युगलानन्दशरण 'हेमलता', रामवल्लभाचरण युगलविहारिणी आदि। सखी भाव की रचनाओं में आध्यात्मिक छाया के रूप में लौकिक शृङ्गार का ही पूर्ण चित्रण पाया जाता है। 'युगल विहारिणी' की यह रचना देखिए—

आई है चैती बहरिया हो प्यारी मान न कीजै।
नव तरवर सोउ मृदुल पान किये प्रफुलित विपिन बहरिया हो
तुम बिन मोचन कछु नहिं भावत बीतत समय विहरिया हो।
सुनि पिय बैन नैन प्रीतम सलि उमगी नेह नहरिया हो।
बिहँसि भई प्रीतम गर हरवा मिटि गौ खेद दहरिया हो।
युगल विहारिनि सह समाज चलि निरखहि सरजू लहरिया हो।

सखाभाव या सख्य भाव के उपासकों की संख्या भी कम है। सखा भाव की उपासना नर्म सख्य भाव के उपासकों के रूप में है जो अपने को राम का सखा मानकर उसका गुणगान करते हैं। इन कवियों में राम सखे, महात्मा रामशरण और अवधशरण का नाम लिया जाना चाहिये। सखा के रूप में ये सख्य भाव के कवि राम-सीता के माधुर्य का आनन्द लेते है। महात्मा राम शरण का यह पद इस दृष्टि से उल्लेखनीय है—

रसरङ्गन धूम मचाये रसिया ?
तेरे रे अवध में सरयू बहति हैं उमगि उमगि सब आई नदिया।
राम सरन धन धन पुरवासी पिया प्यारी जहं करें केलिया।

आचार्य भाव के एकमात्र कवि कदाचित् उमापति त्रिपाठी 'कोविद' है। त्रिपाठी जी रामचन्द्र को राजकुमार के रूप में अपना शिष्य मानते थे और अपने को उनका गुरु एवं सभासद कहते थे। इस प्रकार का उल्लेख उन्होंने अपनी पदावली की अंतिम पुष्पिका में किया है लेकिन हमारे विचार से आचार्य भाव की उनकी यह उपासना केवल उपचार मात्र के लिए थी। उनके गीतों से यह पता चलता है कि ये सख्य भाव की सीमा में ही हैं। उदाहरणतया निम्न पद द्रष्टव्य है—

भूलत दीने गलबाहीं।
रघुनन्दन अरु जनक नंदिनी प्रेम पगे मुसुकाहीं।
आलि भुलावत लगावति नाचति वारति तन मन चाहीं॥

धनि सावन धनि धनि यह तिहरनि धनि सुर परि मुरछाहीं।
कोविद कवि छवि कविमति मोहिनि धरयो सदा मन माहीं।

रसिक सम्प्रदाय के कुछ कवि ऐसे हैं जिनकी किसी एक भाव में निष्ठा नहीं है अपितु व्यापक रूप में सभी निष्ठाओं में रमें हैं, जैसे 'राम रसायन काव्य में लिखने वाले जानकीप्रसाद, 'रसिक विहारी' कुछ कवि ऐसे भी है जो पहले किसी भाव की निष्ठा रखते थे किन्तु बाद में उसमे कुछ परिवर्तन हो गया—जैसे बैजनाथ कुर्मी। ये पहले दास्यभाव के उपासक थे किन्तु बाद में सखी और दासी भाव की उपासना की ओर झुक गये।

खड़ी बोली काव्य साहित्य के उत्थान के समय राम साहित्य की जो रचना शुरू हुई उनमे गद्य रचनाओं जैसे 'भाषा योग-वाशिष्ठ' और 'पद्म-पुराण' आदि में तो पुराणों अथवा तुलसीदास द्वारा प्रतिपादित भक्ति का ही प्रतिपादन है। काव्य साहित्य की रचना मे भक्ति ने नया मोड लिया। उस पर पुनर्जागरण, राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक उत्थान तथा अंग्रेजों की दासता के प्रतिकार का जो प्रभाव पड़ा उसने रामभक्ति मे राष्ट्रभक्ति, एवं मानवभक्ति का समावेश भी आरम्भ किया। रामचरित चिंतामणि के अंगद-रावण संवाद में कवि ने राम के ईश्वरीय रूप का अधिक निदर्शन न कर विराट मानव रूप की ही मान्यता अंगद-रावण संवाद मे उपस्थित किया हैं, अंगद का कथन है—

कुशल से रहना यदि है तुम्हे
दनुज! तो फिर गर्व न कीजिए।
शरण में गिरिए रघुनाथ के
निबल के बल केवल राम हैं।

रावण कहता है—

यदि कपे! मम राक्षस राज का
स्तवन है तुझसे न किया गया
कुछ नहीं डर है पर क्यों यहां
निलज मानद-मान बढ़ा रहा।

यद्यपि काव्य में राम को ईश्वरी शक्ति की ओर भी संकेत किया जाता है लेकिन कवि की दृष्टि राक्षसी शासन के विरुद्ध मानवीय संस्कृति की विजय पर ही अधिक केन्द्रित हुई है, जो उस समय उसके पराधीन राष्ट्र भारत के लिए इष्ट है।

खड़ी बोली में लिखित राम-काव्यों में तुलसीदास की भी भक्ति का एक बार पुनः आन्दोलन कथावाचक राधेश्याम की रामायण ने किया। राधेश्याम रामायण द्वारा उनमें भी रामकथा और रामकाव्य के प्रति आस्था पैदा हो गयी जो पुरानी भाषा होने के कारण अर्थों को समझ नहीं सकते थे। उत्तर भारत की रामलीला तथा रामकथा-सम्बन्धी नाटकों में राम-चरित मानस तथा राधेश्याम रामायण दोनों काव्यों का समान उपयोग किया जाता है। रामचरित मानस जैसी लोकप्रियता राधेश्याम रामायण को भी प्राप्त हुई, इसमें संदेह नहीं। राधेश्याम रामायण में राम को ब्रह्म का अवतार तथा भक्त को उनकी कृपा से परमपद की प्राप्ति का ही पाठ दुहराया जाता है। इसमें एक जो नई बात हुई है वह यह है कि ब्रह्म के अवतार राम की उपासना तथा परमपद की प्राप्ति की आकांक्षा रखते हुए भी कवि अपने पूर्ववर्ती तुलसीदास की भाँति विमल वैराग्य की सिद्धि के लिए अभिनिविष्ट नहीं है। राधेश्याम की भक्ति का स्वरूप संक्षेप में उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार बतलाया जा सकता है—

> वह दास सदा बड़भागी है जो प्रभु पद का अनुगामी हो।
> वह जन निष्कंटक निर्भय है, जिसका रघुकुल सा स्वामी हो॥
> मद मोह काम या क्रोध लोभ, उस समय हृदय से हटते हैं—
> जब रघुराई ले धनुष बाण-भक्तों के चित्त में बसते हैं।
> माया में फंसा हुआ प्राणी तब तक पाता विश्राम नहीं।
> जब तक निष्काम शुद्ध मन से, मुख से कहता श्रीराम नहीं॥
>
> (विभीषण शरणागति-पृ० १४)

इस रामकथा में नयी विचारधारा के सन्दर्भ में भगवान राम के प्रति विराट की वही आस्था बनी रही जैसा कि पहले बताया जा चुका है। उस विराट के चरित गायन में भक्ति का जो रूप उमड़ा वह राष्ट्रीयता, विश्व-बंधुता, न्यायप्रियता, संघर्षशीलता की उत्कट प्रवृत्ति में परिवर्तित होता गया।— खड़ी बोली के इन काव्यों में काम, लोभ, मद, मोह, ईर्ष्या, असूया आदि के दमन की बात नहीं उठाई गयी है और वैराग्य, सन्यास, परम भक्ति की आकांक्षा की ही अभिव्यक्ति होती है। प्रभु को सर्वस्व अर्पण कर कल्याण तथा आनन्द की प्राप्ति आत्मबोध आदि की भावना अवश्य आती है। इस प्रकार एक ओर तुलसीदास की परम्परा की भक्ति का प्रवर्तन भी कुछ प्रतिनिधि कवियों ने आरम्भ किया, जिसमें श्री मैथिलीशरण गुप्त तथा श्री सुमित्रानन्दन

मैं आया उनके हेतु कि जो तापित है
जो विवश, विकल, बल-हीन, दीन, शापित हैं।
हो जायं अभय वे जिन्हें कि भय भासित है,
जो कोणप-कुल से मूक-सदृश शासित हैं।

परतंत्र देश को स्वतंत्र करने के लिए, अत्याचार से उन्मुक्त होने के लिए, राष्ट्र और जाति मे युग पुरुष के प्रति आस्था और विश्वास जगाया गया है।

इसी प्रकार कुछ अन्य कवियो ने भी राम के गुणगान मे युग पुरुष गाधी के चरित का सहारा लिया है।

डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र ने अपने तीन रामकाव्यों में भी इसी प्रकार की दुहरी अभिव्यक्ति की है : ब्रह्म के रूप में राम और मानव के रूप म ब्रह्म। प्रभु का जयघोष और रावण के साम्राज्यवाद का विरोधी उद्घोष दोनो उनमें हैं। 'साकेत संत' मे वे कहते है—

स्वामी एक राम है उन्हीं का धाम विश्व यह
जन में जनार्दन की ज्योति नित जागी है।

साकेत संत-पृ० १७।

फिर आज के युग की प्रतिनिधि आवाज मिश्रजी के काव्य मे प्रखर हो उठती है। रावण को साम्राज्यवाद का पोषक मानकर उसे नष्ट करने वाले राम को आज के गाधी या ऐसे ही दूसरे जन-नायक के समकक्ष रखते हैं—

उस युग के साम्राज्यवाद का मानव-विद्रावण
रावण-लंका अधिपति बनकर विचल किये था सब संसार।

रामराज्य पृ० ६६।

'मानव विद्रावण अवतार' कहने का अर्थ है कि संघर्ष होना है साम्राज्यवादी और मानववादी का। कवि को मानववादी राम की जय बोलनी है,। इस प्रकार इन कवियो मे राम की प्रभु सत्ता क्रमशः विराट मानव की अभिव्यक्ति बनती जा रही है।

नवीनजी की प्रसिद्ध रचना 'उर्मिला' है। उनके काव्य मे इस प्रकार मानव और ईश्वर की ही बात नही है बल्कि भक्ति, दर्शन, मधुर भाव, राष्ट्रीयता सबकी खिचड़ी कर दी गयी है। उसमें राम के रूपो के प्रति विचार अधिक है, भाव की हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति नही हो सकी है। उन्होंने क्योंकि 'उर्मिला' काव्य लिखा है, इसलिए लक्ष्मण की प्रधानता स्वतः सिद्ध है। राम सीता की जगह लक्ष्मण और उर्मिला को ही नवीनजी अपनी भक्ति अर्पित

करना है और फिर रंचमात्र घूंघट पट हटाकर मधुर भाव की छटा भी देखने लगता है।

ज्ञान और भक्ति का जो भेद तुलसीदास ने रामचरित मानस और अपनी अन्य कृतियों में प्रदर्शित किया है—'उर्मिला' में उसे जरा घुमाकर वाग्-वैचित्र्य से कहने की शैली 'नवीनजी' ने अपनायी है—

> तोऊ प्रेम संजोग में कछु विशेषता आहि।
> ज्ञान योग पावक सतत काटि कष्टकर आहि।
> अन्तर एतो जानिए प्रेम जोग के बीच;
> एक चलत मस्तिष्क से दूजो हृदय उलीच।
> अचला भक्ति अबाध मोंहि मिली प्रिय कृपा तें
> मिल्यों सनेह अगाध; इन बियोग के छिनन में।

सर्ग ४–३५१–३५३।

नवीनजी ने यहां जिस भक्ति का चित्रण किया है वह वियोग जन्य प्रिय-भक्ति है लेकिन उसमें ज्ञान तथा प्रेम का भेद दिखलाकर भक्ति की परम्परागत व्याख्या की गयी है। कवि यहां उर्मिला की लक्ष्मण-भक्ति का वर्णन कर रहा है। लेकिन सच पूछा जाय तो नवीनजी का यह वर्णन रसिक संप्रदाय के अधिक निकट पहुँच जाता है।

'हरिऔध' के वैदेही वनवास में तथा नाटककार सद्गुरुशरण अवस्थी, सेठ गोविन्ददास और लक्ष्मीनारायण मिश्र, डा० रामकुमार वर्मा की रामसम्बन्धी कृतियों में राम विराट मानव के रूप में ही अंकित हुए हैं। केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' भी यही बात दुहराते हैं।

> वन की ओर राम का जाना
> मानवता की जय है।
> आर्य सभ्यता की फिर चिर मानव—
> स्वतंत्रता की जय है। (पृ० १८४)

रामकथा सम्बन्धी कथासाहित्य में भी रामभक्ति की चर्चा नहीं है राम के विराट मानवीय कार्यों की प्रशंसा और उसकी प्रेरणा की ही अभिव्यक्ति है। केवल रघुनाथ सिंह की रामकथा में राम के भगवत स्वरूप तथा उसकी अनुरक्ति की चर्चा कहानियों में आती है।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के राम काव्य में इन कवियों से भिन्न राम के विलक्षण स्वरूप की अभिव्यक्ति हुई है। राम यद्यपि विराट पुरुष हैं पर

वे उस महाशक्ति के, जो इस सृष्टि में व्याप्त है, आराधक हैं, और उसी से साहाय्य पाकर असुरों को विजय करते हैं। इस प्रकार निराला के रामकाव्य में भक्ति का स्वरूप शाक्तमत में परिवर्तित हो गया है। 'पंचवटी' प्रसंग में राम में ब्रह्म के रूप का यह चित्रण कवि ने किया है।

क्रम-क्रम से देखना है
सबके ही भीतर वह
सूर चंद्र ग्रह तारे
और अनगिनत ब्रह्माण्ड भाड

अर्थात् राम स्वयं ब्रह्म नहीं हैं, ब्रह्म का साक्षात्कार उन्हें इष्ट है। पंचवटी में ही लक्ष्मण कहते हैं :—

सारे ब्रह्माण्ड के बीच जो विराजती है
आदि शक्ति रूपिणी
शक्ति से जिनकी शक्ति शालियों में सत्ता है
माता हैं मेरी वे।

इसी भावना को उत्कट रूप में 'राम की शक्ति पूजा में' निराला जी ने साकार किया। जहां शक्ति पूजा में राम अपने कमल नेत्र अर्पित कर रावण पर विजय पाने की शक्ति प्राप्त करते हैं, इस प्रकार निराला जी की रचना में शाक्तमत की उपस्थापना है। राम साधक हैं, शक्ति साध्य है —

'साधु साधु, साधक धीर धर्म, धन्यो-धन्यराम !
कह दिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।
+ + +
होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन।
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन॥

निराला के अनुसार राम भगवान नहीं हैं, साधक हैं, नवीन पुरुषोत्तम हैं, हम मानवों के प्रेरणा स्रोत हैं, और हमारी भक्ति का स्थान, उसका लक्ष्य शक्ति है जिससे हम लोक विद्रावण राम को विजय करावें।

श्री श्यामनारायण पांडेय ने 'तुमुल' और 'जय हनुमान' दो काव्य लिखे हैं। इनमें उनकी मान्यता राम की भक्ति की नहीं, केवल वीरोपासना की है—राम-कथा में अंगभूत लक्ष्मण तथा हनुमान दो वीर चरितों का गुणगान कवि का इष्ट है। उसी में प्रसंगवश वह ब्रह्म के अवतार राम की जय भी कर देता है,"

यद्यपि काव्य की मूल प्रेरणा में इस भावना का अभिनिवेश नहीं है। 'तुमुल' में उनका मंगलाचरण है —

> गूंजा धरातल से गगन तक
> आपकी जय हो प्रभो,
> जय आपकी जय हो प्रभो
> जाय आपकी जय हो प्रभो।
> \+ \+ \+
> जिसको जताना चाहते वह
> जान पाता आपको।
> जिस पर दया होती वही
> पहचान पाता आपको
> शाश्वत चराचर में
> अपरंपार से भी परे
> शैशव पहुँच पाता नहीं
> यौवन जरा से भी परे॥ (पृ० १३०)

गुलाब कृत 'अहल्या', मायादेवी शर्मा 'मधु' कृत 'शबरी' राम की लोकोत्तर शक्ति और सहज मानवता की अभिव्यक्ति करने वाले रामकाव्य हैं जिनमें अंतिम लक्ष्य मानव ही है। दोनों काव्य रामकथा की अंगभूत नारी पर ही लिखे गये हैं। दोनों में नारी के उन्नयन का प्रयत्न मानव-भक्ति द्वारा किया गया है।

रामकथा की एक नयी प्रेरणा, आज के कवियों ने शबरी से ली है। शबरी पर सम्प्रति तीन रचनाएं उपलब्ध हैं। मायादेवी शर्मा 'मधु' का शबरी काव्य एवं सीताराम चतुर्वेदी तथा सेठ गोविन्ददास के शबरी पर लिखे नाटक इन कृतियों के लिखने की प्रेरणा गांधीजी के अछूतोद्धार से मिली है। नारी जागरण तथा अछूतोद्धार दोनों भावों की पृष्ठभूमि शबरी बन जाती है तथा उसके द्वारा नारी-सम्मान की भी अभिव्यक्ति होती है। किन्तु सीताराम चतुर्वेदी की रचना केवल अछूतोद्धार से नहीं; आर्य अनार्य संस्कृति की मैत्री से अनुप्राणित है।

श्री जयशंकर त्रिपाठी का 'आंजनेय काव्य' राम को मानव और शक्ति का जागरण ही मानता है किन्तु राम में उस विराट ब्रह्म के अभिनिवेश की अभिव्यक्ति करता है जो समस्त सृष्टि में सात्विक सत्ता का मूल केन्द्र है— हनुमान सीता के हरण तथा राक्षसों के उत्पात देखकर कहते हैं —

जहां पर शोणित की बरसात
कर चुकी तर गिरि कण तरुयान
पाप की मेघ घटा के बीच
वहां होगा ज्योति संघात। (पृ० ८०)

+ + +

हुआ आश्वस्त हुआ आश्वस्त
न रोओ है अबला के प्राण।
शीघ्र ही युग की यह अंधेर
करेगी प्राप्त उचित निर्वाण। (पृ० ८१)

राम के इस रूप चित्रण मे मानव का ही जय घोष कवि को इष्ट है, जो राक्षसों की संक्रान्ति से मानव संस्कृति को मुक्त करेगा —

मापते पृथ्वी औ आकाश
धनुष तरकस के स्कन्ध विलास
जग रहे अटवी में युग-ज्योति
हंस रहे चन्द्रहास के हास। (पृ० ६१)

विश्व मानव की कल्पना तथा अल्पयो के दमन के लिए संघर्ष की प्रतिज्ञा, शक्ति की आराधना की ही अभिव्यक्ति 'आजनेय' मे करते हैं—

स्वामि सेवक की गुरुता व्यर्थ,
मित्र ही रख सकना कुछ अर्थ,
दे सकेगा कुछ पावन शक्ति
यहां पर आजनेय ! संघर्ष। (पृ० ११२)

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की 'सीता की मां' तथा नरेश मेहता की 'संशय की एक रात' मानववादी रचनाएं हैं और वे मानव राम की आराधना की विडंबना से लिखी गयी हैं।

खडी बोली के इन काव्यो मे राम की भक्ति ने अपना जो रूप परिवर्तित किया—वह तीन प्रमुख रूपो में है—आर्य राष्ट्रीयता, विश्व मानवता तथा साम्राज्यवाद के दमन के लिए अदम्य शक्ति की आराधना। भगवान राम का चरित त्याग तथा वीरता का चरित है। खडी बोली के कवियों ने उनके त्याग और वीर-धर्म का आदर्श प्रस्तुत कर उससे लोक को त्याग तथा वीरता की प्रेरणा दी है। जहा भक्तिकालीन कवियों तथा तुलसीदास के परवर्ती राम-साहित्यकारो ने अनुनय विनयपूर्वक राम की भक्ति करने को प्रेरित किया वहाँ पर आधुनिक साहित्यकारो ने उनके चरित से अनुप्रेरित होकर उनके उदात्त

कर्मों की ओर अग्रसर होने के लिए सन्नद्ध किया, केवल अन्ध श्रद्धा के वशीभूत होकर नाम की रट लगाने के लिए नहीं।

मन-वचन की भक्ति को कर्मयोग में लाकर एक नया अध्याय राम की भक्ति में हिन्दी खड़ी बोली के इन समर्थ मानववादी कवियों ने आरम्भ किया। निश्चय ही इसमें युग की प्रेरणा ने भी काम किया है। गांधीजी भारत की राजनीति में आगे आये; इसका भी प्रभाव इन कवियों पर पड़ा है।

खड़ी बोली के इन कवियों ने यदि राम काव्य सम्बन्धी अपनी रचनाएँ न की होतीं अथवा राम काव्य में वह नया मोड़ ले आने का संयोग न उपस्थित हुआ होता तो आज लोक-जीवन में राम-भक्ति की वह दृढ़ता न रहती, क्योंकि रसिक साधकों की मधुर उपासना ने उसे एकांगी कर पंगु बना दिया था और उसे लोक-जीवन से खींचकर साम्प्रदायिक साधना का जो रूप दे दिया था उससे राम के चरित्र की व्यापकता समाप्त हो गई थी। केवल इन एकांगी सम्प्रदाय साधकों तक ही उनकी व्याप्ति थी।

खड़ी बोली के कवियों ने मानवतावाद तथा वैज्ञानिक चेतना की कसौटी पर रामचरित को खरा उतारा है। किसी ने नाना प्रकार का विशाल चरित्र इन कवियों ने चित्रित किया, आर्य संस्कृति के लिए, राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए किसी कुटियों में राजभवन लाने के लिए, किसी ने अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष जारी रखने के लिए, किसी ने अछूतों को ऊँचा उठाने के लिए, किसी ने अहल्या सी नारियों की मुक्ति कामना के लिए—इस प्रकार तुलसीदास की इस विचार परम्परा में कि—

नाम अजामिल से खल कोटि
अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि मेरु शिला कन
होत अजासुर बारिधि बाढ़े।

आज भी आधुनिक कवियों के माध्यम से राम का विराट, शक्तिमान और लोकोत्तर चरित उसी महनीय रूप में सुरक्षित है और भक्ति की वही पावन धारा आज भी अजस्र रूप से बह रही है। कालस्यपूर्ण व्यवधान केवल रसिक संप्रदाय के कवियों द्वारा उपस्थित हुआ था। किन्तु आज हम देखते हैं कि अनेक प्रतिभाशाली लेखकों के योग से और भक्ति की उस शक्तिमयी धारा के वेग से वह व्यवधान विलीन हो गया है और आज राम की उस मानव भक्ति, शक्ति-आराधना में गृहस्थ, विरक्त, राजनीतिक सभी डूब रहे हैं। इसका प्रमाण इससे बढ़कर क्या होगा कि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामवृक्ष बेनीपुरी जैसे राजनीतिज्ञों ने भी रामचरित पर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

६

तुलसीदास के परवर्ती राम-साहित्य में कला का निदर्शन

तुलसीदास के बाद का हिन्दी में लिखा गया साढ़े तीन सौ वर्षों का राम-साहित्य हिन्दी काव्य-शैली के इतिहास की एक संक्षिप्त और सम्पूर्ण झांकी है। 'रामचरित मानस' के बाद हिन्दी-कविता मे भाव, भाषा तथा शैली की दृष्टि से, काव्य की विधा और प्रबन्ध-योजना को देखते हुए जो भी परिवर्तन हुए हैं उनका कोई न कोई प्रयोग राम-कथा को लेकर साहित्य लिखने मे भी किया गया है। काव्य, प्रबन्ध-काव्य, खण्ड-काव्य, गीति-काव्य और नाटक लिखने की बात तो सामान्य है, एकांकी नाटक, रेडियो-रूपक, कहानी, उपन्यास के अतिरिक्त वर्तमान हिन्दी साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में जो नयी शैलियों और विधाओं की अवतारणा की जा रही है, उनमें रामकथा का भी एकाध प्रयोग अवश्य हो जाता है। मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' के बाद रामकथा को युग के अनुरूप ढालने का बेहद साहस कवियों में आ गया और वे उस साहस को प्रस्तुत करने में हिचक नही रहे है। प्रयोगवादी कविता मे युद्ध और शान्ति का विवेचन शुरू हुआ। नरेश मेहता ने इस युद्ध-शांति की समस्या को राम-कथा में खोजने का प्रयास किया। और 'संशय की एक रात' लिख कर प्रयोगवादी शैली मे रामकथा को अवतरित करने का जोरदार प्रयत्न किया। प्रगतिवादी साहित्यकारों की रुचि-विभिन्नता से रामकथा को लेकर नारी-समस्या तथा हरिजन आन्दोलन को पुराख्यान की भूमिका पर प्रस्तुत करने का क्रम आया, फलतः अहिल्या, शबरी, वर्तमान हिन्दी साहित्य में कवियो, नाटककारो के लिए प्रमुख विषय रहे।

रामकथा को इस प्रकार अवतरित करने मे हमारे कवियों, लेखकों तथा विवेचकों की अटूट परम्परा, रामकथा के प्रति हमारे लोक-जीवन की तादात्म्यता की द्योतक है। जैसी लोकप्रियता रामकथा को हमारे जीवन मे प्राप्त हुई

जैसी लोकप्रियता किसी दूसरे पुराख्यान को नही मिली। इस कथा की विशेषता यह है कि दुख-सुख दोनों मे समान रूप से इसका ज्ञापन हमारे कवि और लोक दोनों करते रहे। राष्ट्र, राजनीति, धर्म, संस्कृति तथा साहित्य सभी मे रामकथा की देन है। वनवासी राम एक धरती के पुत्र की भांति, लङ्का-विजयी राम एक विश्व-विजेता की तरह अवध-सम्राट राम, एक लोकप्रिय शासक बनकर, रामचरितमानस में आये। तुलसी के राम विश्व-व्यापक ब्रह्म की भूमिका मे भारतीय लोक-जीवन को आच्छादित किए हैं। यही कारण है कि आज तक जबकि भारतीय राजनीति, लोकसंस्कृति की शिक्षा मे पश्चिमी संक्रान्ति के कारण पर्याप्त परिवर्तन हो गया है, हमारे साहित्यकार, आने वाली नयी-नयी विधाओं मे रामकथा को उतार कर ही संतोष लेते हैं। आज के किसी नये आन्दोलन, नयी-नयी समस्या का मूल यदि राम-साहित्य मे मिल गया तो वे उसे लेकर तुरन्त अपनी नयी विधा प्रस्तुत कर देते है। आज की नारी की एक समस्या अवैध सन्तान भी है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी इसे लेकर उड़े और 'सीता की मां' स्वोक्ति रूपक लिख डाला। युद्ध मे धरती को लहू-लुहान कर उसके सात्विक विभव को लाछित करने से अच्छा है धरती मे श्रम कर उससे जीवन के लिए अमृत तत्व प्राप्त किये जायें, संगठित होकर उन राक्षसी प्रवृत्तियों का अन्त किया जाय, जो हमे धरती के इस अमृत से वंचित करती है। आज की इस चिंतन-धारा को लेकर श्री जयशंकर त्रिपाठी ने 'आजनेय' लिखा।

एक नये धर्म ने राम की व्यापक महिमा को यथार्थ रूप मे अंकित करने का प्रयास किया। वाल्मीकि ने राम को जिस रूप मे देखा है, अथवा उस युग मे राम का जो भी इतिहास रहा हो, उसे उसी रूप मे ले आकर उपस्थित किया जाय, राम ने जिस संस्कृति की स्थापना की, वह स्थापना किस दूसरी संस्कृति की होड में हुई, इसकी विस्तृत भूमिका लेकर चतुरसेन शास्त्री ने अपना बडा उपन्यास 'वयं रक्षामः' लिखा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामकथा जिस प्रकार विविध विचारभूमियों में अपनी प्रियता के कारण पहुँचती रही है, उसी प्रकार उसे कला और काव्य की अनेक विधाओं मे सजाये जाने का भी सौभाग्य मिला है। सम्पूर्ण भारतीय साहित्य कला, काव्य, शैली, विचार, दर्शन तथा अनुभूति मे अनेकशः संभागी बननेवाली कोई भी पुराख्यान की कथा नही, जितनी रामकथा है। अपनी मधुर भाव की एकपक्षता के कारण कृष्ण कथा भी इसी विविधा में

काव्य मे नहीं उतरती। यहाँ मैं रामकथा की इस विविध संदर्शनीयता के तीन पक्षों पर संश्लिष्ट विचार प्रस्तुत करूंगा।

प्रबन्ध और वस्तु-योजना

तुलसीदास के परवर्ती राम साहित्य में कवियों ने रामकथा का जो प्रबन्ध ग्रहण किया, उसमें 'रामचरित मानस' ही अधिकांश उपजीव्य बन गया है। तुलसीदास की रामकथा को ही अनेक रामगायकों ने अविकल स्वीकार कर लिया है। आधुनिक युग में यद्यपि कवियों ने रामकथा को नयी भूमि और नयी उद्भावनाओं में खड़ा किया है लेकिन इस प्रकार की रामकथा पर प्रसिद्ध रचना 'साकेत' 'रामचरितमानस' की कथा पर ही जीवित है।

हनुमानजी का संजीवनी बूटी लेने के लिए धौलागिरि पर्वत पर जाकर वहाँ से अयोध्या होते हुए लौटना और भरत के बाण से घायल होना, भरत को लङ्कायुद्ध का वृतान्त बताना, रामचरित मानस की ही उद्भावना है। हो सकता है उसे तुलसीदास ने और कहीं से लिया हो, लेकिन हम उसे रामचरित मानस में ही देखते हैं। गुप्तजी ने 'साकेत' में उसे लेकर रामकथा का साधन बना लिया है। भरत से हनुमान जी लङ्का के विरोध और युद्ध का सम्पूर्ण वृतान्त सीताहरण से लेकर बताने लगते हैं। गुप्तजी ने इस प्रकार एक अंगभूत प्रबन्ध को लेकर अंगी प्रबन्ध की पूर्ति की है, जो समीचीन नहीं हैं।

आधुनिक काल के उन कवियों ने जो रामभक्ति की प्राचीन परिपाटी मे अपने विचारों और अनुभूतियो का जीवन देखते है प्रायः उन सभी-जैसे शिवरत्न शुक्ल 'सिरस', गयाप्रसाद द्विवेदी'-'प्रसाद' ने मानस को कथाओं तथा वस्तु-योजनाओं को ही अपना आधार बनाया है और यह भी निश्चित है कि इनके इस अनुकरण ने इनके काव्य के आकर्षण तथा उसकी संजीदगी को समाप्त कर दिया है।

कथा तथा वस्तु-योजना में दूसरा आधार कवियों ने वाल्मीकि रामायण को बनाया है। भक्तिकाल तथा रीतिकाल के जिन लोगों ने वाल्मीकि रामायण को कथा का आधार बनाकर अपनी रचनाएँ की हैं, उनमें सभी प्रकार के राम-गायक कवि आ गये हैं। तुलसीदास के समकालीन महाकवि 'केशवदास' की 'रामचंद्रिका' का आधार वाल्मीकि रामायण ही है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि केशवदास की बुद्धि में वह संजीवनी नहीं थी जिससे तुलसीदास की भाँति रामकथा में कोई नयी कलापूर्ण रेखा खींच सकते। हाँ, उन्होंने कई

नये प्रसंगों की उद्भावना की है। संवादों का नवीन आलंकारिक वर्णन उनकी अपनी वस्तु है। संवाद की वस्तु योजना में केशव को सर्वाधिक सफलता मिली है और कम से कम उनके दो संवाद परशुराम-लक्ष्मण संवाद तथा अङ्गद-रावण-संवाद कथा में बेजोड़ प्रसंग हैं।

'रामचन्द्रिका' की रचना के बाद एक नयी चीज हुई—वह यह कि परवर्ती राम-नाटक कवियों ने रामचन्द्र की कथा में ऐसे प्रसंगों को खूब बढ़ा-चढ़ा कर कहने की लगन दिखाई, जिनमें राजसी विभव को दिखाने का पर्याप्त अवकाश था। 'रामचन्द्रिका' में ही पहले पहल राजसी दरबार तथा राजसी सामग्री के वर्णनों की शुरुआत हुई और उसकी पराकाष्ठा रघुराज सिंह के 'राम-स्वयंवर' में की गयी। रघुराज सिंह के रामस्वयंवर में अयोध्या और जनकपुरी का नृत्यगान, बारात का राजसी साज, मिथिला में बारात की राजसी तड़क-भड़क से तैयारी के वर्णन राजसी ठाट-बाट के विस्तार हैं, उन्हीं वर्णनों को प्रधानता देने के लिए, रामस्वयंवर के प्रसंग पर उसी नाम से ग्रन्थ का नाम-करण हुआ। बहुत कुछ राजसी वर्णन की यही प्रवृत्ति रघुराज सिंह के पिता विश्वनाथ सिंह के 'आनन्द रघुनन्दन नाटक' में भी है। राजसी विभव के वर्णन की इस प्रवृत्ति का सदुपयोग रसिक-सम्प्रदाय ने सबसे अधिक किया। उन्हें इससे अपने साहित्य को राम-साहित्य बनाने में बड़ी सहायता मिली।

वाल्मीकि रामायण से 'रामचन्द्रिका' में केशवदास ने जो कुछ लिया वह उनके संस्कृत पांडित्य का ही कारण था, उनके पीछे रामकथा पर प्रबन्ध रचना करनेवाले वाल्मीकि रामायण से प्रभावित नहीं हैं। आधुनिक काल में वाल्मीकि का प्रभाव, रामकथा के कवियों, कथाकारों तथा नाटककारों पर पड़ा है। कुछ एक ने तो वाल्मीकि को ही अपने काव्य में उतार दिया है, और अपनी कोई मौलिक वस्तु-योजना नहीं रखी है, जैसे श्यामनारायण पांडे ने अपने 'जय हनुमान' खण्ड काव्य में किया है। वाल्मीकि के सुन्दरकाण्ड की अनुवृत्ति इनके इस काव्य में हुई है, हनुमान् जी ने जैसे सीता का पता लगाया फिर राक्षसों से युद्ध किया उसी प्रबन्ध को उसी वस्तु-योजना में श्याम-नारायण पांडे प्रस्तुत कर जाते हैं। हनुमान जी पर कई रचनाएँ तुलसीदास के परवर्ती राम-साहित्य में हुई हैं जिनमें अधिकांश भक्ति का पिष्टपेषण है। तुलसीदास के बाद रामकथा के अंतर्गत चरितों में हनुमानजी की लोकप्रियता बहुत अधिक बढ़ गयी और उसका कारण हनुमानजी में रामभक्ति की सान्निधि थी। लक्ष्मीनारायण सिंह 'ईश' 'लङ्कादहन' में हनुमान के वीर-चरित का वर्णन

करते है परन्तु उनका इष्ट ईश राम की कृपा की प्राप्ति है। इसी प्रकार अन्य हनुमान-चरित गायकों को भी स्थिति है। 'ईश' जी का 'लङ्कादहन' भी वाल्मीकि के आधार पर लिखा गया है, यद्यपि उसमें कवि की मौलिक वस्तु-योजना भी काम करती है। तुलसीदास का 'हनुमान बाहुक' इस पद्धति की अधिकांश रचनाओं का आदर्श ग्रन्थ रहा है, उसी प्रकार की कवित्त-शैली में हनुमान का गायन खड़ी बोली के पूर्ववर्ती कवियों ने किया है।

हनुमान जी के चरित को लेकर प्रबन्ध-वस्तु की नयी योजना 'आजनेय' खण्ड काव्य में श्री जयशंकर त्रिपाठी ने की। मात्र सीताहरण और राम-सुग्रीव की मैत्री की घटना वाल्मीकि रामायण से लेकर मनोवैज्ञानिक चिन्तन तथा पुराख्यान की यथार्थता दोनों को लेते हुए आज के संदर्भ मे धरती तथा श्रम की महत्ता का सन्निवेश भी उसमें कवि ने किया, लेकिन इतने पर भी 'आजनेय' काव्य बीसवी शताब्दी मे वाल्मीकि रामायण की कड़ी को ठीक उसी रूप मे जोड़ने का काम नही करता है। इसके पाँच सर्गो में प्रथम सर्ग मनुष्य में ईश्वरीय आत्मबोध का तीसरा दक्षिण सर्ग आज के प्रसंग में धरती तथा धरती-पुत्रों की सात्त्विकता के जागरण का अभिव्यंजनात्मक काव्य-पाठ है। शेष पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर सर्ग मनोविश्लेषणपूर्ण वाल्मीकीय आख्यान की काव्याभि-व्यक्ति है। वाल्मीकि को न छोड़ते हुए काव्य का इतना मौलिक प्रबन्ध केवल इसी रामकाव्य में बन पाया है।

आधुनिक युग के दो काव्य ऐसे हैं जिनमें मौलिक प्रबन्ध की ओर कवि का ध्यान अधिक रहा है। एक है 'हरिऔध' जी का 'वैदेही बनवास' और दूसरा है प्रतिस्पर्द्धी रचना हरदयालुसिंह का 'रावण महाकाव्य'।

'वैदेही बनवास' का आधार वाल्मीकि रामायण है। इसमें १८ सर्ग हैं। प्रबन्ध को विस्तार तो बहुत दिया गया, वाल्मीकि की ३-४ घटनाओ को बढ़ाकर १८ घटनाओ मे परिणत किया गया लेकिन जो प्रसंग उनमे आये हैं वे बिना प्राण के हो हैं। सीता का निर्वासन राम का एक अचानक निर्णय था और उसे लक्ष्मण द्वारा ऐसे सम्पन्न कराया गया था कि उसकी मार्मिकता पाठक के हृदय में असीम टीस पैदा करती रह जाती है परन्तु 'वैदेही बनवास' मे इस प्रसंग को ७ सर्गों मे जो लम्बा बढ़ावा दिया गया उससे इसकी समस्त मार्मिकता ही बिखर गयी। इस काव्य के लिए दूसरा मार्मिक प्रसंग था लव-कुश की वीरता, लेकिन उसे कवि प्रकट न कर सका, वीर-प्रसंगों को प्रकट करने की

काव्य-क्षमता हरिऔध जी के भीतर नही है, जितनी संवादात्मक वर्णन को पूरा काव्य एक उपन्यास बन गया है। इसकी वस्तुयोजना में परिवारिक संवेदना के ही अनेक स्थल है, राम और सीता के विराट् चरित के अनुरूप अभिव्यक्ति नही है।

'रावण महाकाव्य' का आधार पुराणों की कथा है जिसमें लंका-अधिपति के रूप मे रावण के अभ्युदय से लेकर राम द्वारा उसकी पराजय और फिर उसकी धनमालिनी स्त्री के पुत्र अरिमर्दन द्वारा लङ्का का उद्धार—इतना लम्बा प्रबन्ध कवि की अपनी मौलिक विवेचना है। इस बड़े प्रबन्ध के शिल्प की प्रशंसा करनी चाहिए। इस शिल्प की दो विशेषताएँ है—प्रबन्ध और काव्यत्व। ऐसी वस्तु योजनाएँ इस काव्य मे सर्वत्र हैं। सातवें सर्ग की उस कल्पना को जिसमे कवि ने चन्द्रमा को दूत बनाकर विरही मेघनाद का संदेश उसकी प्रणय-वल्लभा नाग-बाला सुलोचना के पास भिजवाया है, हम अत्यधिक प्रशंसा करेंगे यद्यपि यह कालिदास के मेघदूत का अनुकरण है परन्तु उस अनुकरण मे कवि की अनुरंजक मौलिकता है, जो उनको, जिन्होने मेघदूत का अध्ययन किया है विशेष अनुरंजक बन जाती हैं। चन्द्रमा को मार्ग बताते हुए अयोध्या और सरयू का जो महनीय वर्णन मेघनाद करता है, उसमें रामचरित का ही उत्कर्ष प्रतीत होता है। मेघदूत की संश्लिष्ट छाया इस सर्ग के सवैया छंदों मे है—

> आपने हाथनि वारिदनाद
> गुलाबनि के पुहुपनि को तोरी
> ठाढ़ो भयो निसि नायक के
> समुहे अपने कर संपुट जोरी
> अर्घ दियो औ चढ़ायो प्रसूननि
> औ बिनयो यहि भांति निहोरी,
> राजकुमार ह्वै हौं हो दुखी
> अब पूरी करी मनकामना मोरी।
>
> ७।२४

यह छंद कालिदास के 'मेघदूत' की इन पंक्तियों को याद दिलाता है—

> स प्रत्यग्रैः कुटजं कुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
> प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।

कवि शिव-भक्ति की जो अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है, वह भी जैसे उसने कालिदास से उत्तराधिकार में लिया है। कालिदास मेघ से उज्जयिनी के महाकाल के दर्शन के लिए टेढ़ा रास्ता जाने को बाध्य करते हैं—

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्मभूरुज्जयिन्याः।

रावण महाकाव्य का कवि भी टेढ़ा रास्ता चल कर शिव शैल के उन्नत शृंग देखने को कहता है—

टेढ़ो परै मग उत्तर को
जनि या उर में रहियो मन मारि कै।
त्यों बढ़ियो अपने पद दै
शिव सैल के उन्नत शृंग निहारि कै।
७।३६

"रावण महाकाव्य" के प्रतिनायक सूर्यवंशी राम हैं, उनके विभव की सांकेतिक चर्चा इसके ७वें सर्ग में हो जाती है। मेघनाद उसकी जो प्रशंसा करता है, वह प्रशंसा रामकाव्य में आते उन बद्ध-विचारों के मुँह पर थप्पड़ था, जो सदा राम की प्रशंसा और राक्षस तथा उनके लंका राज्य की निन्दा, घृणा एवं घोर तिरस्कार की ही भावना प्रकट करते रहे हैं। मेघनाद दिवाकर-वंशियों की नगरी की प्रशंसा करता है—

वीर दिवाकर बंसिन की
कुछ दूरि पै देखि वहै नगरी परै
त्यों सरजू के कछारनि में
दुहु घोरनि सुक्ति जहां बगरी परै।
लै अनुरूप को पुन्य प्रताप
प्रजा अमरावती को डगरी परै।
आपने धर्म सुकर्मन सौं
बल सौं जमराज है सौं झगरी परै। ७।३७

पिछले रामकाव्यों में राक्षस पक्ष के भी नृवंशी राजाओं, वीरों की तुच्छता का ही बखान हुआ है और मानव का पक्ष लेनेवाले कवियों ने तो अनेकशः निन्दा उन राक्षसों की है, जो वस्तुतः उस निन्दा के पात्र थे, या पराजित होने के कारण बन गये। परन्तु 'रावण महाकाव्य' में जो प्रशंसा अवध की है उसमें

उसे किसी के अस्तित्व के प्रति पूर्ण आदर है, यहां अन्तिम पंक्तियों में उनकी वीरता की प्रशंसा की पराकाष्ठा कर दी गयी है-अयोध्या के सूर्यवंशी वीर यम-राज से जूझनेवाले हैं।

भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल के अतिरिक्त जिनमें उपर्युक्त विशेषताएँ ही प्रबन्धों में घट-बढ़कर आती हैं, रसिक साहित्य के प्रबन्ध तथा वस्तु योजना नितान्त भिन्न रही। कृष्ण और राधा की रासलीला, जलक्रीड़ा, कुंज-विहार राम काव्य के लिए नयी वस्तु थे, वे सभी वाल्मीकि रामायण से लेकर तुलसीदास के युग तक के रामकाव्यों के बाद पहलीबार राम-भक्तों की साहित्य-साधना के आधार बने। इन कवियों में स्फुट गीत लिखने की प्रवृत्ति रही है जैसा कि कृष्ण भक्त कवियों ने किया है, लेकिन कुछ एक कवियों ने प्रबंध कौशल भी प्रकट किया है और उसमें राम की वीरता की चर्चा कम, सीता की शक्ति से राम के उपकृत होने की ही बात है, जैसे बनादास का 'उभय प्रबोधक रामायण' राम प्रिया शरण का 'सीतायन,' रामचरन कवि का 'जानकी समर विजय' काव्य।

शक्ति की इस आराधना के प्रसंग को लेकर सम्प्रदाय से दूर होकर विशुद्ध काव्य-कोटि की कल्पना जिसमें मानवीय योग, मनोबल तथा सदीप्ति, की शक्तिमान् अभिव्यक्ति हुई वह है सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'राम की शक्ति पूजा'। इस लघु काव्य में मूल प्रेरणा शाक्तों की, उस कथा की है, जिसमें दुर्गादेवी से वरदान प्राप्त करने पर ही राम रावण-की विजय में समर्थ हुए परन्तु कवि ने उसे वास्तविक रूप से मानव की शक्ति-आराधना का रूप दे दिया है।

इन सभी प्रबन्ध काव्यों में दर्शन का स्थान मनोविश्लेषण ने ले लिया है जैसा कि मैंने पिछले अध्याय में कहा। दर्शन को राम काव्य के साथ जैसी संश्लिष्ट अभिव्यक्ति तुलसीदास द्वारा मिली वह तो किसी से संभव न हुई पर 'विश्राम सागर' में भक्ति और दर्शन को कुछ सुगम, सरल एवं बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करने का अच्छा प्रयास हुआ है।

भाव एवं रस का निर्वाह

तुलसीदास के बाद रामकथा की कविता का लम्बा इतिहास जो प्रायः साढ़े तीन सौ वर्षों का है भाव एवं रस की दृष्टि से विविध एवं विचित्र है, किन्तु तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के बाद रामकाव्य में रस की वैसी

अभूतपूर्व अभिव्यक्ति नही मिलती और रामचरित मानस मे आरम्भ से लेकर अंत तक भक्ति-भाव का जो समुद्र उमड़ा है उसका दर्शन पिछले किसी काव्य मे नही हुआ। जीवन के नाना मनोभावों को लेकर करुण, वीर रसों की तथा स्वाभिमान-जन्य, ममता-जन्य, परतंत्र-प्रेरित, कर्म-सिद्धान्त से अभिभावित आत्मा का अमरत्व, जन्म मृत्यु आदि दार्शनिक सिद्धान्तों-भावों मे उद्वेलित जीवन की विविध अवस्थाओं को जो भावमयी, रसमयी प्राण-प्रतिष्ठा रामचरित मानस मे हुई वह भी तुलसीदासोत्तर रामकथा काव्यों मे नही पायी जाती। लेकिन इन अभावों के विपरीत भी साढ़े तीन सौ वर्षों के ये रामकाव्य, जैसा कि मैंने ऊपर कहा, कुछ विचित्रता और विविधता लिए हुए है। यद्यपि इसमें भाव, रस और ध्वनि की वह व्यंजकता नहीं पाई जाती जिसे उत्तम काव्य को कसौटी के रूप मे आनन्द-वर्धन और अभिनव गुप्त ने माना है। लेकिन भक्ति और दर्शन के क्षेत्र मे भगवान के सगुण रूप की उपासना का जो रूप लोक के सामने आया, लोक लीला करनेवाले राम ऋषियों के आश्रमो से आगे बढ़ कर राज सभाओं में राजमंदिरों मे जो ऊँचे प्रतिष्ठा पाने लगे, उससे रामचरित मानस से एक विभिन्न दिशा मे रामकथा के पात्र रस और भाव के आश्रम बनकर कवियों के द्वारा चित्रित किए जाने लगे। उनमे दो मार्ग तो बहुत ही स्पष्ट हैं—(१) रामकथा मे राजसी ठाट-बाट का वर्णन—जिसमें राम के बाल-चरित, किशोर चरित और विवाह का वर्णन राजसी संभारों के साथ किया गया है। खड़ीबोली के पूर्व इस पद्धति मे रस और भाव का चित्रण करने वाला सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ रघुराजसिंह का 'राम-स्वयंवर' नवलसिंह कायस्थ का 'कौशलखण्ड' 'मिथिलाखण्ड' हैं एवं इन्ही के अनुकरण पर और छोटी मोटी रचनाएं हैं। ऐसी रचनाओं में रस भाव का चित्रण कवि-परिपाटी का निर्वाह करता है। परिभाषा के अनुसार रस-भाव की उपलब्धि तो काव्य में हो जाती है लेकिन वह प्राणहीन होती है। काव्य स्वतः रसमय और भाव मय नही होने पाता। कोई स्थल ऐसा नही आता जहाँ पढने वाला भाव एवं रस मे डूब कर तद्वत हो जाय। कुछ कवियो को इसमे सफलता मिली है लेकिन वहा रस एवं भाव की पृष्ठभूमि स्वाभाविक नही रही। उसमे कुछ अलकृत शैली की व्यंजकता प्रविष्ट हो गयी, जिसके कारण वह रस और भाव चित्रण विचित्र तो हो उठा और हम उसे पढकर वाह वाह भी करने लगते हैं लेकिन उसकी अनुभूति के आनन्द में मग्न होकर चित्रवत् नही बनते। केशव की रामचन्द्रिका में ऐसे दो स्थल है जिनमें उत्साह

और क्रोध इन दो स्थायी भावों के आश्रय से रसाभिव्यक्ति कवि ने की है परन्तु उनमें कथा का प्रवाह कुछ नहीं है केवल कल्पना ही कल्पना है। अतः ऐसे स्थलों पर रस की व्यंजकता वैसे ही समझनी चाहिए जैसे बनावटी नदी बनाकर दोनों किनारों पर कुंज लहरा दिए गये हों और नदी में पानी के नाम पर केवल गीली जमीन हो। केशवदास ने रामचन्द्रिका के सातवें प्रकाश में परशुराम के रौद्र रूप का वर्णन किया है जो भाषा एवं शैली की दृष्टि से बहुत ही प्रभावोत्पादक है और रस की निर्भर सृष्टि करता है उदाहरणतया सातवें प्रकाश के छंद २ और ८—

मत्तदंति अमत्त ह्वै गये देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर ठौर सुदेस केशव दुंदुभी नहिं बज्जहीं।
डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटि के तनत्रान एकहि नारि भेषन सज्जहीं॥

सातवां प्रकाश छंद २।

× × × ×

बर बारण छिलीन अशेष समुद्रहिं सोखि सखा सुखही तरि हौं।
अरु लंकहि औटि कलंकित को पुनि पंक कलंकहि को भरिहौं।
भल भूंजि के राख सुखै करिकै दुख दीरघ देवन के हरिहौं।
सितकंठ के कंठनि को कठुला दसकंठ के कंठन को करिहौं॥

सातवां प्रकाश-छंद ८।

रस की यह अभिव्यक्ति निश्चित ही अतिशयोक्ति की अलंकारमूलक अभिव्यंजकता पर आधारित है। पहले छंद में परशुराम के आतंक का वर्णन है। उनके आतंक के सम्बन्ध में यह उक्ति दिखाई गई कि क्षत्रिय राजा कवच काट कर नारी का वेष बना रहे हैं। यहां रस से अधिक अतिशयोक्ति प्रखर हो उठती है। इसका कारण यह है कि कवि में कथा और रस निर्वाह की क्षमता कम है कल्पना-विलास की गति अधिक है। जहां उसने कहा है 'काटि के तन त्रान एकहि नारि भेषनि सज्जही' वहां उसे भय से आतंकित राजाओं के शारीरिक एवं मानसिक अनुभावों का वर्णन करना चाहिए था। दूसरे छंद के लिए उसे कथा में नयी कल्पना करनी पड़ी है। परशुराम ने पूछा कि यह धनुष किसने तोड़ा। वामदेव उत्तर देने जा रहे थे कि यह धनुष राम ने तोड़ा लेकिन उनके 'रा' मात्र के उच्चारण से परशुराम ने 'रावण राज' समझ लिया और इस प्रकार बरस पड़े—

'सितकंठ के कंठन को कठुला दसकंठ के कंठन को करिहौं।

यहां परशुराम के दीप्त क्रोध का रूप तो साकार न हो सका। वृत्य-अनुप्रास परक ठकार की आवृत्ति मे कवि ने परशुराम को शिवभक्ति का संकेत अवश्य कर दिया कि वे दशकंठ के कंठों की कठुला उसके उपास्य देव शंकर को पहनाना चाहते हैं। ऐसे प्रसंगो में उक्ति वैचित्र्य, अतिशयोक्ति एवं कल्पना की उड़ान ने रस और भाव के बादल को तितर-बितर कर दिया गया है। इसी प्रकार सोलहवें प्रकाश में अंगद-रावण संवाद में राजनीतिक काट-छांट में कल्पना की उड़ानें भरी गई हैं। लंका मे राम के विरह मे पडी सीता को विरह-दशा का चित्रण आलंकारिक एवं दार्शनिक कल्पना का संगम बन गया है। ऐसा प्रसंग विप्रलंभ शृंगार का रस-वर्षी स्थल हो सकता था। पर अलंकार से आगे केशवदास कोई प्रगति न कर सके। यह उदाहरण देखिए—

ग्रसी बुद्धि सी चित चिंतानि मानों।
किधौं जीभ दंतावली में बखानों॥
किधौं घेरि के राहु नारीन लीनी।
कला चन्द्र की चारु पीयूष भीनी ॥५४॥

(१३वां प्रकाश)।

केशवदास मे रस-चित्रण की क्षमता है लेकिन रस को प्रस्तुत करना कहाँ चाहिए, उसकी सही पहचान वे नही कर पाये हैं लेकिन कही-कही अपनी बड़ी तीखी कुशलता का परिचय दिया है। अंगद-रावण के संवाद में वीरताजन्य स्वाभिमान का प्रदर्शन है उसमे शान्त रस की संभावना नही की जा सकती लेकिन जिस कुशलता से केशवदास ने यह शांत रस प्रस्तुत किया वह न केवल रस की अच्छी अभिव्यक्ति है वरंच चलता हुआ क्या-प्रसंग इस रस योजना से अत्यन्त चमत्कृत हो उठता है। अंगद द्वारा रावण के प्रति कही हुई इस उक्ति में जहाँ शांत रस की अभिव्यक्ति होती है वहाँ रावण को राम की शरण लेने का उपदेश है एवं अंगद और उनके स्वामी राम को प्रभुता की स्थापना भी है—

पेट चढ्यो पलना पलिका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ्यो रे।
चौक चढ्यो चित्रसारि चढ्यो गजि बाजी चढ्यो गढ़ गर्व चढ्यो रे।
व्योम विमान चढ्योई रह्यो कहि केशव सो कबहूँ न पढ़्यो रे।
चेतत नाहिं रह्यो चढ़ि चित्त सो चाहत मूढ़ चिताहू चढ्यो रे।

(सोलहवां प्रकाश २४)

हुआ, राम भक्त कहलाने को लिप्सा जगी और उन्होंने राजाओं के हाथी, घोड़ों और बारात के सजाव-शृंगार का वर्णन करते हुए राम-स्वयंवर लिख दिया। पर सही बात यह है कि राम-कथा का मार्मिक स्थल रामस्वयंवर नहीं राम-वनवास है।

'रामाश्वमेध' मे मधुसूदन दास ने अवसर मिलने पर और कवियो की अपेक्षा भाव और रस का उत्कृष्ट निर्वाह अपनी रचना में किया है। वीर रस का यह प्रसंग बहुत स्वाभाविक बन पडा है। लव कहते हैं—

> इहि विधि बांचि पत्र लव वीरा। बोले कोपि वचन गंभीरा ॥
> सुनहु सकल मुनि पुत्र सुजाना। देखहु क्षत्रिन कर अभिमाना ॥
> निज बल विक्रम वैभव भारी। लिखा भूरि हय पत्र मझारी ॥
> कहा राम नृप कोट समाना। कहा सत्रुघन दीन निदाना ॥
> पुनि कहु कहा अल्प कटकाई। सलभ समान अबल अधिकाई ॥
> रामहि उत्तम क्षत्रिन माहीं। देखहु हम कुलीन कुल नाहीं ॥
> सुभट प्रसूतिन को तिलक, केवल सब जग माहिं।
> कुल-माता श्री जानकी, वीर प्रसूतिनि नाहिं ॥
>
> अध्याय ५४, पृ० ३०८।

रस निर्वाह मे केवल शृंगार, हास्य, अद्भुत, वीर, वीभत्स, रौद्र, करुण और शांत रसों एवं उनके भावो का कवि द्वारा प्रस्तुतीकरण मात्र उसके रस-सिद्ध होने की कसौटी नही है। रसों का प्रस्तुतीकरण करने के पूर्व काव्य में उनके भावों को कथाभूमि और वस्तुयोजना का उपस्थित करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। पिछले कवियो मे इस क्षमता का पूर्णतया अभाव रहा है। उन्होंने पहले तो रामकथा को समग्र रूप से लिया नही है और अगर लिया भी है तो भक्ति और धर्म की पौराणिक कथाएं कहने में उनकी रुचि अधिक रही है। उनका कवित्व पौराणिकता से दब गया है और राक्षसी ऐश्वर्य अथवा साज शृंगार के प्रसंग में सूची परिगणन-मात्र तक सीमित रह गया है। उनका कवित्व केवल शब्द-अर्थ का अविवेक रूप का संघटन मात्र हो गया है। भाव-व्यंजना में उनकी उपयुक्त गति नही प्रतीत होती।

मुख्य रूप शृंगार, वीर और शान्त रस ही इन राम काव्यों मे चित्रित किए गए हैं। भगवान राम के प्रति भक्ति की जो रति है वह जहाँ-तहाँ शांत रस के रूप में न होकर भाव तक ही सीमित रह गयी है और उसे हम भगवान के

प्रति एकनिष्ठ भाव के चित्रण के रूप में पाते हैं। भक्ति भाव और शान्ति रस के उदाहरण प्रायः सभी कृतियों मे पाये जायेंगे।

इधर पिछले कवियों मे वीर भाव के आश्रय हनुमानजी भी प्रायः बनकर आते रहे हैं। वाल्मीकि रामायण के आधार पर लक्ष्मीनारायण सिंह 'ईश' ने जो 'लंका दहन' काव्य की रचना की है वह हनुमान की वीरता से ओत-प्रोत है। युद्ध वीर रस के चित्रण और उसके भावों की संयोजना इसमें अच्छी बन पड़ी है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

> दानवन दारिके प्रचारि दसकंधरहिं,
> बोल्यो किलकारि वज्रनादैं करि घर्षमान।
> मैं हौं महाबहु कौसलेन्द्र रामचन्द्र जू को
> दूत पौनपूत नाम मेरो कपि हनुमान।
> मेरे सामिवे को इन तुच्छन पठावै कहा,
> आवै उठि आप क्यों न ह्वै के बलवीर्यवान।
> देखे आइ चंडता उदंड दो दंडन की,
> खंडौ भुजदंडन बीस तोक तृन-तुच्छ मान॥ प्रथम सर्ग ।४७॥

(२) राम काव्य में रस और भावों के निर्वाह की एक अन्य नयी परिपाटी रसिक संप्रदाय के कवियों ने चलाई। प्रत्यक्ष में लौकिक शृंगार का वर्णन-साधारण लौकिक शृंगार नहीं उद्दाम शृंगार का वर्णन इन कवियों द्वारा हुआ है। लेकिन परोक्ष में वह अध्यात्म भावना से समन्वित है। काव्य शास्त्र की दृष्टि से इने रस की कोटि में सम्मिलित करना कठिन है और, जैसा कि मैंने अपने पूर्व विवेचन में संकेत किया है, इन रचनाओं को रामकाव्य की कोटि में लेना हो उचित नहीं है। ऐसे चित्रणों को हमारी दृष्टि से या तो रसाभास कहा जायगा या अनंत प्रियतम राम के प्रति रतिभाव का चित्रण। इसका कारण यह है कि इन शृंगार रस से बोझिल रसिक संप्रदाय की कविताओं मे पाठक को शृंगार रस का आस्वादन लेने का कोई अधिकार नहीं है। शृंगार रस का आस्वादन लेने के लिए प्रिय राम को 'बालम' कहने का अधिकार तो उन्हीं को होगा जो रसिक संप्रदाय में दीक्षित हों।

रसिक संप्रदाय की रचनाओं की शांति-रस की अभिव्यक्ति भी नहीं कही जा सकती, क्योंकि जगत् की निःस्पृहता और वैराग्य के कारण शांत रस प्रस्तुत होता है वह इनमें नहीं है। सीता की सखी बनकर या उनकी दासी

बनकर राम के अनन्त अवध जान् मे निवास पाने की इच्छा और अपने अनंत इन्द्रियो द्वारा राम के रूप रस की भोगेच्छा द्वारा रस का स्वाद ले सकेगी। वह केवल राम के प्रति रति भाव ही कहा जायगा। ऐसे भाव-चित्रणो के अनेक उदाहरण रसिक संप्रदाय की कविताओं मे भरे पड़े हैं। प्रीतिलता के वियोग-जन्य भाव का यह चित्रण देखिए—

> चित ले गयो चोरार जुलफों में लला।
> हम जानी वे कृपासिन्धु हैं तब उनसे भई प्रीति भला।
> बिरहो जन प्रिय दुख उपजावत करत नये-नये अजब कला।
> 'प्रीतिलता' प्रीतम बेदरदी छाड़ हमें कित गयो चला। (पृ०४६५)

राम के प्रति रति भाव की अनन्यता युगलानन्यशरण 'हेमलता' के इस पद मे है—

> कोई नाम रूप भजि छाक हुए कोई अस्तुति दामन प्रेमे हुए।
> कोई निर्गुण ब्रह्म समझते हैं सुखमाना आसन कसे हुए॥
> कोइ महाविष्णु को जाप किए उरमाल छाप भुज लसे हुए।
> जालिम ! हम हाय कहां जाँय तेरे जुल्फ जाल में फंसे हुए॥

खड़ी बोली के आरम्भ के साथ रामकथा ने जो नया मोड़ लिया उसके साथ ही रामकथा से सम्बन्धित रस भाव की दिशा भी बदल गयी। भक्ति भाव के बन्धन शिथिल हुए कुछ यथार्थ, कुछ आदर्श, कुछ जीवन के सही तथ्यों के आकलन, जीवन-बोध, राष्ट्रीय स्वाभिमान, नीरस दार्शनिकता के स्थान पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषणपूर्ण चिंतन आदि भावो से भरी-पूरी राम-कहानी रस और भाव की नयी सृष्टि लेकर हिन्दी साहित्य मे आई। यद्यपि हमे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि खड़ी बोली के इन रामकथा-काव्य-कर्ताओं मे कोई भी कवि रस सिद्ध नही है और किसी कवि की तुलना इस क्षेत्र मे तुलसीदास से करना भारी भूल होगी।

खड़ी बोली के आरम्भ मे'रामचरित चिंतामणि' एवं 'राधेश्याम रामायण' दो ऐसे प्रबन्ध काव्य हैं जो अभी राम भक्ति के पुराने आदर्श को ही वहन करते रहे हैं। 'रामचरित चिन्तामणि' तो बहुत कुछ वर्णन-प्रधान काव्य हो गया है। रस तथा भाव का अच्छा निर्वाह हमे इसमे नही मिलेगा। फिर भी उपाध्याय जी भारतीय परम्परा के कवि थे और इनके इस प्रबन्ध-काव्य मे भावों और रसो की जो थोडी बहुत सृष्टि हुई है वह उत्कृष्ट बन पडी है। 'रामचरित-

'चितामणि' के चौथे सर्ग में परशुराम के क्रोध की स्वाभाविक अभिव्यक्ति रौद्र-रस के रूप में व्यंजित हो रही है—

कड़क कूदकर तुरत खड़े होकर, वे बोले,
कमंल दलों पर मनो अचानक बरसे ओले।
भूप-वृन्द यह जनक ! यहाँ पर कैसे आया ?
किसने हर को दंड तोड़ कर यहाँ गिराया ?
क्यों दुष्ट उत्तर देता नहीं ? व्यर्थ बना तू संत है,
क्या परशुराम के हाथ से आज विश्व का अन्त है ?

चौथा सर्ग १४३।

'राधेश्याम रामायण' कथा प्रसंगों में एवं वस्तु-योजनाओं में भले ही असफल रहा हो, किन्तु ढूंढ़ने पर 'राधेश्याम रामायण' में प्रायः सभी रसों एवं भावों के उत्कृष्ट उदाहरण मिल सकते हैं। अद्भुत रस का एक उदाहरण लीजिए—(रावण वध—१८।६)

एक दिवस अति कुपित हो उठे कोशलाधीश।
काट दिए दशशीश के क्षण भर में दसशीश॥
पर उसी समय सबने देखा नूतन सिर प्रकट हुए उसके।
सिर थे या जादू के पुतले, कटकर फिर प्रकट हुए उसके।
घंटों तक होता रहा यही, सुरवानर सब घबराते हैं।
रघुनाथ काटते जाते हैं—सिर नये निकलते आते हैं॥

खड़ी बोली के काव्यों मे श्री मैथिलीशरण गुप्त के साकेत की बड़ी प्रसिद्धि है। पर सही बात यह है कि शब्द-अर्थ के प्रायोगिक चमत्कार इस काव्य मे तो है, विचार और चिंतन भी है, पर रस और भाव की उपयुक्त सृष्टि नही हो पाई है। संयोग शृंगार का एक उदाहरण 'साकेत' मे इस प्रकार से आया है :—

तरु तले विराजे हुए—शिला के ऊपर,
कुछ टिके—धनुष की कोटि टेक कर भू पर।
निज लक्ष्य सिद्धि सी, तनिक घूम कर तिरछे,
जो सींच रही थी पर्णकुटी के बिरछे—
उन सीता को, निज मूर्तिमती माया को,
प्रणयप्राण को और कान्त काया को,

यों देख रहे थे राम अटल अनुरागी,
योगी के आगे अलख-ज्योति ज्यों जागी !

(अष्टम सर्ग—२)

यहाँ पांचवी एवं छठी पंक्ति रस को इस व्यंजना को अभिधा का रूप दे देती है। मूर्तिमती माया, प्रणय प्राण, कांतिकाया शब्दों मे एक ही अभिप्रेत अर्थ की तीन बार आवृत्ति करके प्रणय का सीधे कथन कर ध्वनि काव्य को अभिधा मे हल्का कर दिया है और संयोग शृंगार का उत्कृष्ट प्रस्तुतीकरण होते-होते रह गया है।

वात्सल्य भावों के चित्रण मे कुछ विशेष सफलता 'साकेत' के कवि को मिली है। शृंगार रस के आलंबन भाव के रूप मे यही पर आगे चल कर सीता का यह छवि-चित्र बहुत अच्छा बन पड़ा है।

पाकर विशाल कच भार एड़ियां धंसती,
तब नख ज्योति-मिष, मृदुल अंगुलियां हंसतीं।
पर पग उठने में भार उन्हीं पर पड़ता,
तब अरुण एड़ियों से सुहास सा भड़ता।
सोणी पर जो निज छाप छोड़ते चलते,
पद पद्मों में मंजीर-मराल मचलते,
रुकने भुकने में ललित लंक लच जाती,
पर अपनी छवि में छिपी आप बच जाती। अष्टम सर्ग-३।

राम के प्रति निषाद के भक्ति भाव का यह चित्रण भी बड़ी स्वाभाविकता से प्रस्तुत किया गया है। (१२६-८)

मिलन-स्मृति-सी रहे यहां क्षुद्रिका,
सीता देने लगी स्वर्णमणि मुद्रिका।
गुह बोला कर जोड़ कि—"यह कैसी कृपा ?
न हो दास पर देवि, कभी ऐसी कृपा।
क्षमा करो इस भांति न तज दो मुझे
स्वर्ण नहीं हे राम ! चरण रज दो मुझे,
जड़ भी चेतन मूर्ति हुई पाकर जिसे,
उसे छोड़ पाषाण भला भावे किसे।"

(पृ० १२६ पंचम सर्ग)

'साकेत' काव्य की नई विशेषता जो रामकाव्य परंपरा में आई वह यह है कि रामकथा के माध्यम से कवि ने राष्ट्र-भक्ति का समावेश व्यापक रूप से किया है। इस सम्बन्ध में दो उदाहरण विचारणीय हैं—

जय गंगे आनंद तरंगे कलरवे,
अमल अंचले, पुण्यजले, दिव संभवे !
सरस रहे यह भरत-भूमि तुमसे सदा,
हम सबकी तुम एक चलाचल संपदा।

(पंचम सर्ग, पृ० १२८)

देश की प्रकृति शोभा, मातृभूमि के बन बाग और खेतों का आकर्षक चित्रण भी 'साकेत' में आया है जो मातृभूमि के प्रति अनुरक्ति पैदा करता है। जैसे नवम सर्ग में कामदगिरि का वर्णन है।

"वह गौरव गिरि उच्च उदार" ऐसा ही चित्रण "मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया" गांवों में मातृभूमि के प्रति भक्ति-भाव की व्यंजना है। ऐसे चित्रण 'साकेत' में अन्यत्र भी हैं। अष्टम सर्ग का एक उदाहरण लीजिए—

फल फूलों से हैं लदी डालियां मेरी,
वे हरी पत्तलें, भरी थालियां मेरी,
मुनि बालायें हैं यहां आलियां मेरी,
तटिनी की लहरें और तालियां मेरी।
क्रीड़ा-सामग्री बनी स्वयं निज छाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया। (पृ० २०७-६)

प्रकृति चित्रण की यह परंपरा, जिसके द्वारा देश और अपनी भूमि के प्रति हमारे हृदय में अनुरक्ति पैदा हो, मैथिलीशरण गुप्त के बाद अन्य कवियों ने न प्रस्तुत किया। खड़ी बोली के पूर्व भक्ति और रीतिकाल के राम काव्यों में प्रकृति के ऐसे चित्रण की वैसी कोई सम्भावना थी और न तो उन्होंने किया। रामभक्ति के आलंबन के रूप में जो कुछ वर्णन हो गया हो वही बहुत था। प्रकृति-चित्रण की रामकाव्य परंपरा में मातृभूमि के भक्ति-भाव का रूप देने का श्रेय श्री मैथिलीशरण गुप्त को ही है। यही विशेषता हम कालिदास के 'रघुवंश' में भी पाते हैं जिसके कारण वह हमारे हृदय को स्पर्श करने में अधिक सफल हो सका है।

उनके बाद श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'वैदेही वनवास' के

प्रायः प्रत्येक सर्ग के आरम्भ में प्रकृति का वर्णन अवश्य किया है किन्तु वह परंपरा का कोरा निर्वाह है उसमे मातृभूमि का कोई चित्र नही उभरता। हरिऔध जो प्रभात, संध्या और निशा के वर्णन मे इतिश्री कर गये हैं। इधर पुनः बहुत बाद मे लिखा गया 'आजनेय' खण्ड काव्य मातृभूमि की वह सरस भाकी चित्रित करता है जिससे हम अपने देश के खेतो और गाँवो की ओर अनुरक्ति-भाव से भर जाते हैं। इस काव्य का दक्षिण सर्ग प्रकृति के ऐसे अनेक छोटे किन्तु सुभावने चित्रो से भरा है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

मटर और चने के फूल
फूलती सरसों कहीं समूल
जहां अलसी के भोले फूल
रंगा करते खेतों के कूल।
नदी के धागे में अव्यक्त
गयी है गूंथी जिनको माल
पहन कर के गिरि-किंकिण धार
उषा में सस्मित धरा निहाल।

प्रकृति के ऐसे आकर्षक चित्रण खड़ीबोली के राम काव्यो की अपनी विशेषता है। इसके बाद खड़ी बोली रामकाव्यो के भाव चित्रण की एक नई दिशा है—*जीवन संघर्ष की स्थितियों का बोधात्मक आकलन।* निरालाजी के छोटे काव्य "राम की शक्ति पूजा" मे इसकी अच्छी अभिव्यंजना हुई है—

यह अंतिम जय, ध्यान से देखते चरण युगल
राम ने बढ़ाया कर लेने को नील कमल
कुछ लगा न हाथ हुआ स्थिर मन चंचल,
ध्यान की भूमि से उतरे, खोल पलक विमल
देखा वह रिक्त स्थान यह जय का पूर्ण समय
आसन छोड़ना असिद्धि भर गये नयन द्वय—
धिक जीवन जो पाता ही आया विरोध—
धिक साधन जिसके लिए निरन्तर किया शोध।
जानकी ! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका।

राम पूजा के कमल-प्रसून गायब हो जाने से पूजना साधना की सिद्धि से निराश होकर अपने संघर्ष-पूर्ण जीवन से हत होकर करुणा मे डूब रहे हैं।

डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र का 'साकेत संत' एक उत्कृष्ट काव्य है। इसमें भी राष्ट्र के प्रति भक्तिभाव का प्रभावकारी चित्रण हमें मिलता है। अखण्ड भारत और उसकी एकता के प्रति पूर्ण आस्थावान् होकर कवि ने जिस भाव का चित्रण किया है उससे अभिभूत हुए बिना हम नहीं रह सकते। एक उदाहरण लीजिए—

बोले राम कि ऐसा है तो
साधु भरत का भारत प्यारा।
होगा एक अखंडित अनुपम
जग जग की आँखों का तारा।
काल चक्र की कई आँधियाँ
उस पर आयेंगी जायेंगी।
उसकी जीवन-ज्योति, किसी भी
भाँति न किन्तु बुझा पायेंगी॥

त्रयोदश सर्ग ॥७६॥

इस चित्रण के अतिरिक्त परंपरागत रसभावों का चित्रण भी 'साकेत संत' में अच्छा बन पड़ा है। भयानक रस का यह उदाहरण लीजिए—दशरथ की मृत्यु के बाद उस मृत्यु से अनभिज्ञ ननिहाल से लौटे हुए भरत अवधपुरी में प्रवेश कर रहे हैं। नगरी की निस्तब्धता उन्हें अनिष्ट की आशंका से आक्रान्त किए जा रही है—

देखी उनने सब ओर कठोर उदासी
तकते थे उनको मौन अवध के वासी
सड़कें सिंचन से हीन, वृक्ष अनफूले,
थे विहंग वृंद सब मौन काकली भूले
आलय थे तोरण हीन केतु थे ढीले
थे उज्ज्वल नीले लाल पड़े थे पीले।
तुरही की ध्वनि उड़ गयी, गया सब पहरा,
अभिनव विषाद था राजमहल पर गहरा
अति विकल भरत आ गये महल से माँ के,
देखे अटपट ही हाल कराल वहाँ के।

—साकेत संत।

खड़ीबोली में राम काव्य-सम्बन्धी गद्य की रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ कृति

चतुरसेन शास्त्री का उपन्यास 'वयं रक्षामः' है। इसमें रस-योजना का अच्छा निर्वाह मिलता है और उनके बीच रसों और भावों की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। ऐसे स्थल वयं रक्षामः में कवि की दृष्टि से केवल रस और भाव के चित्रण के लिए नहीं लाये गये हैं, कथा के स्वाभाविक प्रवाह में वे स्वतः आ गए हैं, इसलिए और भी आकर्षक बन जाते हैं। रावण का यह उद्‌गार देखिए—ध्वंस की गई लंका रावण के साथ हमें भी करुण रस में डुबो रही है —

"उन्नत, अटल, अचल प्राचीरों पर सिंह विक्रम भट जो निर्भय सिंह की भाँति घूमते थे, वे अब कहाँ हैं! लंका के सिंह-द्वार सब बन्द हैं। उनके आस-पास असंख्य रथ, गज, अश्व और पादातिकों की रेल-पेल हो रही है। दूर तक फैली हुई बालुका में वह राम-सैन्य ऐसी दीख रही है, जैसे आकाश में नक्षत्र। वह देखो, पूर्व द्वार पर संग्राम में दुर्निवार वीर नल केहरी के समान सावधान बैठा है। दक्षिण द्वार पर हाथी के समान असमबल अंगद और पश्चिम द्वार पर मारुति हनुमान सिंहनाद कर रहा है और उत्तर द्वार पर श्रीहीन राम—कौमुदी हीन चन्द्र के समान, सुग्रीव विभीषण और लक्ष्मण के साथ आसीन हैं। एक मास में इन्होंने तो मेरी लंका को ऐसा घेर लिया है, जैसे व्याध गहन कानन में सिंहनी को जाल में फाँस लेता है। शृगाल, गृद्धिनी, शकुनि, स्वान और पिशाच निर्भय कोलाहल करते विचर रहे हैं। मृतकों की आंतों को खींच-खींच कर परस्पर लड़ रहे हैं। कोई रक्त पीकर तृप्त हो रहा है। मरे हुए हाथी कैसे भयानक प्रतीत हो रहे हैं। कितने रथ, रथी, अश्व, सादी, निसादी, सूली चकनाचूर खण्ड-खण्ड पड़े हैं। टूटे फूटे भिन्दिपाल, वर्म, चर्म, असि, धनु, तूण, शर, मुगदर और परशु पड़े हैं। तेजस्कर वीरों के शिरस्त्राण मणिमय किरीट और कभी उन्हें धारण करनेवाले सिर लुढ़क रहे हैं। हाय हाय जैसे किसान धान काटता है वैसे उसी भांति इस भिखारी राम ने मेरा सब कटक काट डाला है।"

(वयं रक्षामः, पृ० ६४७-६४८, भाग २)

चतुरसेन शास्त्री के 'वयं रक्षामः' में इस प्रकार के और भी प्रसंग हैं जो केवल भाव एवं रस के निर्वाह के लिए नहीं लिखे गये हैं प्रत्युत लेखक का दृष्टिकोण इतिहास तथा उसके मूल में घटित घटनाओं या यथातथ्य चित्रण में स्थिर हुआ है। हम यहाँ पर जिस प्रकार के भाव की तल्लीनता में डूब जाते हैं चतुरसेन शास्त्री ने उसे इतिहास-रस कहा है।

चरित-चित्रण

तुलसीदासके परवर्ती रामकाव्यों ने रामकथा में रामचरितों का रूप साजा-संवारा है। राम-सीता ने युग के अनुसार कई रूप धारण किया किन्तु मुख्य-रूप से उनके निम्नस्वरूप हमारे सामने स्पष्ट होते है—

(१) जन के रक्षक और रंजक राम तथा उनकी माया शक्ति सीता। तुलसीदास के रामचरित मानस मे राम-सीता का यही रूप है। तुलसीदास के बाद आधुनिक काल के पूर्व, रसिक-सम्प्रदाय के कवियों को छोड़कर सभी कवियों ने राम के इसी रूप का चित्रण अपने काव्यो मे किया है।

(२) दूसरा रूप है, मधुर उपासक रसिक भक्तों की साधना का, जिसमें राम का केवल 'रंजक अथवा उसकी रमणीयक रूप मात्र है, जिसमें राम केवल सीता लली के ललना अथवा ब्रह्म हैं और भक्तों की आत्मा-अली के भी वही नायक हैं।

(३) राम-सीता का तीसरा रूप जो आधुनिक युग के काव्यो में सामने आया, वह प्रथम रूप का विकास अथवा उसकी समन्विति प्रतिक्रिया है। पाश्चात्य शिक्षा, राजनीति तथा संस्कृति ने भारतीय समाज को आन्दोलित किया तथा देश की गुलामी से उत्तेजित बौद्धिक वर्ग आजादी के लिए जो दृढ़ संकल्प हुआ, उस परिवेश में हमारे प्रेरणाप्रद पुराख्यान एक नया धरातल तथा नयी मान्यताएँ लेकर सामने आये। इस प्रकार की पुरा कथाओं में राम तथा कृष्ण दोनों की पराधीन राष्ट्र के मुक्तिदाता नेता के रूप में अंकित करने का सफल तथा व्यापक प्रयास किया। उनमे राम का चरित और व्यापक रहा। वह न केवल पराधीन राष्ट्र के मुक्तिदाता का आदर्श था बरंच सामाजिक तथा सांस्कृतिक आदर्शों का केन्द्र बिन्दु बना। प्रजातन्त्र शासन की जो प्रियता इस युग में बह रही थी, उसकी अन्विति रामकथा मे मिलाने की प्रथम चेष्टा कवियों ने की। साकेत वैदेही-वनवास, उर्मिला, कैकयी, शबरी, नन्दिग्राम, कृषि-यज्ञ, चित्रकूट, कर्तव्य आदि रचनाओ मे इसके इसी स्वरूप की रेखा शब्दों में कवियों ने खीची है। एक बात यह हुई कि इन काव्यों या नाटकीय रचनाओ मे राम का वीर रूप साकार नही हुआ और न रावण-विजयी राम हमारे मानस मे इन रचनाओं के माध्यम से अनुभूति बन सके। इसका सही कारण यह था कि जिस युग मे खड़ी बोली के कवियो ने रामकथा पर अपनी ये रचनाएँ लिखीं, वह युग गांधीवाद से प्रभावित था। गांधीवाद का अर्थ स्वदेशी

आन्दोलन, हरिजन आन्दोलन, नारी-शिक्षा, अहिंसा और सत्याग्रह से स्वराज्य की प्राप्ति है। हमारे कवियों ने राम को इन युगीन भावनाओं में बाँधने की चेष्टा की है और उनके वीर रूप की उपेक्षा कर दी है। राम के साथ सीता भी प्राज की नारी का प्रतिनिधित्व करती हैं। तुलसीदास ने सुन्दरकाण्ड में सीता के मुँह से रावण को जो यह उत्तर दिलवाया था कि 'सोइ भुजकंठ कि तव असि घोरा, मागेसि गठ, प्रमाणपन मोरा' ऐसे तेजस्वी प्रसंगों की सृष्टि और सीता का ऐसा तेजस्वी रूप आज के खड़ी बोली के कवियों ने काव्यों में न उतारा। केवल लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'अशोकवन' एकांकी इसका अपवाद है, जिसकी नयी विशेषता यह भी है कि सीता के साथ ही साथ रावण भी अपनी रक्ष-संस्कृति के उदात्त तेजस्वी रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार राम-सीता के चरित्र का जो अंकन आधुनिक युग में हुआ वह अधिकांश गांधीवादी धारा में स्नात है, केवल लक्ष्मीनारायण मिश्र उस वाल्मीकि की परम्परा में खड़ा कर राष्ट्र आत्मा के रंग में रंगने के प्रयास में है। नरेश मेहता के काव्य 'संशय की एक रात' में राम 'युद्ध भीरु' 'शांतिप्रिय', युधिष्ठिर तथा गौतम बुद्ध का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन नवीनधारा के काव्यों के अतिरिक्त रामचरित मानस की पद्धति पर कथावाचक कवि राधेश्याम ने भक्त-वत्सल राम का जो चरित अंकित किया है वह तुलसी के राम की ही याद दिलाता है, रीतिकाल के बीच रुद्रप्रताप की विशाल रचना 'राम-खण्ड' में राम का चरित किसी मूर्त रूप में उभर कर नहीं आता। पुराख्यानों के बीच राम का चरित ही खो उठता है।

राम कथा में एक नया चरित श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने इसी युग में सृष्ट किया। सीता की माता अब तक सुनयना कही जाती रही हैं और उनका ही नाम कृतियों में गाया गया है परन्तु बेनीपुरी जी ने सीता की नयी माता को, जो उनकी रचना में भी 'अनाम' है, खोज निकाला, अपनी कृति के माध्यम से हम लोगों के सामने उपस्थित कर दिया।

तुलसीदासोत्तर राम साहित्य में भरत के चरित में कोई नयी बात नहीं आयी। भाई राम के अनन्य प्रिय भरत का वही चरित और वही कार्य इधर की रचनाओं में भी बना रहा। केवल डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र के 'साकेत संत' में वह एक नये परिवेश में उपस्थित किया जाता है। मिश्र जी ने 'साकेत संत' में भरत के चरित्र को इस प्रकार उपस्थित किया है कि वह राम की महिमा का मूल बन गया है। चित्रकूट में राम के दर्शन के लिए भरत के अभि-

यान को आध्यात्मिक और दार्शनिक रूप प्रदान कर मिश्र जी ने एक नयी वस्तु-योजना भरत के चरित्र मे की हैं जो उनकी मौलिकता का प्रतीक है।

भरत के महान व्यक्तित्व और विराट चरित्र का चित्रण श्री सोहन लाल द्विवेदी ने अपने खण्डकाव्य 'भरत' मे किया है पर यह अभी तक प्रकाश में नहीं आया।

क्योंकि इन परवर्ती काव्यों में तुलसीदास की भाँति विराट काव्य-योजना नही है इसलिए प्रायः भक्ति काल के कवियों ने भी भक्ति के बीच तथा आधुनिक काल के कवियों ने नवीन विश्वबन्धुता के बीच राम तथा उनके सहयोगियो के वीर धर्म को प्रकाशित करने मे अपनी मनोवृत्ति की उपेक्षा करवाई है फलतः जाम्बवान, सुग्रीव, अंगद, हनुमान आदि पात्रों की वीरता का चित्रण इन काव्यों में नहीं मिलता। रामचरित उपाध्याय के रामचरित चिन्तामणि में अवश्य हनुमान तथा अङ्गद की वीरता के दर्शन होते हैं, रावण के प्रति अंगद का वीरत्व केशवदास की रामचन्द्रिका की याद दिलाता है लेकिन रामचरित चिन्तामणि आधुनिक युग की नयी मोड़ की रचना नहीं है। आधुनिक युग की नयी मोड़ के राम काव्यों में 'जय हनुमान' मे अवश्य वाल्मीकि के आधार पर उनकी वीरता का चित्र खींचा गया है लेकिन 'आञ्जनेय' के दक्षिण सर्ग मे हनुमान आज के धरती पुत्र के प्रतिनिधि बन जाते हैं। रीतिकाल तक हनुमान का चरित्र-विकास बड़े वेग से हुआ। वे राम की भाँति भगवान् की कोटि में बैठाये गये, इसीलिए 'आंजनेय' ऐसे काव्य मे वे राम के समकक्ष धरातल पर चित्रित हैं और आंजनेय में राम के कथनानुसार उस युग के युगान्तर पुरुष के पैर स्वयं राम है, हाथ हनुमान हैं—

'हमारे पैर तुम्हारे हाथ—
भरेंगे इस पृथ्वी को साथ।'

नारद, शिवि, कागभुशुण्डि, पार्वती, भारद्वाज, याज्ञवल्क्य आदि प्रसंगानुकूल आनेवाले रामकथा के पात्र, भक्ति तथा रीतिकालीन रचना के बाद केवल राधेश्याम कथावाचक के राधेश्याम रामायण में ही दिखाई पड़ते हैं फिर तो नयी मोड़ की रचनाओं में जैसे राम-कथा मे इनका कोई सरोकार हो नही है।

केवट, शबरी इन दो पात्रों को भी तुलसीदास के बाद बहुत विकसित किया गया और आधुनिक काल मे तो शबरी पर कई रचनाएँ हुई। इसका कारण था कि आधुनिक युग में शबरी हरिजन और नारी के आन्दोलन का प्रतिनिधि बन गयी।

अहिल्या को लेकर गुलाब कवि ने 'अहिल्या' काव्य लिखा लेकिन

नारी-समस्या को लेकर अहिल्या को बहुत चर्चा काव्य-साहित्य मे नहीं आई।

प्रतिनायक रावण तथा उसके पक्ष के पात्रों में तुलसीदास के परवर्ती काव्यों मे विभीषण का चरित नीचे गिराया गया, उसके चरित की जो उच्चता 'मानस' मे की गई वह देशद्रोही के रूप मे इधर के काव्य मे चित्रित होने लगी। आधुनिक काल मे विभीषण आदरित न हुआ। मेघनाद और उसकी स्त्री सुलोचना विशेष ऊँचे उठाये गये। रावण का यथार्थ चरित समझने की चेष्टा की गयी। और इस सम्बन्ध मे प्रतिस्पर्द्धी रचना, 'रावण महाकाव्य' के अतिरिक्त हमे चतुरसेन शास्त्री के 'वयं रक्षामः' उपन्यास तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'अशोकवन' एकाकी को न भूलना चाहिए। 'अशोकवन' मे रावण को मिश्र जी ने असाधारण चरित कहा है। चतुरसेन शास्त्री ने अपने उपन्यास मे उसे विश्व-बन्धुत्व का प्रतीक, रक्ष-संस्कृति की नींव डालनेवाला कहा है—

'रावण के मन मे तीन तत्त्व काम कर रहे थे। उसका पिता शुद्ध आर्य और विद्वान् वैदिक ऋषि था, उसकी माता शुद्ध दैत्य-वंश की थी उसके बधु-बाधव बहिष्कृत आर्य वंशी थे। उन्हें क्रिया कर्म तथा यज्ञ से च्युत कर दिया गया था। अब उसने भारत और भारतीय आर्यों को दलित करने, उन पर आधिपत्य स्थापित करने, और सब आर्य-अनार्य जातियो के समूचे नृवंश को एक ही रक्ष संस्कृति के आधीन समान भाव से दीक्षित करने का विचार किया। तत्कालीन परम्पराओ के अनुसार उसने नृवंश के सब धार्मिक और राजनीतिक नेतृत्व अपने हाथ मे लेने का संकल्प दृढ किया।'

(वयं रक्षामः—पृ० १६२, प्र० भा)

रावण महाकाव्य मे रावण को अपने राष्ट्र का निर्माता तथा रक्ष-जाति में स्वाभिमान जगानेवाला बताकर कवि उस स्थिति की ओर प्रकाश डालता है जिसके कारण देव जाति के विरोध के लिए रावण को बाध्य होना पडा। रावण अपनी सभा मे कहता है :

साओ नरनहि में नहि विचारा।
नानहि समर विस्नु संहारा।
देवन मिलि उनको उकसायो।
अरु अति प्रबल वैर बंधवायो॥
देवहि सब आपाति के कारन।
इनहीं सो अब करो संहारन।

रावण के चरित को जो उच्चता इन उपर्युक्त तीन लेखकों ने अंकित की है उससे आज के वैचारिक युग में राम का चरित अवनत नही होता प्रत्युत रावण की इस प्रशंसा यथार्थता से राम का महत्व और भी बढ जाता है।

रावण की रानी मन्दोदरी का चरित भी तुलसीदास के अनुकरण पर ही गाया जाता रहा। 'रावण महाकाव्य' में रावण की मृत्यु में बाद की घटनाओं का जो चित्रण हुआ है उसमे उसकी स्वदेश-भक्ति का दर्शन है—

> कै छल वैरिन को दै सहाय
> भली विधि बंस को छार करायो।
> देस और राष्ट्र और जाति को गौरव
> जाने सबै निज हेतु नसायो॥

रामकथा के एक प्रसिद्ध चरित जो आधुनिक काल में तो अवश्य भुला दिये गये लेकिन ठीक इसके पूर्व तक रामकाव्यो मे बड़ी तत्परता से अंकित होते रहे, वे हैं भगवान परशुराम। 'रामचरितमानस' मे राम के साथ इनका जो अंकन हुआ है वह बाद में क्षत्रिय और ब्राह्मण तेज और शक्ति का प्रतीक बन गया। और संदेह नही कि राककथा के अंगभूत आप इस वीर चरित को यथार्थ तथा मर्यादा के साथ अंकित करने मे कवियो ने अपनी क्षमता नहीं दिखाई। बल्कि रघुराज सिंह जैसे महाराजा कवि का वर्णन मर्यादा के विपरीत भी हो गया। पुराण का श्रुति के अनुसार जिस वीर ने अपने अकेले बाहुबल से कभी आर्यावर्त के क्षत्रियों को निःशेष कर दिया था उसे राम के साथ सिंह के साथ गाय की उपमा देना नितान्त अनुपयुक्त है —

> द्वन्द युद्ध जानि देव चढ़ि के विमान दौरि
> आये आसमान करि आगे करतार को
> मर्कत महीधर सो अचल निहारि खड़े
> साजे धनु तीर वीर कुशल कुमार को॥
> कहा करो चाहे रघुराज रघुराज आज,
> जाके सब जीहैं कछु आवैना विचार को।
> सिंह के समीप जैसे सुरभी सकानो त्योंपि,
> लोके वीरमानो जमदग्नि जू के बार को ॥(पृ० ६७०–३)

और उसके बाद पौराणिक मान्यता में ढालकर विष्णु के अवतार का स्थानान्तरण दिखाना दोनों वीर चरितों की गरिमा को पुराण का खिलवाड़ कर देता है —

तिहि क्षण वैष्णव तेज विशाला। भृगुपति तनु तें कढ्यो उताला।
राम रूप मह गयो समाई। औरन कह परयो लखाई।
चारण सिद्ध यक्ष गंधर्वा। देव दैत्य ठाढ़े जे सर्वा।
प्रभु कौतुक कुछ परयो न जानी। बहु विधि रहे मनहिं अनुमानी॥
(पृ० ६७०-७१ राम-स्वयंवर)।

भाषा-शैली तथा कल्पना-विलास

तुलसीदास के युग मे केवल अवधी मे ही रामचरित लिखा गया। उनके बाद हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र की जनता ने रामचरित के प्रति जो अपनी श्रद्धा दिखायी उसके कारण रामकाव्य अवधी, ब्रजभाषा मे तो लिखे ही गये प्रदेशीय एवं स्थानीय बोलियो मे भी लिखे गये। भोजपुरी में अभी श्री दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह 'नाथ' की बहुत बडी रचना-'साहित्य रामायन' खंडशः प्रकाशित हुई है। क्योंकि बोलियो का राम-साहित्य हमने अपने शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत विवेचना के लिए नही लिया है, इसलिए विशेष चर्चा करने का प्रसंग यहां नही है। लेकिन इतना कहना जरूरी है कि इस कवि ने तुलसीदास एवं कथावाचक राधेश्याम के बाद रस, भाव एवं अनुभूति से सराबोर भक्तिपूर्ण विशाल राम-काव्य लिखा है।

तुलसीदास के बाद अवधी मे ही रामकाव्य लिखा जाय, यह कोई नियम नही रह गया। अधिकाश काव्य अवधी मे लिखे गये। कही-कही पर उन पर ब्रजभाषा की छाप है जैसे राम स्वयवर' और 'विश्राम सागर' मे। अवधी तथा बुन्देलखण्डी की सधि भाषा का प्रयोग रुद्रप्रताप के 'राम खण्ड में हुआ। 'आनन्द रघुनन्दन' में भी गद्य मे तो बुन्देलखण्डी का प्रयोग हुआ है। लेकिन पद्य मे डिंगल, ब्रजभाषा, अवधी सभी का समावेश है।

दोहे-चौपाई की शैली बहुत समय तक चलती रही और बड़े-बड़े काव्य उसी में लिखे गये हैं। इसी दोहे और चौपाई की शैली मे रामस्वयवर, विश्राम-सागर, रामखण्ड, रामाश्वमेघ लिखे गये। उस शैली मे नयी मोड़ राधेश्याम कथावाचक ने दी, दोहों के साथ चौपाई के स्थान पर वीर छन्द का प्रयोग किया।

छन्दो के प्रयोग मे केशवदास की 'रामचंद्रिका' राम-काव्य मे स्मरणीय रचना है। वह रामकाव्य भी है, छन्दःशास्त्र भी है। उस शैली मे लिखने की एक नकल आधुनिक काल मे गयाप्रसाद द्विवेदी ने 'नन्दिग्राम' मे की है।

गीत-शैली मे रामकाव्य की रचना तुलसीदास द्वारा ही प्रवर्तित है। बाद मे इस शैली पर बहुत सा साहित्य लिखा गया। सम्पूर्ण रसिक-सम्प्रदाय मधुर-भावना का साहित्य गीत-शैली में हीं अंकित है।

आधुनिक काल में आकर 'रामचरित चिंतामणि' ने खड़ीबोली के नये छंदों का जो प्रयोग किया, वह कोई नयी बात नहीं थी। अपनी परम्परा का ही नवीनीकरण था। नयी बात हुई गुप्त जी के 'साकेत' काव्य में जब छायावादी शैली में उर्मिला वियोग के दो सर्ग लिखे गये, खड़ी बोली काल के प्रचलित वादों में जिन शैलियों का प्रयोग हुआ उन सभी शैलियों का प्रयोग रामकाव्य के लिए भी करते गये। एक ही छन्द में लिख गया, 'आंजनेय' प्रगतिवादी शैली का प्रतिनिधित्व करता है और 'संशय की एक रात' प्रयोगवादी शैली में है।

गद्य की रचनाओं में यथार्थशैली का प्रयोग प्रायः सभी ने किया है। लच्छेदार भाषा का प्रयोग आज के कवि को वांछित नहीं था, हां, 'आनन्द रघुनंदन नाटक' में लच्छेदार बुंदेलखण्डी गद्य का भी प्रयोग है पर उसमें संस्कृत शब्दों का पुट है।

कल्पना, भाव तथा अनुभूति के द्वारा राम काव्य में जो चारुता लाई गयी है उसका विस्तृत विवेचन यहां प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है लेकिन कवियों की कल्पना-विलास की पद्धति को मैं चार मार्गों में बांटूंगा—

(१) एक वे हैं जो आलंकारिक मार्ग के पथिक हैं, शब्दों की चित्र शैली जिन्हें अधिक पसन्द है, यहां वर्णन मात्र कवि का लक्ष्य है —

छोटी छोटी तानें शीश राजैं ग्रह राजैं राम
छोटी छोटी घिनियां पची हैं, छोटे कान में।
छोटी काठी कठुले विराजें छोटे कंठन में
छोटे छोटे अंगद सु छोटी–सी प्रजान में।
छोटे छोटे जामा छोटे पायजामा पाप पड़ू गर्तों
छोटी छोटी घुंघरू सुराजें नुपुरान में।
छोटी बट्टियां में लीन्हें छोटी-सी धनुहियां
पनहियां में पगन रघुराज चलैं सान में।

ऐसे प्रयोग कवि की अपनी शब्द प्रतिभा का प्रदर्शन मात्र हैं। सेनापति ने भी ऐसे प्रयोग किये हैं —

र रे रमा में रमे रोम राम में रारि
रमा रमा में मार मार रे मारि। (क० र० तरंग ५।६४)

विश्वनाथ सिंह ने भी अपने नाटक में ऐसी ही शब्द-राशि का प्रयोग केवल इसी उद्देश्य से किया है—

अमृत ध्वनि-जहं सुर रिपु तहं कोपिते रंग कीस रन रंग।
माह-मारु भनि भट भिरे अंगगिगगिरत सुजंग।
अंगगिग गिरत सुजंग गुगारव उमंग गगनतन।
ठट्ट टुटेहं सुभट्ट टिम्मत कुभट्ट टूटरत न।
रथिथ यु थु रय समयुथ थयथ रन रय थयुरि उर।
भज्जज्जलहिं निमज्जज्वो गिनि भयज्जज्जहं सर
जस जग जग मह तसन कहि करे कालिका कूक
लगी शृगाली भखन पल की कक्करि करि भूक
की क्क्करि करि मुक्क धकद्धुरि अतंक थिय हरि।
लख्खरखन दल अरख्ख रखयमत तख्ख रख्खलरि,
कुद्धध्धरि सुजुद्धद्धरनि विरुद्धद्धरि अंग
भज्जज्जम सम गज्जज्जं तहं सज्जज्ज सजंग।

(आ० र० ना० पृ० १२७)

आधुनिक काल के कवियो ने शब्दालंकार का यह प्रयोग कुछ उक्ति वैचित्र्यय के साथ किया। रामचरित उपाध्याय की रचना मे अगद रावण-संवाद का यह छन्द देखिये—

समर है रिपु से करना नहीं
कब भला हम हैं सुनते इसे
जगत में भट को भट मानिता
अचल है, चल है अचलादि भी।

(रामचरित चितामणि-पृ० २७०)

हमारे कवि-केसरी निरालाजी ने इस पद्धति को और भी अभिव्यंजक बनाया। उनकी 'राम की शक्ति पूजा' रचना में शाब्दिक चित्रावली का यह रूप देखिए, जिसमे युद्ध की भीषणता रौद्र भाव की अभिव्यक्ति भी फूट पडती है—

रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल-वानर-दल-बल—
मूर्छित सुग्रीवांगद-भीषण-गवाक्ष-अनल—
वारित सौमित्र-मल्लपति-अगणित मल्लरोध,
गर्जित-प्रलयाब्धि-क्षुब्ध-हनुमत्-केवल-प्रबोध,
उद्गीरित-वह्नि-भीम-पर्वत-कपि-चतुः प्रहर—
जानकी-भीरु-उर-आशा भर,-रावण-सम्बर।

(२) दूसरी पद्धति ऐसे कवियो की जो अर्थालङ्कार द्वारा अपनी उक्ति का चमत्कार दिखाते हैं। सेनापति का यह छप्पय देखिए:

को मंडन संसार ? गीत मंडन पुनि को है ?
कहा भुगपति को भक्ष ? कहा तरनी दुख सोहे ?।।
को तीजो अवतार ? कवन जननी-मन-रंजन ?
को आयुध बलदेव हरय दानव दल गंजन ।।
राज अंग निज संग पुनि कहा नरिंद राखत सकल ? ।
सेनापति राखत कहा ? सीतापति कौं बाहुबल ।।
(क० –र०-पांचवीं तरंग-७४–पृ०१५२)।

इसमें द्वितीय उत्तर अलङ्कार द्वारा कवि अपनी उक्ति अथवा रामभक्ति का प्रदर्शन करता है। अर्थालङ्कार के प्रयोग में कथावाचक राधेश्याम को बहुत अच्छी सफलता मिली है। उनके प्रयोग की विशेषता यह है कि उन्होंने सरल और बोधगम्य अभिव्यक्ति अलङ्कारों के सम्बन्ध में प्रस्तुत की है। उपमा और उत्प्रेक्षा की यह संसृष्टि देखिए—

वह रथ मंडल नभ मंडल था, नक्षत्रों सा निश्चर दल था।
जिस रथ पर राम भानु प्रकटे, वह रथ मानों उदयाचल था।
रवि के प्रकाश से अंधकार क्रमशः ज्यों हटता जाता है।
त्यों राम बाण से दिन-प्रतिदिन राक्षसदल कटता जाता है।
(रावण वध–पृ० १८)

नवीन जी की 'उर्मिला' में यह परिम्परित रूपक देखिए—

पर तुम चलो-चलो करती हो
क्या कालोदधि की शंका
सेतु बन्ध श्री राम नाम का
स्मरण करो, पहुँचो लङ्का ।।
क्या पराजिता ? नहीं सद–जिता
लङ्का की निरखो शोभा,
राजमार्ग की, प्रति गृह-गृह की,
छटा निहारो मन लोभा।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'अशोकवन' में व्यतिरेक अलङ्कार का यह प्रयोग

कथा-प्रसंग की तीव्र अभिव्यक्ति मे सहायक है। रावण अपनी रानी मन्दोदरी से कह रहा है—

"इन्द्र के वज्र को मैने रोक लिया, राम के दण्ड, वरुण के पाश, आराध्य शंकर के त्रिशूल की ओर मैं निर्भय देख लेता हूँ, पर जनक की इस कन्या की ओर देखना भी मेरे लिए संभव नही।

आनन्द रघुनन्दन नाटक में प्रतिवस्तूपमा का यह प्रयोग भी कितना अच्छा अच्छा हुआ है—

'दिव्शिर-(विहस्य) सुनियत है बानर बहुत समिटे हैं और सागर तरि मोसो रन करन विचार करें हैं, सो कौन आश्चर्य हैं! पतंग प्रदीप मे जरन कहा नही आवै हैं! कोट द्रुततें जाइ खबरि लें आवे॥ (आ०र० ना०पृ० ६४)

रसिक-संप्रदाय के कवियों ने भी अर्थालङ्कारों का अच्छा प्रयोग किया है। युगलानन्यशरण जी की यह उक्ति देखिए जिसमें सदेह अलङ्कार गुम्फित हुआ है—

जुगल विचित्र विहार किधौं कल हंस हंसिनी।
किधौं मत्त मातंग कलित करनी प्रसंसिनी॥
किधौं कामिनी काम किधौं यामिनी चंद वर,
किधौं सजल घनदास नीर अन्तर विनोद कर।
किधौं अमल अनुराग रूप रस भूप सुतन धरि
क्रीडत कुंवर किशोरी किसोर काज साज करि॥

(३) तीसरी पद्धति ऐसे काव्य मे की है जिसमे अलकार, रस से भिन्न, विचार-वैचित्र्य ही काव्य और उसके कल्पना-विलास का रूप धारण करता है। ऐसी रचनाओ मे बेनीपुरी की 'सीता की मा' है। 'सीता की माँ' का यह प्रसंग देखिए—

'सीते कहाँ गयी ? ब ... बताती क्यो नही हो, ओ अट्टालिका ...!
तुमने मेरी सीता को क्या ... म खा गयी मेरी बेटी को!
की बेटी को अट्टालिका खा ... की बेटी को राजधानी खा
जिस बेटी को राक्ष ... उसे मानवपुरी खा
गयी। जिन्दा ... । बेटी सीते!

(पृष्ठ

'संशय की एक रात' से भी ऐसा उदाहरण लीजिए—

'वहां
केवल अन्तराल
जहां अविनश्वर समय स्वयं यात्रित हैं।
जहां केवल अन्तराल
जहां ध्वनियां, प्रकाश, रंग, रूप गंध यात्रित हैं।
बोधहीन आत्माएं यात्रित हैं।
केवल अन्तराल
केवल अन्तराल फैला है
रंग कुंडलों के आवर्तों में घिरे हुए
इन तार ग्रह की दूरियों से
ऊपर पार
प्रतिध्वनियोंवाला अन्तराल
अपने नीले रहस्य में
केवल अपने लिए ही समासित है।
राघव तव काल के किस प्रण के
समय के किस संशय को
सत्य के किस शंकाल को
निरूपना चाहते हो ?'

(पृ० ६६–६७)

(४) चौथी पद्धति ऐसे काव्यों की है जिनमें रामकथा या रामकथा के पात्र की भावनाओं की छाया ही उनके कल्पना-विलास में आती है, और सीधा तारतम्य कथा और उसके पात्र से न होकर कवि की स्वयं को उच्छ्वास वह हो जाता है जैसे साकेत नवम सर्ग में अनेक गीत हैं, एक उदाहरण लीजिए—

पाऊं मैं तुम्हें आज, तुम मुझको पाओ,
ले लूं अंचल पसार, पीत-पत्र आओ।
फूल और फल निमित्त
वाले देकर स्वास-वित
लेकर निश्चन्त चित
उड़ न हाय ! जाओ,
लूं मैं अंचल पसार, पीत-पत्र, आओ।

तुम हो नीरस शरीर,
मुझमें है नयन-नीर
इसका उपयोग वीर,
मुझको बतलाओ ।

लूं मैं अंचल पसार, पीत-पत्र, झओ। नवम सर्ग—पृ० २८९।

वस्तुतः कल्पना विलास की यह शैली छायावादी, कवियों की थी, जिसमें भावाभिव्यक्ति भी होती थी, साथ ही साथ अलंकारों का गुम्फन भी होता है परन्तु कथा-प्रसंग जिसमें दिखाई नही पड़ता है , पर वहां तो प्रतीकवाद का अपनी व्यक्तिगत भावनाओ के प्रदर्शन के लिए, किन्तु यहां रामकथा का पात्र इन अभिव्यक्तियो का केन्द्र नही बन पाता, सीधे स्वयं कवि ही हो जाता है। 'साकेत' के अनुकरण पर बाद के कुछ कवियो ने भी इस शैली का अनुकरण किया है, 'नन्दिग्राम' मे इस शैली का अनुकरण विद्यमान है।

१०

उपसंहार :

सिंहावलोकन तथा राम-साहित्य का भविष्य

पहले ही हमने यह देखा है कि तुलसीदास के 'रामचरित मानस' के अनन्तर रामभक्ति का लोक में जो व्यापक प्रभाव पड़ा उसने राम-साहित्य रचना का एक आन्दोलन सा खड़ा कर दिया। राजा से लेकर रंक तक राम-साहित्य पर कुछ न कुछ अवश्य लिखते थे, अगर उनके अन्दर कुछ लिखने की क्षमता रहती थी। रीवां नरेश रघुराज सिंह का "राम स्वयंवर" तथा माडा नरेश रुद्रप्रताप सिंह का "रामखंड" जैसे रामचरित पर विशाल काव्य इस बात के साक्षी है कि इन राजाओ ने रामचरित पर रचना करने को अपना एक कर्तव्य समझा।

धीरे-धीरे रामभक्ति के अधिकाधिक प्रचार ने राम-साहित्य को एक दार्शनिक रूप ही दे दिया। इस दार्शनिक रूप के साथ शाक्त संप्रदाय की मान्यताओं को अपने में अन्तर्गत करते हुए रसिक सम्प्रदाय की कल्पना भी हुई। रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय का बहुत बड़ा साहित्य लिखा गया। राम साहित्य में राम को लेकर तांत्रिक मांत्रिक सिद्धियों का भी साहित्य लिखा गया।

इन सब के साथ साथ संस्कृत भाषा से अनेक सुप्रसिद्ध राम-काव्यों के अनुवाद भी प्रस्तुत हुए।

सबसे अधिक चमत्कार यह था कि राम-साहित्य को प्रत्येक शैली और छन्द मे प्रस्तुत करना भी लेखकों का ध्येय हो गया। आल्हा छन्द में भी राम-काव्य लिखा गया और अन्य कितनी शैलियों मे तो तुलसीदास ही लिख चुके थे।

तो रामकाव्य लिखने की इस अटूट परम्परा का प्रेरक कौन है? क्या विदेशियों के आक्रमण से देश में जो पराधीनता आयी, मंदिर तोड़े गये, धर्म पर संकट खड़ा हुआ, इसके फलस्वरूप भगवान राम की भक्ति में कवियों ने उनके चरित का गान किया? पर यह कारण समीचीन नही प्रतीत होता विदेशियों के

इस बीच कवियों का एक समूह ऐसा भी रहा जिसने वाल्मीकि रामायण के अनुसार कथा को प्रस्तुत करने में ज्यादा अच्छाई समझी। श्री श्यामनारायण पांडे के 'तुमुल' और 'जयहनुमान' ऐसे ही काव्य हैं जिसमे निरपेक्ष रूप मे रावण और राम के पक्षों का पराक्रम 'अभिव्यक्त हुआ है। इस दृष्टि से श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'अशोकवन' अत्यन्त उत्कृष्ट कृति है।

वाल्मीकि रामायण को आधार मान कर लिखे गये राम-साहित्य मे कथा की स्वच्छता अवश्य है और कुछ तो मान है, पर उस कथा की स्वच्छता में चमक लाने का काम जैसा लक्ष्मीनारायण मिश्र ने किया वैसा सभी लेखक नही कर सके है। बीसवीं शताब्दी में जब राम कथा को नयी युग चेतना से समन्वित किया गया तब उसके लिए सफल और सबल आधार वाल्मीकि रामायण ही था, जिसकी भूमि पर नये रामकाव्यों का प्रयोग होता, लेकिन अनेक कवि 'रामचरित मानस' तथा टैगोर 'काकेर उपेक्षिता' पर ही अपनी कल्पना दौड़ाते रहे। ऐसे काव्यों मे प्रबन्ध की सफलता तो बिल्कुल नष्ट हो गयी लेकिन कल्पना विलास खूब है, जैसे 'नवीन' की 'उर्मिला'। प्राकृत तथा अपभ्रंश मे लिखे गये रामकाव्यों को हिन्दी मे लिखे गये काव्यो का उपजीव्य बनने का अवसर नही प्राप्त हुआ यद्यपि प्राकृत तथा अपभ्रंश मे रामकथा सम्बन्धी उच्चकोटि की रचनाए हैं। अभी इधर कुछ लेखको ने उनका अनुवाद हिन्दी, गद्य मे किया लेकिन विशुद्ध मौलिक साहित्य के स्तर पर उनका अवतरण हिन्दी में नही हुआ।

राम-साहित्य लिखने का जो आन्दोलन शुरू हुआ उसकी शाखाएं निरन्तर होती गयी। रामकथा के अन्य पात्रों-हनुमान, लक्ष्मण, शबरी आदि पर भी कविताएं और ग्रन्थ लिखे गये।

इस बीसवी शताब्दी में रामकथा के अगभूत पात्रों का भी कवियो ने बहुत महत्व दिया। बेनीपुरी जी ने तो 'सीता की मा' एक नये पात्र की कल्पना ही मूर्तिमान कर दी, और उस पर अपना सूक्तोक्ति रूपक लिखा। ऐसे लेखको ने रामकथाओं भक्ति के प्रकाश मे नहीं, विशुद्ध सामाजिक भूमि पर खड़े होकर देखा है। अन्य पात्रो में शबरी की चर्चा इस आधुनिक काल मे बहुत हुई। इसी प्रकार कैकेयी के लांछन को धो डालने का विपुल प्रयत्न भी कवियो ने बहुत किया। इस प्रकार के विपुल प्रयत्न में 'केदारनाथ'मिश्र प्रभात का प्रयास 'कैकेयी' है। हनुमान अपने वीर धर्म के कारण वीरतोपासक भक्तों के बहुत आराध्य हुए और उन पर स्तुति रूप में स्फुट रचनाएं हुई। लेकिन इस नवयुग,

में उनके चरित को और भी विशाल भूमि पर देखा गया और उन पर प्रबन्ध रचना की गयी । अन्य अंगभूत पात्रों में 'विभीषण' ही एक ऐसा पात्र है, जिसकी प्रशंसा इस युग के कवियों ने नहीं की । भरत की प्रशंसा में काव्य तो अवश्य लिखे गये, लेकिन उनके चरित में कोई नवीनता कवि न ला सके ।

रामकथा में जो उल्लेखनीय मोड़ आया वह था रामकथा का मनोविश्लेषणात्मक, ऐतिहासिक चिन्तन। ऐतिहासिक पक्ष को लेकर साहित्य के रूप में चतुरसेन शास्त्री का 'वयं रक्षाम:' उपन्यास रामकथा के प्रस्तुतीकरण में 'रामचरित मानस' से टक्कर लेता है। मनोविश्लेषणात्मक कृतियों में 'सीता की माँ' 'आंजनेय' और संशय की एक रात' का नाम लिया जायगा।

इसी प्रकार प्रतिस्पर्द्धी रचनाएं भी ऐतिहासिक चिन्तन का प्रतिफल थीं। यद्यपि इस दिशा में अभी कोई अत्यन्त सफल रचना प्रस्तुत नहीं हो सकी है। फिर भी, ब्रजभाषा में लिखा 'रावण महाकाव्य' रामकथा के समानान्तर खड़ा हो जाता है।

'रावण महाकाव्य' की विशेषता उसके मौलिक प्रबन्ध में विशेष है। यद्यपि इसका आधार पुराण ही है तथापि पुराण के आधार पर भी जो मौलिक प्रबन्ध कल्पना हरदयालुसिंह ने की है उसमें ऐतिहासिक स्वच्छता के आभास पर्याप्त हैं।

यह निश्चय है कि भविष्य में रामकथा पर रचनाओं का तांता भंग नहीं होगा। रचनाएं निरन्तर होती रहेंगी और उनमें नवीनता आयेगी। रामकथा के सत्य स्वरूप और मूल पर पहुँचने की अथवा युग के अनुरूप उनकी व्याख्या करने की जैसा कि रामवृक्ष बेनीपुरी की 'सीता की मां' तथा जयशंकर त्रिपाठी के काव्य 'आंजनेय' एवं नरेश मेहता के काव्य 'संशय की एक रात' के हैं, इस प्रकार की मनोविश्लेषणात्मक रचनाएं ही अधिकांश राम-साहित्य पर अब लिखी जायंगी और निश्चित रूप में प्रतिस्पर्द्धी रचनाएं भी इसी धारा में अन्तर्भूत हो जायेंगी, जैसा कि श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'अशोकवन' एकांकी में दोनों पक्षों का समन्वय है।

शायद हमारे लोक मानस के बीच रामकथा की लोकप्रियता की जड़ पाताल तक पहुँच गयी है। इतने युग परिवर्तनों के बाद भी रामकथा के गायकों की भीड़ नहीं छंट रही है। प्रत्येक नये युग का कवि अपनी नयी आंखों से जब युग की पृष्ठभूमि पर नजर डालता है तो उसे राम ही खड़े दिखाई पड़

जाते हैं। इस युग मे गांधीजी की जो ख्याति प्राप्त हुई, जो उन्हें लोकप्रियता मिली वह विश्व व्यापक है पर कवि और लोक दृष्टि गांधी को भी राम को सामने कर देखना चाहते हैं। रामकथा की यह विशेषता, एक ऐसा तथ्य है जो वह बताता है कि आगे के युग में भी राम कथा पर लेखनी उठाने वाले नवनवोन्मेषी साहित्यकारों की परम्परा की कड़ी कभी विच्छिन्न नहीं होगी।

शायद साहित्य की प्रत्येक विधा में रामकथा को अब तक हमारे हिन्दी के कृतिकार उतार चुके हैं और यह शुभावह बात है कि वे रामकथा का, जो लोक-प्रेरक होने के साथ ही हमारे भारतीय साहित्य का उपजीव्य रहा है, लेखकों ने आदर नहीं छोड़ा है और न छोड़ेंगे।

परिशिष्ट

सहायक ग्रंथ-सूची

काव्य दर्पण—रामदहिन मिश्र।
खोज विवरणों का १ से १४ तक का वार्षिक विवरण—काशी नागरी प्रचारिणी सभा
तुलसी दर्शन—डा० बलदेवप्रसाद मिश्र।
तुलसीदास—डा० माताप्रसाद गुप्त।
दुर्गा सप्तशती—
पद्म पुराण (गीताप्रेस, गोरखपुर)।
पांडुलिपियां—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
ब्रह्मवैवर्त पुराण।
भुवनेश्वरी स्तोत्र—(पाण्डुलिपि)।
माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान—डा० सर जार्ज ग्रियर्सन।
मालविकाग्निमित्र—कालिदास।
मिश्रबंधु विनोद।
मेघदूत—कालिदास
रस मीमांसा—आचार्य रामचंद्र शुक्ल।
रामकथा (उत्पत्ति और विकास)—डा० कामिल बुल्के।
रामचरित मानस—तुलसीदास।
रामभक्ति में रसिक संप्रदाय—डा० भगवतीप्रसाद सिंह।
रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना—डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'।
वाल्मीकि रामायण।
शिवसिंह सरोज—शिवसिंह सेंगर।
संस्कृत साहित्य का इतिहास—बल्देव उपाध्याय।

हिन्दी पुस्तक साहित्य—डा० माताप्रसाद गुप्त ।
हिन्दी साहित्य (उद्भव और विकास)—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास–डा० रामकुमार वर्मा।
हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल ।
हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
हिन्दुई साहित्य का इतिहास—गार्सा द तासी। अनु० डा० वार्ष्णेय ।
हिन्दी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन ।

पत्रिकायें

अनुशीलन—प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग ।
कल्याण—गीताप्रेस, गोरखपुर (भक्त चरितांक एवं श्रीरामाङ्क)
तुलसीदल—मानस प्रेस, इब्राहीमपुरा, भोपाल ।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका—(नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
सम्मेलन पत्रिका–(हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)।
हिन्दुस्तानी—(हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग)।

ग्रंथ-सूची

अग्नि परीक्षा—आचार्य तुलसी
अनामिका—'निराला'।
अभिषेक नाटक—भास ।
अशोकवन—(एकांकी)—लक्ष्मीनारायण मिश्र।
अशोकवन—सुमित्रानन्दन पंत ।
अशोकवन–(काव्य) —गोकुलचन्द्र शर्मा ।
अष्टयाम–अग्रदास ।
अष्टयाम—नाभादास ।
अष्टयाम—सुमान ।
अष्टयाम अहिन्नक—विश्वनाथ सिंह ।
अष्टयाम पूजाविधि—रामचरण दास ।

अहल्या—गुलाब कवि ।
आंजनेय—जयशंकर त्रिपाठी ।
आनंद चिंतामणि—कृपानिवास ।
आनंद रामायण—विश्वनाथ सिंह ।
आल्हा रामायण—नवलसिंह कायस्थ ।
आश्चर्य चूड़ामणि—शक्ति भद्र ।
उत्तर रामचरित—भवभूति ।
उत्तरायण—रामकुमार वर्मा ।
उदार राघव—साकल्यमल्ल ।
उदात्त राघव नाटक—अनंग हर्ष मायुराज ।
उभय प्रबोधक रामायण—बनादास ।
उर्मिला—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ।
कवित्त रत्नाकर—सेनापति ।
कर्त्तव्य (पूर्वार्ध)—सेठ गोविन्ददास ।
कुंडलिया रामायण—
कृषि यज्ञ—सेठ गोविन्ददास ।
कैकेयी—शेषमणि शर्मा'मणिरायपुरी ।
कोशल किशोर—डा० बलदेवप्रसाद मिश्र ।
कौशलेन्द्र रहस्य—रामचरण दास ।
गीतारघुनंदन प्रामणिक—विश्वनाथ सिंह ।
गीतावली पूर्वार्द्ध—विश्वनाथ सिंह ।
चित्रकूट—लक्ष्मीनारायण मिश्र ।
छप्पय रामायण—रामचरण दास ।
जय हनुमान—श्यामनारायण पांडे ।
जन्म खण्ड—नवल सिंह कायस्थ ।
जानकी विजय तथा स्वर्गारोहण ।
जानकीशरण मणि—जनकराज किशोरी रमण ।
जानकी हरणम्—कुमार दास ।
जानकी समर विजय—रामचरन कवि ।
झूलन—रामचरण दास ।
हुमुल—श्यामनारायण पांडे ।

हिन्दी पुस्तक साहित्य—डा० माताप्रसाद गुप्त।
हिन्दी साहित्य (उद्भव और विकास)—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास–डा० रामकुमार वर्मा।
हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल।
हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
हिन्दुई साहित्य का इतिहास—गार्सां द तासी। अनु० डा० वार्ष्णेय।
हिन्दी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन।

पत्रिकायें

अनुशीलन—प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।
कल्याण—गीताप्रेस, गोरखपुर (भक्त चरितांक एवं श्रीरामाङ्क)
तुलसीदल—मानस प्रेस, इब्राहीमपुरा, भोपाल।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका—(नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
सम्मेलन पत्रिका–(हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)।
हिन्दुस्तानी—(हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग)।

ग्रंथ-सूची

अग्नि परीक्षा—आचार्य तुलसी
अनामिका—'निराला'।
अभिषेक नाटक—भास।
अशोकवन—(एकांकी)—लक्ष्मीनारायण मिश्र।
अशोकवन—सुमित्रानन्दन पंत।
अशोकवन–(काव्य) —गोकुलचन्द्र शर्मा।
अष्टयाम–अग्रदास।
अष्टयाम—नाभादास।
अष्टयाम—खुमान।
अष्टयाम अह्निक—विश्वनाथ सिंह।
अष्टयाम पूजाविधि—रामचरण दास।

अहल्या—गुलाब कवि।
आंजनेय—जयशंकर त्रिपाठी।
आनंद चिंतामणि—कृपानिवास।
आनंद रामायण—विश्वनाथ सिंह।
आल्हा रामायण—नवलसिंह कायस्थ।
आश्चर्य चूणामणि—शक्ति भद्र।
उत्तर रामचरित—भवभूति।
उत्तरायण—रामकुमार वर्मा।
उदार राघव—साकल्यमल्ल।
उदात्त राघव नाटक—अनंग हर्ष मायुराज।
उभय प्रबोधक रामायण—बनादास।
उर्मिला—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'।
कवित्त रत्नाकर—सेनापति।
कर्त्तव्य (पूर्वार्घ)—सेठ गोविन्ददास।
कुंडलिया रामायण—
कृषि यज्ञ—सेठ गोविन्ददास।
कैकेयी—शेषमणि शर्मा 'मणिरायपुरी।
कौशल किशोर—डा० बलदेवप्रसाद मिश्र।
कौशलेन्द्र रहस्य—रामचरण दास।
गीतारघुनंदन प्रामाणिक—विश्वनाथ सिंह।
गीतावली पूर्वार्द्ध—विश्वनाथ सिंह।
चित्रकूट—लक्ष्मीनारायण मिश्र।
छप्पय रामायण—रामचरण दास।
जय हनुमान—श्यामनारायण पांडे।
जन्म खण्ड—नवल सिंह कायस्थ।
जानकी विजय तथा स्वर्गारोहण।
जानकीशरण मणि—जनकराज किशोरी रमण।
जानकी हरणम्—कुमार दास।
जानकी समर विजय—रामचरन कवि।
झूलन—रामचरण दास।
तुमुल—श्यामनारायण पांडे।

हिन्दी पुस्तक साहित्य—डा० माताप्रसाद गुप्त।
हिन्दी साहित्य (उद्भव और विकास)—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास–डा० रामकुमार वर्मा।
हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल।
हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
हिन्दुई साहित्य का इतिहास—गार्सा द तासी। अनु० डा० वार्ष्णेय।

हिन्दी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन।

पत्रिकायें

अनुशीलन—प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।
कल्याण—गीताप्रेस, गोरखपुर (भक्त चरितांक एवं श्रीरामाङ्क)
तुलसीदल—मानस प्रेस, इब्राहीमपुरा, भोपाल।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका—(नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
सम्मेलन पत्रिका–(हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)।
हिन्दुस्तानी—(हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग)।

ग्रंथ-सूची

अग्नि परीक्षा—आचार्य तुलसी
अनामिका—'निराला'।
अभिषेक नाटक—भास।
अशोकवन—(एकांकी)—लक्ष्मीनारायण मिश्र।
अशोकवन—सुमित्रानन्दन पंत।
अशोकवन–(काव्य) —गोकुलचन्द्र शर्मा।
अष्टयाम–अग्रदास।
अष्टयाम—नाभादास।
अष्टयाम—खुमान।
अष्टयाम अहि-नक—विश्वनाथ सिंह।
अष्टयाम पूजाविधि—रामचरण दास।

अहल्या—गुलाब कवि।
आंजनेय—जयशंकर त्रिपाठी।
आनंद चिंतामणि—कृपानिवास।
आनंद रामायण—विश्वनाथ सिंह।
आल्हा रामायण—नवलसिंह कायस्थ।
आश्चर्य चूणामणि—शक्ति भद्र।
उत्तर रामचरित—भवभूति।
उत्तरायण—रामकुमार वर्मा।
उदार राघव—साक्ल्यमल्ल।
उदात्त राघव नाटक—अनंग हर्ष मायुराज।
उभय प्रबोधक रामायण—बनादास।
उर्मिला—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'।
कवित्त रत्नाकर—सेनापति।
कर्तव्य (पूर्वार्ध)—सेठ गोविन्ददास।
कुंडलिया रामायण—
कृषि यज्ञ—सेठ गोविन्ददास।
कैकेयी—दीपमणि शर्मा'मणिरायपुरी।
कौशल किशोर—डा० बलदेवप्रसाद मिश्र।
कौशलेन्द्र रहस्य—रामचरण दास।
गीतारघुनंदन प्रामणिक—विश्वनाथ सिंह।
गीतावली पूर्वार्द्ध—विश्वनाथ सिंह।
चित्रकूट—लक्ष्मीनारायण मिश्र।
छप्पय रामायण—रामचरण दास।
जय हनुमान—श्यामनारायण पांडे।
जन्म खण्ड—नवल सिंह कायस्थ।
जानकी विजय तथा स्वर्गारोहण।
जानकीशरण मणि—जनकराज किशोरी रमण।
जानकी हरणम्—कुमार दास।
जानकी समर विजय—रामचरन कवि।
झूलन—रामचरण दास।
तुमुल—श्यामनारायण पांडे।

प्रेता—चन्द्रप्रकाश वर्मा।
दुभजग तरंग—सीताराम शरण भगवान प्रसाद 'रूपकला'।
दोहे-रूपलाल रूपसखी।
ध्यान मंजरी-बाल ग्रली जी।
नंदिग्राम काव्य-गयाप्रसाद द्विवेदी 'प्रसाद'।
नेह प्रकाश।
नृत्यराघव मिलन दोहावली-रामसखे।
पंचवटी-मैथिलीशरण गुप्त।
पंचवटी प्रसंग-सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'।
पंचदेव रामायण-पंचदेव।
पंच शतक—रामचरण दास।
पच्चीसी-कृपा निवास।
पदावली-कृपा निवास।
परिमल-निराला।
पूर्व शृंगार खण्ड-नवलसिंह कायस्थ।
प्रतिमा नाटक-भास।
प्रदक्षिणा-मैथिलीशरण गुप्त।
प्रेम पदावली-सीतारामशरण 'रसरंगमणि'।
प्रेम परव प्रभा दोहावली-युगलानंद शरण।
प्रेमलता पदावली-सियालाल शरण "प्रेमलता"।
बजरंग बाण—
बालि बध (एकांकी)—सदगुरुशरण अवस्थी।
भजन रत्नावली—रामनारायण दास।
भरत—(खण्ड काव्य)-मोहनलाल द्विवेदी (अभिनव भारती, प्रयाग)
भावा योग वाशिष्ठ—रामप्रसाद निरंजनी।
भावनामृत कादंबिनी—युगलमंजरी जी।
भूमिजा—सर्वानंद वर्मा।
भूमिजा—रघुवीरशरण मित्र।
मझली रानी—सद्गुरुशरण अवस्थी।
महावीर चरित—भवभूति।
मानस अष्टयाम—सीताराम शरण भगवानप्रसाद "रूपकला"।

मालविकाग्निमित्र—कालिदास ।
मिथिला खण्ड—नवल सिंह कायस्थ ।
मिथिला महात्म्य—जानकीवर प्रीतिलता ।
मुक्तावली रामायण—
मेघनाद—चतुरसेन शास्त्री ।
युग पुरुष राम—अक्षय कुमार जैन ।
युगल प्रिया पदावली—जीवाराम युगल प्रिया ।
युगल विनोद विलास—युगलानंद शरण ।
युगल विहार पदावली—रामवल्लभाशरण 'युगलहारिणी ।
युगलोत्प्रकाशिका—सीतारामशरण 'शुभशीला' ।
रंग विलास—सीताराम शरण रसरंग मणि ।
रघुवंश महाकाव्य—कालिदास ।
रचना सद्धान्त मुक्तावली—जनकराज किशोरी शरण 'रसिक अली' ।
रस पद्धति भावना—कृपा निवास ।
रस मालिका—राम चरण दास ।
रसामृत सिन्धु—कृपा निवास ।
राजरानी सीता—डा० रामकुमार वर्मा ।
राम कीर्तन अथवा वीर रामायन—महावीरप्रसाद त्रिपाठी ।
राम की शक्ति पूजा—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ।
राम चंद्रिका—केशवदास ।
रामचन्द्र की सवारी—विश्वनाथ सिंह ।
रामचन्द्रोदय काव्य—रामनाथ ज्योतिषी ।
राम चर्चा—प्रेमचंद ।
रामचरित—सदल मिश्र ।
राम चरित—अभिनंद ।
रामचरित मानस—प्रकाशक खेमराज श्री कृष्णदास ।
रामचरित चिन्तामणि—राम चरित उपाध्याय ।
रामचरित्र—मिश्र बंधु ।
राम चरितत्र— ।
राम जन्म बधाई ।
राम जन्मोत्सव ।

राम झांकी विलास—सीताराम शरण "रसरंगमणि"।
राम दर्पण—बुद्धाबाई।
राम नवरत्न सार संग्रह—रामचरण दास।
राम पदावली—रामचरण दास—
राम रत्नावली-
रामरसायन—पद्माकर।
राम राज्य—डा० बलदेवप्रसाद मिश्र।
रामलीला प्रकाश—सरदार
राम विवाह खण्ड—नवलसिंह कायस्थ।
राम सखे पदावली—राम सखे।
राम सवारी रहस्य-
राम सिया संयोग पदावली—बैजनाथ कुरमी।
रामसुधा—बूदचंद्र जन
राम स्वयंवर—रघुराज सिंह।
राधेश्याम रामायण—कथावाचक राधेश्याम।
रामायण—विश्वनाथ सिंह।
रामायण-कथाचक्र—सिस्टर निवेदिता (अभिनव भारती, ४२ सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद–३ द्वारा प्रकाशित)
रामायण मंजरी—क्षेमेन्द्र।
रामाश्वमेध—मधुसूदन दास।
रामायण रसबिन्दु—सीताराम शरण भगवान प्रसाद "रूपकला"।
रामाष्टयाम—रघुराज सिंह।
रावण महाकाव्य—हरदयालु सिंह हरिनाथ।
रावण—डा० श्री कृष्णलाल।
लंकादहन—लक्ष्मीनारायण सिंह "ईश"।
लगन पचीसी—कृपा निवास।
लक्ष्मण-सुमित्रानंदन पंत।
लक्ष्मण शतक—खुमान।
वयं रक्षाम :—चतुरसेन शास्त्री।
वाल्मीकि रामायण—श्लोकार्थ प्रकाश—गणेश।
विजय राघो खंड—बंदीदीन दीक्षित।

विलास खंड—नवलसिंह कायस्थ ।
विवेक गुच्छ–बैजनाथ कुरमी ।
विश्राम सागर–रघुनाथदास राम सनेही ।
वैदेही वनवास–अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" ।
वृहतकोशलखण्ड—राम वल्लभाशरण "प्रेमनिधि"
बृहद् उपासना रहस्य—सियालाल शरण "प्रेमलता" ।
शांतिका—विश्वनाथ सिंह ।
शिवसंहिता की टीका—रामवल्लभाशरण "प्रेमनिधि" ।
संगीत रघुनंदन—विश्वनाथ सिंह ।
संशय की एक रात—नरेश मेहता ।
सगुन प्रबन्ध—
सत्योपाख्यान—ललकदास ।
साकेत–मैथिलीशरण गुप्त ।
साकेत संत—बलदेवप्रसाद मिश्र ।
सियावर केलि पदावली—ज्ञान अली सहचरी जी ।
सियावर मुद्रिका–बैजनाथ कुरमी ।
सीता–चन्द्रप्रकाश वर्मा ।
सीता की माँ—रामवृक्ष बेनीपुरी ।
सीतायन—राम प्रिया शरण (अप्रकाशित) ।
सीता वनवास—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (अभिनव भारती, इलाहाबाद–३ से प्रकाशित)
सीता राम गुणार्णव—गोकुलदास ।
सीताराम शोभावली—सीतारामशरण रसरंगमणि ।
सुदामा चरित—हलधर ।
सुसिद्धान्तोतम राम खण्ड—रुद्रप्रताप सिंह ।
सोहर पदावली—रामशरण ।
हनुमच्चरित्र–रायमल्ल पाडे
हनुमत पचीसी—
हनुमत पचीसी—गणेश ।
हनुमत भूषण–सरदार ।
हनुमन्नाटक—प्राणचंद चौहान ।

हनुमन्नाटक—हृदयराम।
हनुमन्नाटक-राम।
हनुमान नाटक-राम।
हनुमान पंचक—खुमान।
हनुमान हृदय-ब्रह्माश्रम
हनुमान पचीसी—खुमान।
श्री मिथिला विलास—सूर किशोर (अ)।
श्री राघव गीत-प्रयाग नारायण।
श्री राम रसरंग विलास—सीताराम शरण रसरंगमणि।
श्री रामदातयबा—सीताराम शरण रसरंगमणि।